दिव्यावदान में संस्कृति का स्वरूप

"It is an intensive study of the book and throws light on the social and religious conditions of Northern India in the Buddhist period of our history. The thesis bring out new facts to light. The candidate's expression is good. It is satisfactory both as regards the critical examination of the data and literary presentation."

Dr. Babu Ram Saxena

"The thesis is a valuable production. It is evident that the writer has spared no pains in critically studying the text of the Divyavadana from his own point of view and in analysing its contents under the various topic dealt with in the different chapters subdivided into numerous 'Paricchedas'. His treatment of the different topics, though brief, is always clear and precise and is invariably supported by ample references to the text. The work on the whole is a valuable scholarly contribution. It contains evidence of both critical intelligence and scholarly judgement."

Dr. Mangal Deva Shastri

"The thesis is based mainly on a collection of Buddhist tales in mixed Sanskrit, which originally belonged to the Canon of the Saravastivada School of Bddhist that thrived in kashmir during the early centuries of the Christian era. These tales were extracted from the above canon, and were given the name DIVYAVADANA by an unknown writer. It contains a mine of information on an aspect of Indian Culture. Shri Shyam Prakash has based his thesis on an exhaustive analysis of this work and has presented a scientific synthesis of the cultural material. In fact, the candidate has hardly left out of consideration any bit of information useful for his study. The candidate has taken full advantage of the material at his disposal and produced a thesis both scientific and interesting.

Dr. P. L. Vaidya

दिव्यावदान में संस्कृति का स्वरूप

[सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० श्याम प्रकाश

प्रवक्ता, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

प्रगति प्रकाशन

आगरा—३

प्रथम संस्करण :

फरवरी : १९७०

प्रकाशक :
रामगोपाल परदेसी
संचालक :
प्रगति प्रकाशन
बैतुल बिल्डिंग,
आगरा--३
दूरभाष : ६१४६१

o

मुद्रक :
दी कॉरोनेशन प्रेस,
आगरा--३

मूल्य : बीस रुपये

समर्पण

श्रद्धेय डॉ० पी० एल० वैद्य

को

ससम्मान समर्पित

लेखकीय

बौद्ध संस्कृत-साहित्य में 'दिव्यावदान' सर्वप्रथम अवदान-संकलनों में से है। वस्तुतः, मनीषियों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। 'दिव्यावदान' में सत्य, त्याग, मैत्री, मातृ-सेवा, सदाचार, कर्त्तव्य-पालन आदि के उन आदर्शों की उपलब्धि होती है, जो हमें उत्तराधिकार में प्राप्त हुए हैं तथा जिनसे भारतीय-संस्कृति की गौरवमयी विभूति पर प्रकाश पड़ता है। अस्तु, दिव्यावदान-कालीन संस्कृति एक विशिष्ट शोध-अध्ययन की अपेक्षा रखती है।

उस युग में लोगों का खान-पान कैसा था? उनकी वेश-भूषा क्या थी? शिक्षा का क्या स्वरूप था? साहित्य और विज्ञान की क्या स्थिति थी? मनोरंजन के कौन-कौन से प्रचलित साधन थे? लोगों के रस्म-रिवाज क्या थे? राजा तथा प्रजा का कैसा संबन्ध होता था? न्याय-प्रणाली क्या थी? नगरों एवं प्रासादों का निर्माण कैसा होता था? जीविकोपार्जन के साधन कौन-कौन से थे? जीवन के प्रति लोगों का क्या दृष्टिकोण था? धार्मिक एवं नैतिक आदर्श क्या थे? इन प्रश्नों के समाधान के लिए 'दिव्यावदान' का सांस्कृतिक विश्लेषण परम आवश्यक प्रतीत होता है।

'दिव्यावदान' प्राचीन भारतीय-संस्कृति का एक विलक्षण भण्डार है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक आदि विभिन्न पक्षों का विवेचन हुआ है, जो तत्कालीन बौद्ध-संस्कृति का स्पष्ट परिचायक है।

प्रस्तुत शोध-अध्ययन का विषय 'दिव्यावदान में संस्कृति का स्वरूप' होने के कारण, मेरा दृष्टिकोण केवल इस ग्रन्थ में उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री का ही अन्वेषण, विशेषतः अभिप्रेत रहा है, तथापि कुछ स्थलों पर अन्य ग्रन्थों में प्राप्त सम-सामग्री का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रबन्ध में कहीं-कहीं उन्हीं स्थलों की पुनरावृत्ति तद्-तद् विषयों को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही की गयी है।

'दिव्यावदान' के सांस्कृतिक-पक्ष के अध्ययन का मेरा यह प्रथम प्रयास है। प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए मैंने 'दिव्यावदान' के ई० बी० कॉवेल और आर० ए० नील द्वारा रोमन-लिपि में संपादित संस्करण तथा डॉ० पी० एल० वैद्य द्वारा देवनागरीलिपि में संपादित संस्करण, इन दोनों की ही सहायता ली है। परन्तु मेरा अधिक झुकाव डॉ० पी० एल० वैद्य द्वारा संपादित संस्करण पर ही रहा है और मैंने इस संस्करण में उपलब्ध सामग्री का ही उपयोग अपने शोध-प्रबन्ध में किया है। पुस्तक की पाद-टिप्पणियों में सन्दर्भ-पृष्ठ-संख्या भी मैंने 'दिव्यावदान' के इसी संस्करण से उद्धृत की है। इसका एक कारण यह है कि कॉवेल और नील द्वारा संपादित संस्करण स्पष्ट

नहीं है, उसमें दुरूहता अधिक है। उदाहरण के लिए, अन्तिम अवदान 'मैत्रकन्यकावदान' का उल्लेख किया जा सकता है। कॉवेल और नील के संस्करण में इस अवदान के गद्य एवं पद्य दोनों भागों का नीरक्षीर न्याय से सम्मिश्रण किया गया है, जहाँ केवल गद्य ही गद्य का अवलोकन होता है। निःसन्देह ही ऐसे सम्मिश्रण से दोनों का पृथक्-करण हंस-सम कुशाग्र-धी के द्वारा ही संभव है। 'दिव्यावदान' के देवनागरी-लिपि में संपादित संस्करण में यह विवेक स्पष्ट स्वरूप से दृष्टिगोचर होता है, जिसका एक मात्र श्रेय इसके संपादक डॉ० पी० एल० वैद्य को दिया जा सकता है।

मैं, अपने गुरुवर श्रद्धेय डॉ० बाबूराम सक्सेना, तत्कालीन अध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग, सागर विश्वविद्यालय (संप्रति अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा-मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली) का विशेष आभारी हूँ, जिनके सुयोग्य निर्देशन में मुझे इस विषय पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ एवं जिनके सत्परामर्शों के फलस्वरूप मैं इस अध्ययन को समाप्त कर सका। इस दिशा में, श्रद्धेय डॉ० पी० एल० वैद्य का योग भी अविस्मरणीय रहेगा। आपने अपने व्यस्त जीवन का अमूल्य समय देकर इस शोध-प्रबन्ध को देखने और अपने बहुमूल्य निर्देशों से अलंकृत करने की महती कृपा की। यदि आप जैसे महापुरुषों का सुयोग मुझे न प्राप्त होता, तो मेरी यह साधना अधूरी ही रह जाती।

सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष, डॉ० रामजी उपाध्याय का मैं कृतज्ञ हूं, जिनकी प्रेरणा से मैं प्रस्तुत विषय पर कार्य करने को तत्पर हुआ। डॉ० मंगलदेव शास्त्री, भूतपूर्व उप-कुलपति, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, डॉ० वी० वी० गोखले, तत्कालीन अध्यक्ष, बुद्धिस्ट स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रो० सुजीतकुमार मुखोपाध्याय, विश्वभारती, शान्ति-निकेतन, स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय-संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, इन सभी लोगों का मैं कृतज्ञ हूं, जिनसे पत्र-व्यवहार द्वारा या स्वतः मिलने पर अपने विषय पर कुछ प्रकाश पड़ा है।

अन्त में, मैं भिक्षु जगदीश काश्यप, निदेशक, पालि-संस्थान, नालन्दा, डॉ० आर० सी० पाण्डेय, अध्यक्ष, बुद्धिस्ट स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय-संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने क्रमशः इस पुस्तक का प्राक्कथन, भूमिका एवं प्रस्तावना लिखकर मुझे अनुग्रहीत किया है।

—श्याम प्रकाश

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

परिच्छेद १

"अवदान" क्या है ?

वौद्धेतर संस्कृत-साहित्य में 'अवदान' शब्द का अर्थ है 'पराक्रम-पूर्ण कृत्य'। रघुवंश [के ग्यारहवें सर्ग के इक्कीसवें श्लोक] में 'अवदान' शब्द प्राप्त होता है, जहाँ यह कहा गया है कि विश्वामित्र ने अपने शिष्य राम के अवदान [पराक्रम पूर्ण कृत्य] से प्रसन्न होकर उन्हें एक अलौकिक शस्त्र प्रदान किया।[1] कुमारसंभव[2] में, एवं दण्डी के दशकुमार चरित[3] में भी 'अवदान' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

किन्तु वौद्ध संस्कृत साहित्य में 'अवदान' शब्द का प्रयोग किसी धार्मिक या नैतिक स्मरणीय, साहसिक या महत् कर्म के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार का महत् कर्म स्व-जीवनार्पण हो सकता है अथवा स्वर्ण-रत्न-पुष्पादि का दान अथवा स्तूप-चैत्यादि का निर्माण।

अमरसिंह ने अमरकोश में 'अवदान' का अर्थ 'कर्मवृत्तम्' किया है।[4] इसको 'अपदान' का पाठान्तर भी स्वीकार किया जाता है 'अपदानमित्यपि पाठः'।

---

१. नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्।
ज्योतिरन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः॥ [रघुवंश]

२. विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः सङ्गीयमानत्रिपुरावदानः।
अध्वानमध्वान्तविकारलङ्घ्यस्ततार ताराधिपखण्डधारी॥ [कुमार संभव, ७·४८]

३. दशकुमारचरित [उत्तरखण्डतद्वितीय उच्छ्वास]

४. अमरकोश [द्वितीय खण्ड, संकीर्णवर्ग]

वस्तुतः अवदान कथाएँ इस तथ्य का प्रतिपादन करती हैं कि कृष्ण कर्मों का फल कृष्ण और शुक्ल कर्मों का फल शुक्ल होता है। अतः इनको कर्मकथा की भी संज्ञा दी जा सकती है। इन कथाओं से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार एक जीवन के कर्म, भूत या भविष्य जीवन के कर्मों के साथ संबद्ध हैं। ये कथाएँ स्वयं भगवान् बुद्ध के द्वारा कथित होने के कारण बुद्ध वचन के समान प्रामाणिक मानी जाती हैं तथा बुद्ध वचन के नाम से भी अभिहित की जाती हैं।

जातकों के समान, अवदान भी एक प्रकार के प्रवचन हैं। प्रायः अवदान के प्रारंभ में यह रहता है कि कहाँ [किस स्थान पर] और किस अवसर पर भगवान् बुद्ध ने भूत काल की कथा कही और अन्त में, भगवान् बुद्ध इस कथा से अपने नैतिक-सिद्धान्त का निष्कर्श निकालते हैं। अतएव एक अवदान में एक प्रस्तुत-कथा, भूतकथा और तदनन्तर नैतिक-सिद्धान्त का संग्रह रहता है।

जातकों में कथा का नायक कोई बोधिसत्त्व अवश्य होता है। इस आधार पर यदि भूत कथा का नायक बोधिसत्त्व हो, तो अवदान को भी जातक द्वारा अभिहित किया जा सकता है।

कुछ अवदानों में अतीत-जन्म की कथा होती है, जिसका फल प्रत्युत्पन्न काल में मिला। किन्तु कुछ ऐसे भी विशिष्ट प्रकार के अवदान हैं जिनमें अतीत की कथा नहीं प्राप्त होती। ये अवदान 'व्याकरण' के रूप में हैं, जिनमें भगवान् बुद्ध ने एक भूत कथा के बजाय प्रत्युत्पन्न की कथा वर्णित कर अनागत फल [भविष्यत्] का व्याकरण किया है।

प्रत्येक अवदान-कथा के अन्त में, साधारणतः यह सिद्ध किया गया है कि शुक्ल-कर्म का शुक्ल-फल, कृष्ण-कर्म का कृष्ण और व्यामिश्र का व्यामिश्र-फल होता है।

इस प्रकार अवदान-कथाएँ कर्म-प्राबल्य [या कर्म-फल] को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से लिखी गई प्रतीत होती हैं।

बौद्धों के संस्कृत निविष्ट धर्मग्रन्थ बारह विभागों में विभाजित हैं—

सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम् ।
इतिवृत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम् ।
उपदेशाद्भुतौ धर्मो द्वादशाङ्गमिदं वचः ॥[१]

इन द्वादशाङ्गों में बुद्ध के धर्मोपदेश निहित हैं 'द्वाद्शधर्मप्रवचनानि'। इनमें अवदान छठा अंग है।

१ [हरिभद्र आलोक, बड़ौदा संस्करण पृ० २५] डा० पी० एल० वैद्य संपादित "दिव्यावदान" की प्रस्तावना पृ० १७

परिच्छेद २

अवदान-साहित्य और "दिव्यावदान"

अवदान-साहित्य में संभवतः 'अवदान-शतक' सर्व प्राचीन है। 'दिव्यावदान' इससे कुछ समय के बाद का संकलन है। 'दिव्यावदान' जैसा इसके नाम से ही प्रकट होता है दिव्य-अवदानों का संकलन है। ये अवदान बौद्धों के धर्मग्रन्थों-विनय, दीर्घागम, मध्यमागम, संयुक्तागम आदि में यत्र-तत्र बिखरे हुए थे, जिनका एकत्र संकलन युवा-भिक्षुओं के लाभ को दृष्टि में रखते हुए किया गया प्रतीत होता है। अवदान की कई कथाएँ 'विनय' से ली गई हैं तो कई 'सूत्र' से।

अवदान-साहित्य की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं, जिनमें से एक है उनका समान उद्धरण अर्थात् ऐसे स्थलों की उपलब्धि जहाँ एक ही शब्द या एक ही [समान] वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे समान उद्धरण अवदानशतक के प्रत्येक अवदान में अपने पूर्ण स्वरूप में प्राप्त होते हैं, परन्तु दिव्यावदान में इन उद्धरणों की प्राप्ति, कभी पूर्ण रूप में, कभी विस्तार के साथ और कभी संक्षिप्त रूप में 'पूर्ववत् यावत……" के साथ, होती है।

इसी प्रकार बुद्धस्मिति [मंद-हास्य] का वर्णन एक दो वाक्य में ही नहीं एक दो पृष्ठ तक एक से ही शब्दों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।[१] तथागत सम्यक् संबुद्ध किसी भविष्यत् का व्याकरण करने से पूर्व स्मिति का उपदर्शन करते हैं। जिस समय भगवान् बुद्ध मुस्कराते हैं, उस समय उनके मुख से नील, पीत, लोहित और अवदान वर्ण की किरणें निकलती हैं। इनमें से कुछ किरणें अधः लोक [नरक] में और कुछ ऊपर देव लोक में जाती हैं। अनेक सहस्र लोकों का भ्रमण कर ये किरणें पुनः भगवान् बुद्ध के पास लौट आती हैं और व्याकरण-विषयानुसार उनके शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तर्हित हो जाती हैं।

---

१. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१-४२। अशोकवर्णावदान, पृ० ८६। ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३-६४। पांशुप्रदानावदान, पृ० २३०-३१।

इसी प्रकार अनेक गुण-समन्वागत भगवान् बुद्ध का वर्णन[1], भगवान् के गन्धकुटी पर पैर रखने से ६ प्रकार का पृथ्वी कम्प[2], आपन्नसत्त्वा स्त्रियों के आहार-विहार[3], जातिमह एवं नामकरण[4], बालकों को शिक्षा की प्राप्ति[5], धात्री[6], समुद्रावतरण[7], आदि ऐसे विषय हैं, जिनकी उपलब्धि कई स्थलों पर और उन्हीं शब्दों में होती है।

'दिव्यावदान' के अधिकतर अवदानों[8] की समाप्ति इन शब्दों के साथ हुई है—

"इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन ॥"

कई अवदानों[9] के अन्त में भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने इस नैतिक आदर्श की शिक्षा दी है—

"इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानां कर्मणामेकान्तशुक्लो विपाकः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात् तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥"

---

१. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१। स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४५। इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४७। अशोकावदान, पृ० ८५। तोयिकामहावदान, पृ० ३०१।

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५४। पांशुप्रदानावदान, पृ० २२६।

३. कोटिकर्णावदान, पृ० १। सुप्रियावदान, पृ० ६२। स्वागतावदान, पृ० १०४। सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २। पूर्णावदान, पृ० १६। सहसोद्गतावदान, पृ० १८६, १९२। सुधनकुमारावदान, पृ० २९७।

५. कोटिकर्णावदान, पृ० २। पूर्णावदान, पृ० १६। मैत्रेयावदान, पृ० ३५। सुप्रियावदान, पृ० ६३। सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

६. कोटिकर्णावदान, पृ० २। पूर्णावदान, पृ० १६।

७. वही, पृ० २। वही, पृ० २०। मैत्रेयावदान, पृ० ३५।

८. वही, पृ० १४। वही पृ० ३३। मैत्रेयावदान, पृ० ४०। ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४४। स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४६। इत्यादि।

९. कोटिकर्णावदान, पृ० १४। पूर्णावदान, पृ० ३३। स्वागतावदान, पृ० ११९। इत्यादि।

'दिव्यावदान' के अवदानों की भाषा-शैली पृथक्-पृथक् है। कुछ अवदान अर्धपाणिनीय संस्कृत शैली में जैसे 'चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान' और कुछ शुद्ध पाणिनीय संस्कृत शैली में जैसे 'मैत्रकन्यकावदान' लिखे गये हैं। 'मैत्रकन्यकावदान' में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग, गद्य शैली में लिखे हुए लम्बे-लम्बे वाक्य और इन दो दण्डकों का प्रयोग—

क्वचिदुपचितवारणदन्तशिखाशनिदारितशिखरततं प्रविरूढविलासशिखागरुवृक्षवनम्। क्वचिदुपरिपयोधरभारतरलध्वनिरञ्जितशिखिकुलाविष्कृतपिच्छकलापविचित्रितचारुतटम् ॥ क्वचिदनिलविकम्पितपुष्पतरुं स्खलितोज्ज्वलसुरभिवलंकुसुमप्रवलप्रतिवासितसानुशिखम् ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

क्वदिचकर्म हारथचक्रनिपातविखण्डितमयूखकलापकरालितनैकमहामणिपल्लवसंचयं मौलिभरावनतोन्नतभासुरवज्रधरम्।

क्वचिदिन्द्रकरीन्द्रविमर्दतरंगनयभ्रमितप्रचलत्कलहंसकुलावलिहारनभस्सरिदम्बुविधौतशिलम्। क्वचिदण्डजराजविलाससमुच्छ्रितयक्षमहाभुजवज्रविपाटितसागरवारितलोद्धृतपन्नगभोगधरम्। क्वचिदेव सुरसुरसंयुगशस्त्रविपन्नमहासुरविद्रुतशोणितरङ्गमहावलयम् ॥[1]

यह मानने के लिए पर्याप्त है कि इसका प्रणयन किसी लौकिक संस्कृत के निष्णात पण्डित की लेखनी द्वारा हुआ है। इस अवदान के प्रारंभ का अंश "मातर्यपकारिणः प्राणिन........."और अवदान के अन्त का "तत्किमिदमुपनीतम्" ,[1] इन अंशों की तुलना "जातकमाला" के प्रारंभ और अन्त के अंशों से करने पर यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि यह अवदान आर्यशूर कृत है।

"पांशुप्रदानावदान" में वर्णित उपगुप्त और मार की कथा, पाणिनीय संस्कृत शैली के आदर्श पर लिखित और नाट्यगुण-परिप्लुत है। यह सम्पूर्ण कहानी इतनी नाटकीय है कि इसे एक बौद्ध-नाटक माना जा सकता है। यह अंश शब्दतः कुमारलात की "कल्पनामण्डितिका" से उद्धृत किया गया है।

---

१. मैत्रकन्यकावादन, पृ० ५०३।

"दिव्यावदान" के अवदानों का संकलन बिना किसी आयोजन के किया गया प्रतीत होता है। एक ही संकलित-ग्रन्थ में हमें "तोयिकामहावदान" की प्राप्ति ,"इन्द्रब्राह्मणावदान" की पुनरावृत्ति के रूप में होती है।

अवदानों के संकलन में किसी विषय-क्रम के नियम को भी दृष्टि में नहीं रखा गया है। संघरक्षित की कहानी बिना किसी आवश्यकता के ही दो भागों में वर्णित की गई है और इन दो भागों के बीच में एक अन्य अवदान "नागकुमारावदान" का समावेश कर दिया गया है।

अवदान-शतक की सहायता से अवदान-मालाओं की रचना हुई, यथा—कल्पद्रुमावदानमाला, अशोकावदानमाला, द्वाविंशत्यवदानमाला। अवदानों के अन्य संग्रह भद्रकल्यावदान और विचित्रकर्णिकावदान भी हैं। अन्त में, क्षेमेन्द्र की अवदान-कल्पलता का उल्लेख भी अवदान-साहित्य में आवश्यक है। इस ग्रन्थ की समाप्ति १०५२ ई० में हुई। इस में १०७ कथाएँ संग्रहीत हैं। क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखी और साथ ही इसमें एक कथा और जोड़ दी। इस का नाम है "जीमूतवाहन-अवदान"। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कथाओं की संख्या १०८ हो जाती है।

O

परिच्छेद ३

"दिव्यावदान" का काल-निर्णय

"दिव्यावदान" की सामग्री बहुत कुछ मूलसर्वास्तिवादियों के "विनय वस्तु" और कुमारलात की "कल्पनामण्डितिका" से प्राप्त हुई है। गिलगिट पांडुलिपियों के विनय वस्तु में "दिव्यावदान" के अनेक अवदान पूर्णतः या अंशतः प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ "मान्धातावदान" अंशतः "विनय-वस्तु" से तथा अंशतः "मध्यमागम" से लिया गया है; "सुधनकुमारावदान" "स्तुतिब्राह्मणावदान" आदि विनय वस्तु से शब्दशः उद्धृत किये गये हैं। इस प्रकार जब "दिव्यावदान" का संकलन विविध स्रोतों से किया गया है, तब यह निश्चित है कि इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न अंशों की रचना भी भिन्न भिन्न समय में हुई।

डा० एम० विन्टरनिट्ज की यह मान्यता है कि इसके कई अंश निश्चित रूप से खिस्तोत्तर तृतीय शताब्दी के पूर्व लिखे गये हैं। किन्तु सम्पूर्ण संग्रह चौथी शताब्दी से बहुत पूर्व का नहीं हो सकता।[1] क्योंकि अशोक के उत्तराधिकारी ही नहीं, शुंगवंश के पुष्यमित्र तक के राजाओं [लगभग ई० पू० १७८] का उल्लेख इस ग्रन्थ में प्राप्त होता हैं। "दीनार" शब्द का प्रयोग भी अनेक बार हुआ है। एक बात और ध्यान देने की यह है (ऊपर यह निर्दिष्ट किया जा चुका है) कि इस ग्रन्थ के संकलन-कर्ता ने "कल्पना-मण्डितिका" से कुछ सामग्री का चयन किया है। अतः यह समीचीन प्रतीत होता है कि कनिष्क के बहुत समय बाद उत्पन्न हुए "कल्पनामण्डितिका" के लेखक कुमारलात के पश्चात् पर्याप्त काल का व्यवधान हो, जिस में "दिव्यावदान" का संकलन-कर्ता उस की कृति की सामग्री का उपयोग कर सके। ये सब तथ्य इसके काल को लगभग ३५० ई० तक पहुंचा देते हैं।

---

1. A History of Indian Literature, Vol. II. Dr. M. Winternitz.

पुनः "शार्दूलकर्णावदान" का अनुवाद चीनी भाषा में टिचू० जा० हू० (Tchu-ja-hu) के द्वारा २६५ ई० में हुआ प्राप्त होता है, जिस का चीनी नाम "शी० ताउ० कीन० किंग" (She-tau-keen-king) था।[2] इस से यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का प्रस्तुत रूप में संकलन खिस्तोत्तर २०० और ३५० के मध्य हुआ होगा।

O

2. The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal—Rajendra Lal Mitra.

परिच्छेद ४

दिव्यावदान के स्रोत

'दिव्यावदान' का संकलन विभिन्न स्रोतों से हुआ है। यद्यपि यह ठीक है कि इसके कुछ अंश मूलसर्वास्तिवादियों के विनय से उद्धृत किये गये हैं तथापि यह कहना उचित नहीं कि ये अवदान केवल विनय के ही अंश हैं। इसकी कई कथाएँ 'विनय' की तो कई 'सूत्र' की अंग हैं। वस्तुतः इसके स्रोतों की जानकारी के लिए सामान्य रूप से संस्कृत में रचित सभी बौद्ध साहित्य का अन्वेषण करना पड़ेगा।

'प्रातिहार्यसूत्र' और 'दानाधिकारमहायानसूत्र' महायान-पंथ के पुराने सूत्रों के अवशेष हैं। इन दोनों के शीर्षक में 'सूत्र' शब्द भी प्राप्त होता है। 'नगरावलम्बिकावदान' 'मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद' 'मेण्ढकावदान' 'सुधनकुमारावदान', 'तोयिकामहावदान' का अंश गिलगिट की पाण्डुलिपियों में प्राप्त होता है। 'मान्धातावदान' अंशतः विनयवस्तु से तथा अंशतः मध्यमागम से उद्धृत है। 'पांशुप्रदानावदान' में वर्णित उपगुप्त की कथा का संचयन कुमारलात की 'कल्पनामण्डितिका' से हुआ है और अन्तिम अवदान 'मैत्रकन्यकावदान' आर्यशूर की 'जातक-माला' से प्रभावित है।

O

परिच्छेद ५

ग्रन्थकार

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है 'दिव्यावदान' एक संकलित ग्रन्थ है और इसका संग्रह विभिन्न स्रोतों से किया गया है। अतएव यह किसी एक ग्रन्थकार की कृति नहीं प्रतीत होती। फिर भी अन्तिम अवदान पर पहुँचते ही वह प्राचीन पौराणिक शैली बिलकुल बदल जाती है और उसके स्थान पर एक शुद्ध एवं विदग्ध पाणिनीय संस्कृत शैली का दर्शन होता है। जिससे यह अनुमान होता है कि इस अवदान का संस्कार आर्यशूर द्वारा किया गया है। अतएव, संभवतः यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ आर्यशूर के द्वारा संग्रहीत किया गया होगा।

O

परिच्छेद ६

"दिव्यावदान" का साहित्यिक मूल्यांकन

'दिव्यावदान' में अनेक ऐसे साहित्यिक तत्त्व भी उपलब्ध होते हैं, जिनका पृथक् अध्ययन किया जा सकता है।

'पांशुप्रदानावदान' में उपगुप्त और मार की कथा इतने नाटकीय ढंग से वर्णित हुई है कि यह तत्कालीन नाट्य-शास्त्र के विकास का ज्ञान कराती है। स्थविर उपगुप्त मार से भगवान् के रूपकाय को दिखलाने के लिए कहते हैं। वह इस शर्त पर भगवान् के रूपकाय को दिखलाने के लिए तत्पर होता है कि वह [स्थविर उपगुप्त] उसे उस रूप में देखकर प्रणाम न करें। मार अपने रूप को अलंकृत कर व्यामप्रभामण्डलमण्डित असेचनक दर्शन भगवान् बुद्ध का रूप धारण कर उपगुप्त के सामने आता है। वह भगवान् बुद्ध के उस कमनीय एवं गंभीर रूप का दर्शन कर उन्हें प्रणाम करते हैं। इस पर मार कहता है कि आपने मेरे नियम का उल्लंघन कर दिया। परन्तु उपगुप्त कहते हैं कि मैने तो भगवान् को प्रणाम किया, तुमको नहीं—

मृण्मयेषु प्रतिकृतिष्वमराणां यथा जनः।
मृतसंज्ञामनादृत्य नमत्यमरसंज्ञया ।।
तथाहं त्वामिहोद्वीक्ष्य लोकनाथवपुर्धरम् ।
मारसंज्ञामनादृत्य नतः सुगतसंज्ञया ॥"[१]

तदनन्तर मार उपगुप्त की अभ्यर्चना कर वहाँ से चला जाता है।

'मैत्रकन्यकावदान' की भाषा-शैली प्रांजल है। उसमें दीर्घ समासों का प्रयोग हुआ है। छन्दों के अनेक प्रकार प्रयुक्त हुए हैं। यह पाणिनीय संस्कृत में लिखा हुआ एक सुन्दर अवदान है।

'कुणालावदान' में कुणाल की कारुणिक कथा का वर्णन किया गया है।

अन्य कवियों ने भी 'दिव्यावदान' से अपनी कविता के भाव ग्रहण किये हैं। कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में पुरुरवा का उर्वशी के लिए विलाप उसी प्रकार से वर्णित हुआ है, जिस प्रकार से हमें 'सुधनकुमारावदान' में सुधन के द्वारा मनोहरा के लिए किया हुआ विलाप मिलता है।

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२८।

परिच्छेद ७

'संस्कृति' शब्द का विवेचन

'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा का है। इस की निष्पत्ति संस्कृत व्याकरणानुसार 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर हुई। अतः (सम् + कृति) सम्यक् कृतियाँ ही संस्कृति हैं। 'संस्कृति' शब्द का संबन्ध 'संस्कार' शब्द से माना जाता है। 'संस्कार' का अर्थ है—मलापनयन जब कि 'संस्कृति' का अर्थ है, संस्कृत—शुद्ध करने की क्रिया। अस्तु 'संस्कृति' एवं 'संस्कार' ये दोनों शब्द समानार्थक हैं।

प्रायः 'संस्कृति' के लिए अँग्रेजी 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'कल्चर' शब्द 'ऐग्रीकल्चर' या 'हॉर्टीकल्चर' शब्द का एक अंश है। 'कल्चर' शब्द की सिद्धि लैटिन भाषा के 'कोलरे' धातु से हुई है। इस प्रकार आत्मिक शक्तियों का सर्वाङ्गीण विकास करने वाली प्रक्रिया विशेष का नाम 'संस्कृति' है।

शाब्दिक अर्थानुसार 'संस्कृति', 'सभ्यता' के समकक्ष समझी जाती है; किन्तु इन दोनों में अन्तर है। ' संस्कृति है आत्मा की वस्तु, आत्मिक उत्थान का चिह्न, आत्मिक उत्कर्ष की सीढ़ी और आत्मदर्शन का मार्ग। सभ्यता है अपरा विद्या और संस्कृति है परा विद्या।" 'संस्कृति' शाश्वत है, तो 'सभ्यता' परिवर्तनशील। 'संस्कृति' आत्म-शुद्धि द्वारा मानव के सर्व गुण-परिवृंहणार्थ एक सर्वोत्कृष्ट भूता प्रशस्त मार्ग-प्रदर्शिका है। 'सभ्यता' में केवल शारीरिक भावनाओं का ही विनियोग है। 'सभ्यता' अनुकरणात्मक है। 'संस्कृति' आन्तरिक तत्व है और 'सभ्यता' वाह्य।

'संस्कृति' किसी जाति या देश की अन्तरात्मा है। इस के द्वारा उस देश और काल के उन समस्त संस्कारों का वोध होता है, जिन के आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है। 'संस्कृति' का प्रभाव हमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्वों एवं पारस्परिक शिष्टाचारों

में परिलक्षित होता है। 'संस्कृति' के प्रभाव से ही व्यक्ति को गार्हस्थ्य, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक एवं धार्मिक ऐसे समस्त कार्यों को करने की प्रेरणा मिलती है, जो व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रगति और उत्थान की दृष्टि से वाञ्छनीय हैं। 'संस्कृति' को हम साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक विश्वास किसी भी रूप में देख सकते हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'दिव्यावदान' में अभिव्यक्त संस्कृति के इन सभी पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है।

O

दूसरा अध्याय

सामाजिक-जीवन

परिच्छेद १ वर्ण एवं जाति

परिच्छेद २ आश्रम-व्यवस्था

परिच्छेद ३ संस्कार

परिच्छेद ४ आचार-विचार

परिच्छेद ५ भोजन-पान

परिच्छेद ६ क्रीड़ा-विनोद

परिच्छेद ७ वेश-भूषा

परिच्छेद ८ नारी

परिच्छेद ९ नगर एवं प्रासाद

परिच्छेद १० लोक-मान्यताएँ

परिच्छेद ११ उदात्त-भावनाएँ

परिच्छेद १२ अन्य तत्त्व

परिच्छेद १

वर्ण एवं जाति

[क] वर्ण-विभाजन

"शार्दूलकर्णावदान" में पुष्करसारी ब्राह्मण चार वर्णों का उल्लेख करता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वह कहता है कि ब्राह्मण से ही यह समस्त लोक प्रादुर्भूत हुआ है। ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए उन के औरस पुत्र हैं। उर एवं बाहु से क्षत्रिय, नाभि से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

"तस्य ज्येष्ठा वयं पुत्राः क्षत्रियास्तदनन्तरम्।
वैश्यास्तृतीयका वर्णाः शूद्रनाम्ना चतुर्थकः॥"[1]

पुष्करसारी ब्राह्मण मातंगराज त्रिशंकु से कहता है—

"स त्वं वृषल चतुर्थेऽपि वर्णे न संदृश्यते अहं चाग्रे वर्णे श्रेष्ठे वर्णे परमे वर्णे प्रवरे वर्णे"।[2]

इससे स्पष्ट है कि चाण्डालों की गणना इन चार वर्णों में न थी। उन का इन चार वर्णों से पृथक ही पंचम वर्ण था। इन्हें हीन योनि का बतलाया गया है। इस प्रकार सामाजिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण शीर्षस्थानीय थे। इन के अनन्तर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आते थे। इन सब के पश्चात् सब से निम्न कोटि चाण्डालों की थी।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२३।
२. वही, ३२३।

अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए मातंगराज त्रिशंकु के द्वारा पुष्करसारी ब्राह्मण से दुहिता-याचना किये जाने पर वह क्रोध से भभक उठता है और कहता है—

"धिग् ग्राम्यविषय चण्डाल, नेदं श्वपाकवचनं युक्तम्,
यस्त्वं ब्राह्मणं वेदपारगं हीनश्चण्डालयोनिजो भूत्वा इच्छस्यवमर्दितुम् ।"[1]

तू चाण्डाल योनि का है और मैं द्विजाति में उत्पन्न हुआ हूँ । ऐ मूढ़ तू हीन का श्रेष्ठ से सम्बन्ध कैसे स्थापित करना चाहता है? श्रेष्ठ का श्रेष्ठ के साथ ही संबन्ध होता है, न कि हीन व्यक्ति के साथ । इस अप्रार्थनीय सम्बन्ध की याचना कर निश्चय ही तू वायु को पाशबद्ध करना चाहता है । एक जाति का व्यक्ति अपनी जाति में ही विवाहादि सम्बन्ध रखता है, अन्य जाति में नहीं । ब्राह्मण-ब्राह्मणों के साथ, क्षत्रिय-क्षत्रियों के साथ, वैश्य-वैश्यों के साथ और शूद्र-शूद्रों के साथ संबन्ध रखता है । इसी प्रकार चाण्डाल चाण्डालों के साथ और पुक्कस-पुक्कसों के साथ संबन्ध रखते हैं । एक जाति का व्यक्ति अपने सदृश जाति वाले के साथ ही विवाहादि संबन्ध रखता है, न कि चाण्डाल ब्राह्मणों के साथ ।

पुष्करसारी, चाण्डाल को सर्वजाति विहीन, सर्ववर्ग जुगुप्सित, कृपण और पुरुषाधम कहता है।[2]

"रामायण" में भी चाण्डालों की गणना समाज की सर्वाधिक उपेक्षित जाति में की गई है ।[3]

इस अवदान से यह स्पष्टरूप में परिज्ञात होता है कि समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव एवं अस्पृश्यता की भावना इतनी अधिक थी कि जाति और कुल के न पूछे जाने पर भी प्रकृति आनन्द द्वारा जल याचना किये जाने पर सहसा कह उठती है—

"मातङ्गदारिकाहमस्मि भदन्त आनन्द" ।[4]

[ख] कर्मणा वर्ण-व्यवस्था न जन्मना

उपर्युक्त वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर थी, उस में कर्म का कोई भी

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२० ।
२. शार्दूलकर्णावदान पृ० ३२१

स्थान नहीं था। भगवान् बुद्ध ने इस जन्मना वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया। उन की दृष्टि में जन्म से ही केवल कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं होता, प्रत्युत् कर्मों के अनुसार ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण या शूद्र कहा जाता है।

मातंगराज त्रिशंकु और पुष्करसारी ब्राह्मण का वार्तालाप यह स्पष्ट करता है कि किसी व्यक्ति का ब्राह्मणत्व किस पर—उस के कर्म पर अथवा जन्म पर—निर्भर करेगा ? इस अवदान के अन्त में भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा है—

"स्याद् भिक्षवो युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा—अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूत् ? नैवं द्रष्टव्यम्। अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूवम्।"[1]

इस से यह निश्चित हो जाता है कि मातंगराज त्रिशंकु के वचन स्वयं भगवान् बुद्ध के ही अपने विचार हैं।

उन के अनुसार भस्म और सुवर्ण तथा अन्धकार और प्रकाश में जैसी विशेषता उपलब्ध होती है, वैसी ब्राह्मण और अन्य जाति में नहीं। ब्राह्मण न तो आकाश अथवा मरुत् से उत्पन्न हुआ है और न अरणि के मध्य से उत्पन्न हुई अग्नि के समान पृथ्वी को भेद कर उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण भी माता की योनि से जन्म लेता है और चाण्डाल भी। फिर उन के श्रेष्ठत्व और वृषलत्व में क्या कारण है ? जिस प्रकार ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात् जुगुप्सा एवं अशुचि का पात्र समझा जाता है, उसी प्रकार अन्य वर्ण भी समझे जाते हैं। सभी मनुष्यों में पैर, जांघ, नख, मांस, पार्श्व, और पृष्ठ समान रूप से रहते हैं, ऐसा कोई भी विशेष अंश उपलब्ध नहीं होता, जिस के आधार पर चतुर्वर्णों का पृथक्-पृथक् विभाजन किया जा सके। जिस प्रकार क्रीड़ा करता हुआ बालक पांशु-पुंज को स्वयं ही भिन्न-भिन्न नाम देता है, यथा यह क्षीर है, यह दधि है, यह मांस है, यह घृत है आदि आदि; परन्तु बालक के कथन मात्र से ही वह उन-उन वस्तुओं में परिणत नहीं हो जाता, उसी प्रकार ब्राह्मण के कहने मात्र से ही इन चारों वर्णों का पृथक्-पृथक् विभाग नही हो जाता। जिस प्रकार ब्राह्मण अपने सत् या असत् कर्मों के फल-स्वरूप स्वर्ग या नरक में जाता है, उसी प्रकार अन्य वर्ण भी।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।

जिस प्रकार अण्डज, जरायुज, संस्वेदज एवं औपपादुकों में पैर, मुख, वर्ण संस्थान, आहार आदि के कारण नानात्व के दर्शन होते हैं, उस प्रकार का भेद इन चार वर्णों में दृष्टिगोचर नहीं होता।

जिस प्रकार स्थलज वृक्ष—तमाल, कर्णिकार, शिरीषादि; क्षीर वृक्ष—उदुम्बरादि; फलभैषज्य वाले वृक्ष—आमलकी, हरीतकी आदि; और स्थलज पुष्प वृक्ष—चम्पकादि; तथा जलज पुष्प वृक्ष—पद्मोत्पलादि में मूल, स्कन्ध, पत्र, पुष्प, फल,रूप, गन्ध वर्ण आदि के कारण नानाकरण प्राप्त होता है, वैसा चारों वर्णों में नहीं।

मातंगराज त्रिशंकु पुष्करसारी ब्राह्मण से कहता है कि यदि अनुमान को प्रमाण मानते हो तो भी तुम्हारे कहने के अनुसार ब्रह्मा के एक होने से उनकी प्रजा भी एक जाति की होगी।

ये समस्त प्राणी ब्रह्मा से नहीं उत्पन्न होते, अपितु अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप ही जन्म ग्रहण करते हैं तथा अपने निम्नोच्च कर्मों के कारण ही वे ब्राह्मण अथवा शूद्र कहे जाते हैं। महर्षि द्वैपायन का जन्म एक विषादी [धीवर की लड़की] के गर्भ से हुआ था। वह उग्र, तेजस्वी तथा तपस्वी थे। ब्राह्मणी पुत्र न होने पर भी वह ब्राह्मण कहलाये। परशुराम क्षत्रिया रेणुका के गर्भ से उत्पन्न हो कर भी पण्डित, विनीत, एवं सर्वशास्त्रविशारद होने के कारण ब्राह्मण कहलाये।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने जन्म का विरोध कर कर्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था को माना। वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप जन्मना न होकर, कर्मणा स्वीकार किया। जो भी मनुष्य तेजस्वी, तपस्वी, पण्डित, विनीत एवं सदाचरण संपन्न होगा, वह ब्राह्मण पद का अधिकारी है। जिस प्रकार अधर्माचरण-रत ब्राह्मण जुगुप्सा का पात्र समझा जाता है, उसी प्रकार धर्मानुष्ठानों के फलस्वरूप चाण्डाल अजुगुप्सनीय होते हैं।

धर्मेण हि चण्डाला अजुगुप्सनीया भवन्ति।"[1]

यदि उच्च कुलीन जनों में दोष का आविर्भाव गर्हा का कारण होता है, तो नीच जनों में भी गुण-योग समुचित सत्कार का कारण होना चाहिए।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३१।

मनुष्य के कर्मानुसार ही उन को ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न संज्ञाएँ दी गई हैं। वस्तुतः सब एक ही हैं।

"एकमिदं सर्वमिदमेकम् ।"[१]

जो लोग शालि-क्षेत्रों का वपन करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, उनकी क्षत्रिय संज्ञा है।[२]

दूसरे लोग जो परिग्रह को रोग, गण्ड और शल्य समझकर उस का त्याग कर वन में तृण, काष्ठ, शाखा, पत्र, पलाशों को एकत्र कर तृण-कुटिका अथवा पर्ण-कुटिका का निर्माण कर उस में निवास करते हुए ध्यान मग्न रहते हैं और प्रातः काल पिण्डार्थ ग्राम में जाते हैं, उन का ग्राम-वासी विशेष सत्कार करते हैं, और उन्हें दान देते हैं। स्वकीय परिग्रह का त्याग कर ग्राम-निगम-जनपद से बाहर जाने के कारण इन की बहिर्मनस्क ब्राह्मण संज्ञा हुई।[३]

कुछ ऐसे थे, जो ध्यानादि का अनुष्ठान न कर ग्रामों में जाकर मंत्रों को पढ़ाते थे। ग्राम वासियों ने इन को अध्यापक कहा।[४]

कुछ ऐसे व्यक्ति जो नाना-विध अर्थोपार्जन में दत्तचित रहते थे, उन को वैश्य कहा गया।[५]

ऐसे व्यक्ति जो निम्न प्रकार के कर्मों द्वारा अपनी जीविका चलाते थे, शूद्र कहलाये।[६]

खेती करने वालों को कृषक कहा गया।[७]

जो धर्म, शील, व्रत, सदाचरण तथा आभाषणादि के द्वारा पर्षद् का अनुरंजन करता था, वह राजा कहलाया।[८]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. वही, पृ० ३२८।
३. वही, पृ० ३२८।
४. वही, पृ० ३२९।
५. वही, पृ० ३२९।
६. वही, पृ० ३२९।
७. वही, पृ० ३२९।
८. वही, पृ० ३२९।

जो वाणिज्य व्यवसाय के द्वारा अपनी जीवका यापन करते थे, उन की वणिक् संज्ञा हुई ।[१]

अन्य व्यक्ति जो प्रव्रजित हो कर पर-पीड़ा हरण करते थे, उन को प्रव्रजित कहा गया ।[२]

इस प्रकार मनुष्य को उस के कर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न संज्ञाएं दी गईं ।

"कुणालावदान" में हम देखते हैं कि बुद्ध-शासन में अत्यधिक प्रीति उत्पन्न होने के कारण राजा अशोक जहाँ कहीं भी शाक्यपुत्रियों को देख कर उन को शिरसा प्रणाम करता है । किन्तु यह बात उस के यश नामक अमात्य को नहीं रुचती । वह राजा से कहता है—

"देव, नार्हसि सर्ववर्णप्रव्रजितानां प्रणिपातं कर्तुम् । सन्ति हि शाक्यश्रामणेरकाश्चतुर्भ्यो वर्णेभ्यः प्रव्रजिता इति ।"[३]

उस समय राजा उस से कुछ नहीं कहते । किन्तु कुछ समय बाद वह सभी अमात्यों से भिन्न-भिन्न प्राणियों का शिर लाने को कहते हैं और यश को मनुष्य का शिर लाने का आदेश देते हैं । फिर उनसे उन शिरों को बेचने के लिए कहते हैं । अन्य प्राणियों का शिर तो लोग खरीद लेते है किन्तु मनुष्य के शिर का कोई ग्राहक नहीं मिलता । कारण पूछने पर यश कहता है—"जुगुप्सितत्वात्" । राजा उससे पूछता है कि क्या मेरा भी शिर जुगुप्सित है ? और उस के "एवमिति" कहने पर राजा कहता है—

"विनापि मूल्यैर्विजुगुप्सितत्वात्
प्रतिग्रहीता भुवि यस्य नास्ति ।
शिरस्तदासाद्य ममेह पुण्यं
यदर्जितं किं विपरीतमत्र ॥"

तुम शाक्य भिक्षुओं की जाति को ही देखते हो, उन के आन्तरिक गुणों को नहीं । धार्मिक कार्यों में गुण देखे जाते हैं, जाति का विचार नहीं किया जाता ।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२६ ।
२. वही, पृ० ३२६ ।
३. कुणालावदान, पृ० २४२ ।

"आवाहकालेऽथ विवाहकाले ।
जातेः परीक्षा न तु धर्मकाले ।
धर्मक्रियाया हि गुणा निमित्ता
गुणाश्च जातिं न विचारयन्ति ।।"

चित्त की एकाग्रता के कारण ही मानव शरीर निन्द्य अथवा स्तुत्य होता है। जिस प्रकार गुण परिवर्जित द्विजाति की पतित कह कर अवज्ञा की जाती है, उसी प्रकार निर्धन एवं नीचकुलोत्पन्न भी शुभ गुण युक्त प्राणी प्रणम्य है। सत्कार गुणों एवं सदाचरणों के होते हैं, न कि जाति और कुल के। वह ऊँच और नीच की वैषम्य दृष्टि का खण्डन करते हैं।

"त्वग्मांसास्थिशिरायकृत्प्रभृतयो भावा हि तुल्या नृणाम् ।"[1]

आनन्द के जल-याचना करने पर जब प्रकृति अपने को मातंगदारिका बतलाती है, तो वह कहते हैं—

"**नाहं ते भगिनि कुलं वा जातिं वा पृच्छामि । अपि तु सचेन्ते परित्यक्तं पानीयम्, देहि, पास्यामि ।**"[2]

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध कर मानव समानता के आदर्श का प्रतिपादन किया। क्या ब्राह्मण और क्या मातंग; मानव होने के कारण सभी उन की दृष्टि में एक थे। ये सभी सत्त्व ब्रह्मा के द्वारा नहीं उत्पन्न किये गये हैं, अपितु क्लेशज और कर्मज हैं तथा नाना कर्माश्रयों के कारण पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते हैं।[3] वस्तुतः सब एक ही हैं।

[ग] ब्राह्मणों पर आक्षेप

प्राणि-वध का जो पाप कर्म है, वह ब्राह्मणों के द्वारा ही प्रकाशित किया गया है। मांस-भक्षण की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणों ने ही पशु-प्रोक्षण की कल्पना की। इन के अनुसार मंत्रों से प्रोक्षित हो पशु स्वर्ग को जाते हैं। यदि स्वर्ग-गमन का यही मार्ग है तो फिर ये ब्राह्मण स्वयं अपने को अथवा अपने माता-पिता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, दुहिता, भार्या आदि को मंत्रों द्वारा क्यों नहीं प्रोक्षित करते ? जिस से सभी को सद्गति की प्राप्ति हो।

---

१. कुणालावदान, पृ० २४२—२४४ ।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४ ।
३. वही, पृ० ३३२ ।

ब्राह्मणों ने, चार प्रकार के पाप ब्राह्मणों में बतलाये हैं—

सुवर्णचौर्यं मद्यं च गुरुदाराभिमर्दनम् ।
ब्रह्मघ्नता च चत्वारः पातका ब्राह्मणेष्वमी ।"[1]

स्वर्ण-हरण से बढ़ कर और कोई स्तेय नहीं है। स्वर्ण-हरण करने वाला विप्र अब्राह्मण कहलाता है। सुरापान को वर्ज्य बतलाया है और दूसरे अन्न पान का चाहे वे यथेष्टतः भक्षण करें। उस में कोई दोष नहीं। केवल गुरुदाराभिगमन का निषेध किया है, चाहे अन्य स्त्रियों में वे यथेष्टतः प्रवृत्त हों। ब्राह्मण-वध की निन्दा की, किन्तु अन्य अनेक प्राणि-वध का कुछ भी विरोध न किया। उन की दृष्टि में ये पाप-कर्म न थे।

'इत्येते पातका ह्युक्ता ब्राह्मणेषु चतुर्विधाः ।
भवन्त्यब्राह्मणा येन ततोऽन्येऽपातकाः स्मृताः ॥[2]

इतना ही नहीं, उक्त चार पातकों के करने से अब्राह्मणत्व को भी प्राप्त हुआ विप्र कुछ निश्चित व्रतानुष्ठान के पश्चात् पुनः ब्राह्मण पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

,'असौ द्वादशवर्षाणि धारयित्वा खराजिनम् ।
खट्वाङ्गमुच्छ्रितं कृत्वा मृतशीर्षे च भोजनम् ॥
एतद्व्रतं समादाय निश्चयेन निरन्तरम् ।
पूर्णे द्वादशमे वर्षे पुनर्ब्राह्मणतां व्रजेत् ॥"[3]

ब्राह्मण वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, शाम्यप्राश आदि यज्ञों का यजन करते हुए अनेक मंत्रों का उच्चारण कर प्राणि-हिंसा करते हैं। किन्तु स्वर्ग-प्राप्ति का यह मार्ग नहीं है।

शील-रक्षा ही स्वर्ग-प्राप्ति का सच्चा मार्ग है।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२२।
२. वही, पृ० ३२२।
३. वही, पृ० ३२३।

"शीलं रक्षेत मेधावी प्रार्थयानः सुखत्रयम् ।
प्रशंसां वित्तलाभं च प्रेत्य स्वर्गे च मोदनम् ॥"[1]

स्वर्ग-गमन के आठ प्रकार बतलाये गये हैं —

'श्रद्धा शीलं तपस्त्यागः श्रुतिर्ज्ञानं दयेव च ।
दर्शनं सर्ववेदानां स्वर्गव्रतपदानि वै ॥'[2]

[घ] ब्राह्मण-पद की मान्यता

बुद्ध ने जाति-भेद को स्वीकार नहीं किया, किन्तु "ब्राह्मण" शब्द की प्रतिष्ठा को स्थिर रखा । फिर भी उसे जन्म से नहीं माना । उच्च गुण वाले को ही बुद्ध ने ब्राह्मण स्वीकार किया । जो उग्रतप, विनीत, व्रत एवं शील में सदा तत्पर रहते हैं तथा अहिंसा, दम और संयम में सदा रत हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं तथा वे ब्रह्मपुर में जाते हैं ।

"ये ब्राह्मणा उग्रतपा विनीता
व्रतेन शीलेन सदा ह्युपेताः ।
अहिंसका ये दमसंयमे रता-
स्ते ब्राह्मणा ब्रह्मपुरं व्रजन्ति ॥"[3]

O

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३० ।
२. वही, पृ० ३३१
३. वही, पृ० ३२७

परिच्छेद २

आश्रम-व्यवस्था

रामायण-काल में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।[1] वेदों में ब्रह्मचर्य का स्थान बहुत ऊँचा है। बुद्ध की शिक्षाओं में भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। ब्रह्मचारी स्त्री-सम्पर्क से सर्वथा दूर रहता था। राजा वासव के द्वारा पंच महाप्रदान अर्पित किये जाने पर माणवक सुमति उन में से चार को ग्रहण करता है किन्तु एक सर्वालङ्कारविभूषिता कन्या का परित्याग कर देता है और कहता है—"अहं ब्रह्मचारी"।[2]

बौद्धों ने गृहस्थ-जीवन को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। वे गृहस्थाश्रम को आत्मबोधि में एक प्रबल अन्तराय समझते थे। गृहस्थाश्रम का मोह प्रव्रज्या-ग्रहण में बाधक होता था। गुप्त गान्धिक स्थविर से कहता है—

"आर्य, अहं तावद्गृहवासे परिगृद्धो विषयाभिरतश्च। न मया शक्यं प्रव्रजितुं। अपितु योऽस्माक पुत्रो भवति, त वयमार्यस्य पश्चाच्छ्रमणं दास्यामः"।[3]

इस प्रकार रामायण में प्रतिष्ठित गृहस्थाश्रम की सर्वोत्कृष्ट महिमा[4] इस काल में सर्वथा विलुप्त हो गई।

बौद्ध-धर्म में वानप्रस्थ-आश्रम का कोई भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

---

१. रामायण २।१००।६२

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१७।

४. "चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्। २।१०६।२२

बौद्ध-धर्म में वानप्रस्थ आश्रम की कोई अपेक्षा नहीं। ये सीधे भिक्षु बन सकते थे। सार्थवाह पूर्ण विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार न कर प्रव्रज्या-ग्रहण करता है।[1] माणवक ब्रह्मप्रभ भी विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा कर प्रव्रज्या-ग्रहण करता है।[2]

---

१. पूर्णावदान, पृ० २१।

२. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।

परिच्छद ३

संस्कार

जिन षोडश-संस्कारों की गणना ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्राप्त होती है, वे बौद्ध-साहित्य में नहीं उपलब्ध होते । तथापि उन में से कुछ का उल्लेख हुआ है । किन्तु उन का वह प्राचीन स्वरूप यहाँ नहीं प्राप्त होता जो हमें ब्राह्मण-साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध-काल में "संस्कार" का आशय किसी "लौकिक व्यवहार" से होता था, जिस में न तो यज्ञ यागादि किसी धार्मिक कृत्य के अनुष्ठान की आवश्यकता होती थी और न उन कृत्यों के सम्पादन करने वाले किसी पुरोहितादि की ही ।

नीचे "दिव्यावदान" में प्राप्त होने वाले कुछ संस्कारों का परिचय दिया जाता है।

[१] गर्भाधान-संस्कार

'दिव्यावदान' में गर्भ-स्थापन की क्रिया एक संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित नहीं प्राप्त होती है । इसका स्वरूप पति-पत्नी के रमण-परिचरण द्वारा प्रादुर्भूत होने वाले एक सहज व्यापार के रूप में प्राप्त होता है । इस संवन्ध में विभिन्न स्थलों पर समान रूप से यह अंश उपलब्ध होता है—

"स तया सार्धं क्रीडते रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रमतः परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता" ।[1]

आपन्नसत्त्वा स्त्रियों के आहार-विहार में विशेष सावधानी रखी जाती थी । उन्हें वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो अति तिक्त, अम्ल,

---

१. पूर्णावदान, पृ० १५ ।, स्वागतावदान, पृ० १०४ ।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२ ।, संघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।

लवण, मधुर, कटु एवं कषाय न होते थे । गर्भ-परिपुष्टि-काल पर्यन्त वे किञ्चिदपि अमनोज्ञ शब्द-श्रवण नहीं करती थीं ।[1]

[२] जातकर्म अथवा जातिमह-संस्कार

आठ या नव महीने व्यतीत होने पर बालक या बालिका का जन्म होता था ।[2] सन्तान के उत्पन्न होने पर राजा तथा अन्य सम्पन्न गृहपति इक्कीस दिनों तक विस्तार के साथ जातकर्म [जातिमह] संस्कार करते हैं । वे नगर को पाषाण, शर्कर, वालुकादि से रहित कर चन्दन-वारि-सिक्त कर देते हैं । नगर में ध्वज-पताकाएँ फहराती हैं, सुरभिधूपघटिका रखी जाती है तथा नानाविध पुष्प बिखेर दिये जाते हैं। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, और याचकों को दान भी दिया जाता है। राजा सर्व बन्धनों को उन्मुक्त कर देते है ।[3]

[३] नामकरण-संस्कार

सविस्तार जातकर्म के पश्चात् शिशु का नाम रखा जाता था। ये नाम सर्वथा कुल के अनुरूप होते थे। नाम खूब सोच समझ कर विचार पूर्वक रखे जाते थे। विना विचार किये हुए उलटा सीधा जो जी में आया, ऐसे नामकरण का विधान न था।[4] गृहपति बलसेन के पुत्र का नाम "श्रोण कोटिकर्ण" उस के श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न होने तथा कोटि मूल्यों वाली रत्न-जटित आमुक्ता (कर्णाभूषण) के साथ उत्पन्न होने के कारण रखा जाता है।[5] ५०० वणिक् पुत्रों का नाम कुल के अनुरूप ही रखा जाता है ।[6] नाम

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, स्वागतावदान, पृ० १०४ ।, सुधनकुमारावदान पृ० २८६ ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १५ । स्वागतावदान पृ० १०४ । संघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, स्वागतावदान पृ० १०४ । सुधनकुमारावदान, पृ० २८६,८७ ।
४. स्वागतावदान, पृ० १०५ । संघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।, सुधनकुमारा-वदान, पृ० २८७ ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।
६. संघरक्षितावदान, पृ २०४—२०५ ।

सार्थक भी होते थे।[1] इससे वृहस्पति कथित नामकरण की महत्ता द्योतित होती है।[2]

[४] विद्यारम्भ अथवा वेदारम्भ-संस्कार

इस संस्कार का कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त होता। परन्तु यह ज्ञात होता है कि बड़े होने पर बालक अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता था।[3]

[५] विवाह-संस्कार

अध्ययन समाप्त कर लेने और बालक के वयस्क हो जाने पर उनका विवाह होता था। शार्दूलकर्ण जब पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर "चीर्णव्रत" तथा सभी ब्राह्मण-मंत्रों एवं वेदादि शास्त्रों में पारंगत हो जाता है, तब मातंगतराज त्रिशंकु यह सोचता है "समयोऽयं यन्न्वहमस्य निवेशनधर्मं करिष्ये।"[4] किन्तु यदि वह विवाह न कर सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय तपस्या करने की इच्छा प्रकट करता था, तो उसके माता-पिता तदर्थ अपनी अनुमति प्रदान कर देते थे। ब्रह्मप्रभ माणवक माता-पिता के द्वारा विवाह-प्रस्ताव किये जाने पर ऐसी ही इच्छा प्रकट करता है।[5]

(क) विवाह एक लौकिक-व्यवहार

विवाह के लिए "निवेश"[6] या "निवेशनधर्म"[7] शब्द प्रचलित थे। विवाह में भी किसी धार्मिक विधि-विधान का अनुष्ठान नहीं होता था और न किसी पुरोहित आदि की ही आवश्यकता होती थी। यह एक प्रकार का लौकिक व्यवहार था।

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, स्वागतावदान, पृ० १०४।

२. "नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः,
शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्य-
स्ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म॥"

३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।

५. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।

६. पूर्णावदान, पृ० १६,२१। शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२५

७. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।

वर से शुल्क ले कर कन्या का विवाह करने की भी प्रथा थी। पुष्करसारी ब्राह्मण से अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए पत्नी के रूप में उस की कन्या की याचना करते हुए मातंगराज त्रिशंकु कहता है—

"यावन्तं कुलशुल्कं मन्यसे,तावन्तं दास्यामि"।[1]

ऐसे भी स्थल प्राप्त होते हैं, जब पिता अपनी सर्वालंकार-विभूषित कन्या का दान किसी योग्य व्यक्ति को करता है। वस्त्राभरणों से सुसज्जित कन्या का सव्य-पाणि से ग्रहण कर तथा सव्येतर पाणि में भृङ्गार (जलपात्र) को धारण कर पिता उसे भार्यार्थ वर को प्रदान करता था। इस में प्राचीन प्राजापत्य-विवाह का आभास प्राप्त होता है। पुष्करसारी ब्राह्मण कहता है—

"ददामि तेऽहं प्रकृतिं ममामलां
शीलेन रूपेण गुणैरुपेतः।
शार्दूलकर्णः प्रकृतिश्च भद्रा
उभौ रमेतां रुचितं ममेदम्॥

प्रगृह्य भृङ्गारमुदकप्रपूर्ण-
मावर्जितो ब्राह्मणो हृष्टचित्तः।
अनुप्रदासीदुदकेन कन्यकां
शार्दूलकर्णस्य इयमस्तु भार्या॥"[2]

(ख) स्वयंवर-प्रथा

इसमें पूर्व निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाला कन्या के पाणिग्रहण का अधिकारी होता है। "माकन्दिकावदान" में एक ऐसे लोहार (अयस्कार) की कथा प्राप्त होती है, जो कहता है "मैं अपनी पुत्री को कुल, रूप अथवा धन की दृष्टि से किसी को नहीं दूँगा, अपितु जो मेरे शिल्प के समान शिल्प वाला या इससे भी अधिक होगा, उसे प्रदान करूँगा"।[3] इसी प्रकार माकन्दिक रूपोपपन्न, सर्वांग सुन्दरी अपनी कन्या के प्रति कहता है[4]—

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२०।
२. वही, पृ० ४२४।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५०।
४. वही, पृ० ४४६।

"इयं दारिका न मया कस्यचित् कुलेन दातव्या न धनेन नापि श्रुतेन, किं तु योऽस्या रूपेण समो वाप्यधिको वा, तस्य मया दातव्येति।"

(ग) समुचित कुल में विवाह

उक्त सन्दर्भों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय कन्या का पाणिग्रहण कुल, धन, रूप, विद्या आदि दृष्टियों से सुविचारित व्यक्ति के साथ ही किया जाता था। विवाह सदृश कुल में ही होते थे। इसका ज्ञान कई स्थलों पर प्राप्त होने वाले इस वाक्य से होता है—"तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्।"

"स्वागतावदान" में अपनी पुत्री के लिये अनेक याचनकों के आने पर बोध गृहपति की उद्घोषणा से भी कन्या का विवाह कुल और शील के अनुरूप किये जाने का ज्ञान प्राप्त होता है।[1]

(घ) अन्तर्जातीय-विवाह

परन्तु इसके विपरीत अन्तर्जातीय-विवाह का भी प्रचलन था। शार्दूलकर्ण और प्रकृति का विवाह प्रतिलोम-विवाह का उदाहरण है, जिसमें एक निम्न जाति का व्यक्ति उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह करता है।[2] क्षत्रिय राजा बिन्दुसार का ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह होना भी इसका दृष्टान्त है।[3]

(ङ) पत्न्यर्थ कन्या-याचना

किसी रूपिणी कन्या की अतुल सौन्दर्य राशि का गुण-गान सुन कर उसे पत्न्यर्थ प्राप्त करने के इच्छुक उसके पिता के पास याचनक भेजते थे, जो विवाह के लिये कन्या की याचना करता था। "स्वागतावदान" में बोध गृहपति की एक ऐसी ही रूपयौवनसम्पन्न विशालकुल-सम्भूत दुहिता को अपनी भार्या रूप में ग्रहण करने के लिए नानादेश-निवासी राजपुत्र, अमात्यपुत्र गृहपति-पुत्र, धनिक, श्रेष्ठिपुत्र और सार्थवाह-पुत्र याचनकों को प्रेषित करते

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२४।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।

हैं।[1] बोध गृहपति स्वयं किसी के पास अपनी पुत्री के विवाह के लिए नहीं जाता, प्रत्युत् उसको विवाह में प्राप्त करने के अभिलाषी स्वतः उसके पास याचनकों द्वारा प्रार्थना भेजते थे।

कन्या की याचना उसके पिता से करने का उदाहरण रामायण में भी उपलब्ध होता है, जब सीता से विवाह के इच्छुक राजगण महाराज जनक के समक्ष अपना प्रस्ताव रखते थे।[2]

(ब) कन्या द्वारा स्वतः प्रस्ताव

ऐसा भी स्थल दृष्टिगोचर होता है, जहाँ कन्या स्वतः अभीप्सित व्यक्ति के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव माता-पिता के सम्मुख रखती है। प्रकृति आनन्द के प्रति आसक्त हो अपनी माता से कहती है कि वह आनन्द को स्वामी के रूप में प्राप्त करेगी; अन्यथा अपने जीवन का परित्याग कर देगी।[3]

(स) विवाह के लिए माता-पिता की अनुमति की अपेक्षा

किन्तु इतना स्पष्ट है कि कन्या स्वतः जिस किसी के साथ विवाह करने के लिए स्वतंत्र न थी। तदर्थ उसे माता-पिता की अनुमति की अपेक्षा होती थी। प्रकृति के यह कहने पर कि मैं आनन्द को अपना स्वामी चाहती हूं। भगवान् बुद्ध पूछते हैं —"अनुज्ञातासि प्रकृते मातापितृभ्यामानन्दाय"।[4]

(द) बहुपत्नी-प्रथा

बहुपत्नी-प्रथा का समाज में प्रचलन था। राजा तथा समाज के अन्य समृद्धिशाली व्यक्ति अनेक पत्नियों को रखते थे। "माकन्दिकावदान" में राजा उदयन की दो पत्नियां श्यामावती और अनुपमा थीं। इनके अतिरिक्त उसके अन्तःपुर में ५०० अन्य स्त्रियों का भी उल्लेख है।[5] "कनकवर्णावदान" में

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. १।६६।१५—१६
३. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
४. वही, पृ० ३१६।
५. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५—५७।

महाधनी एवं महाभोगी राजा कनकवर्ण के अन्तःपुर में बीस हजार स्त्रियाँ थीं।[1]

परन्तु बहुपत्नी-प्रथा के प्रचलित होने पर भी एक पत्नी-व्रत का महान् आदर्श लुप्त नहीं हुआ था। "सुधनकुमारावदान" में अत्यन्त सम्पन्न परिवार का होने पर भी राजकुमार सुधन का प्रेम एकनिष्ठ है।[2]

(झ) विवाह की आयु

अध्ययन समाप्त कर लेने और बालक के वयस्क हो जाने पर उसका विवाह होता था। एक स्थल पर कहा गया है कि जब ब्रह्मप्रभ माणवक १६ वर्ष की अवस्था का हुआ तो उसके माता-पिता उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं।[3]

बाल-विवाह का उदाहरण कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। विवाह पूर्ण युवावस्था में ही सम्पन्न होते थे। कन्या के युवती हो जाने पर ही उसका गुण-श्रवण कर याचनक गण आते थे—

"यदा महती संवृत्ता, तदा रूपिणी यौवनानुरूपया आचारविहारचेष्टया देवकन्येव तद्गृहमवभासमाना सुहृत्सम्बन्धिबान्धवानामन्तर्जनस्य च प्रीतिमुत्पादयति। तस्यास्तादृशीं विभूतिं श्रुत्वा नानादेशनिवासिराजपुत्रा······भार्यार्थं याचनकान् प्रेषयन्ति।"[4]

"स्वागतावदान" के इस अवतरण से यह स्पष्ट रूपेण परिज्ञात होता है कि विवाह के पूर्व कन्या यौवनानुरूप आचार, विहार, भ्रूभङ्ग-कटाक्षपातादि काम-चेष्टाओं में सम्यक् प्रकारेण निष्णात हो चुकी रहती थी।

विभिन्न स्थलों पर प्राप्त होने वाले—"तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता"[5]—इस अंश

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८० ।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २६६ ।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३११ ।
४. स्वागतावदान, पृ० १०४ ।
५. पूर्णावदान, पृ० १५ ।

से यह भली प्रकार से प्रतिपादित होता है कि विवाह के समय कन्या एक अबोध बालिका नहीं रहती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुविकसित हो चुकते थे तथा वह पति के साथ रति-क्रीड़ा करने एवं गर्भ-धारण करने के सर्वथा अनुरूप अवस्था को प्राप्त कर एक पूर्ण वयस्क तरुणी के रूप में प्रतिष्ठित रहती थी।

"रामायण" में भी युवावस्था में ही विवाह होने का प्रमाण प्राप्त होता है। सीता एवं उनकी अन्य वहिनें विवाह के बाद अपने-अपने पतियों के साथ एकान्त में रमण करने लगी थीं।[१]

(६) संयास-संस्कार

मनुष्य अपनी समस्त धन-राशि का दीन अनाथ कृपणों को दान कर[२] तथा पुत्र-कलत्र, राज्य, गृह आदि[३] सभी का परित्याग कर वुद्ध की शरण में जाता था और वे "एहि भिक्षो। चर ब्रह्मचर्यम्" के द्वारा उसे प्रव्रजित करते थे।[४] इस प्रकार वह संयास धारण करता था।

(७) अन्त्येष्टि या मृतक-संस्कार

"यजुर्वेद" के अनुसार शरीर का संस्कार भस्मपर्यन्त है।[५] किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर लोग नील पीत लोहित स्वच्छ वस्त्रों से शिविका अलंकृत कर महान् सत्कार के साथ शव को श्मशान में ले जाते थे।[६] वहाँ सुगन्धित लकड़ियों की चिता बना कर शव को जला देते थे।[७] इस प्रकार

---

१. "रेमिरे मुदिताः सर्वे भर्तृभिर्मुदिता रहः (१।७७।१३)

२. कोटिकर्णावदान, पृ० ११।

३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।

४. पूर्णावदान, पृ० २२।

५. "भस्मान्तं शरीरम्"

६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।

७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६१।

अन्त्येष्टि क्रिया का सम्पादन किया जाता था। शव को दाह-कर्म के लिए ले जाने को "अभिनिर्हरण" कहते थे।[1]

श्रीमानों एवं अन्य कुलीनों के शव-दाह के पश्चात् उनके भस्मावशेष पर स्तूप बना कर उन्हें चिरस्मरणीय बनाया जाता था।

O

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३।

परिच्छेद ४

आचार-विचार

किसी युग की सामाजिक-व्यवस्था में तत्कालीन आचार-विचारों का यथेष्ट महत्त्व है।

[क] परिवार

परिवार के सदस्यों में पति, पत्नी, पुत्र, स्नुषा (पुत्र-वधू) के साथ ही साथ दास एवं दासी की भी गणना की गई है।[1] भाई की स्त्री को "भ्रातुर्जाया"[2] तथा बड़े भाई की पत्नी को "ज्येष्ठभविका"[3] कहते थे। बड़े भाई को "ज्येष्ठतर" की संज्ञा दी जाती थी।[4]

[ख] संबोधन-प्रणाली

तत्कालीन संबोधन-प्रणाली के अन्तर्गत माता को "अम्ब"[5], पिता को "तात"[6] तथा पुत्र एवं पुत्री को "पुत्र"[7] और "पुत्रि"[8] के नामों से सम्बोधित किया जाता था। पत्नी, पति को "आर्यपुत्र"[9]

---

१. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७७।, मेण्ढकावदान, पृ० ८३।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० ६,१०
३. पूर्णावदान, पृ० १८।
४. वही, पृ० १८।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ३,१०। नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।, सहसोद्गतावदान, पृ० १८३।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५१। इत्यादि
६. वही, पृ० २,१०।, पूर्णावदान, पृ० १६।
७. वही, पृ० ३,४,११। वही, पृ० १६। नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।, सहसोद्गतावदान, पृ० १८३।
८. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४, ३१५। माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।
९. कोटिकर्णावदान, पृ० १।, नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५। सहसोद्गतावदान, पृ० १८३।, माकन्दिकावदान, पृ० १४५।

या "देव"[१] पद से संबोधित करती थी। पति, पत्नी के लिए "भद्रे"[२], "देवि"[३] या "प्रिये"[४] संबोधन का प्रयोग करता था। पुत्र-वधू के लिए "वधूके" शब्द का प्रयोग होता था।[५]

किसी भी स्त्री के लिए "भगिनि' शब्द का प्रयोग किया जाता था।[६] मित्र को "वयस्य"[७] या "प्रियवयस्य"[८] कहते थे। छोटे के लिए मित्रतापूर्ण संबोधन "भागिनेय"[९] और बड़े के लिए आदरसूचक संबोधन "मातुल"[१०] प्रचलित था।

ऋषियों और तपस्वियों को "भगवन्",[११] "महर्षे",[१२] "ऋषे"[१३] आदि नामों से संबोधित किया जाता था।

[ग] अभिवादन-प्रकार

अभिवादन या प्रणाम, माता-पिता[१४] या आदरणीय व्यक्ति[१५] को

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४६९, ४७० ।
२. पूर्णावदान पृ० १७ । नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५ । सहसोद्गतावदान पृ० १९३ । माकन्दिकावदान, ४४६, ४४७ ।
३. कुणालावदान, पृ० २६४ । रुद्रायणावदान, पृ० ४७०
४. वही, पृ० २६७ ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ८ ।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ९ ।, रूपावत्यवदान, पृ० ३०७,३०८ । शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४ । माकन्दिकावदान, पृ० ४५३ ।
७. माकन्दिकावदान, पृ० ४५३ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७२ ।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५ ।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६ ।
१०. वही, पृ० ४३६ ।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७ ।
१२. वही, पृ० २९२, २९७ ।
१३. वही, पृ० २९६ ।
१४. कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।
१५. वही, पृ० ११ ।

पैरों पर गिर कर शिरसा किया जाता था। पिता अपने पुत्र का आलिंगन कर [1] उसे आशीर्वाद देता था। मित्र आपस में मिल कर भी अभिवादन करते थे, जिसके लिए "कण्ठाश्लेष" शब्द प्रयुक्त होता था।[2] हाथ जोड़ कर भी प्रणाम किया जाता था।[3]

[घ] भाव-विशेष की अभिव्यक्ति

दुःखावेग में स्त्रियाँ हाथों से अपनी छाती पीट लेती थीं। मैत्रकन्यक के समुद्रावतरण करने के लिए जाने का समाचार सुन कर उस की माँ करुण-क्रन्दन करती हुई दोनों हाथों से प्रगाढ़ उर-ताड़न करती है।[4] एक अन्य स्थल पर भविल-पत्नी पूर्ण को बच्चों के लिए पूर्वभक्षिका (नाश्ता) ले आने को भेजती है। मार्ग में किसी पुरुष को गोशीर्षचन्दन ले जाते देख कर वह उस से उस काष्ठभार को भविल-पत्नी के पास ले जाने के लिए कहता है। भविल-पत्नी उस से यह सुन कर कि पूर्ण ने इस काष्ठ-भार को भेजा है, उरप्रहार कर कहती है कि यदि पूर्ण के पास धन नहीं है, तो क्या वह बुद्धि से भी भ्रष्ट हो गया है?[5]

चिन्तित होने की मुद्रा प्रायः "करे कपोलं दत्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः" से अभिव्यक्त की गई है।[6]

विदाई के समय छोटे लोग अपने बड़ों की आज्ञा ले कर जाया करते थे। कोटिकर्ण महासमुद्रावतरण करने के लिए अपने पिता से आज्ञा लेता है।[7] "चूडापक्षावदान' में गृहपति-पुत्र अपनी माता से समुद्रावतरण की अनुमति लेता है।[8]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १०।, कुणालावदान, पृ० २६८।
२. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
३. नगरावलम्बिकावदान, पृ०५३। मैत्रकन्यकावदान पृ० ५०४,५०७।
४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९।
५. पूर्णावदान, पृ० १९।
६. वही, पृ० १६,२९। मैत्रेयावदान, पृ० ३५।; नगरावलम्बिकावदान, पृ०५४। चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६७। सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० २।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३७।

[ङ] कृतज्ञता की भावना

समाज में यदि कोई व्यक्ति किसी का उपकार कर देता था तो वह उसे विस्मृति-गर्त में डाल कर कृतघ्नता का भाजन नही बनता था, वरन् उस के प्रति चिर कृतज्ञ रहता था। जब जन्मचित्रक नागपोतक को पकड़ने के लिए अहितुण्डिक जाता है तो वह आत्मत्राणार्थ हलक लुब्धक की शरण-ग्रहण करता है और उस के द्वारा रक्षा किये जाने पर वह नागपोतक उसे वर एवं अनेक रत्न देता है। इतना ही नहीं ऋषि द्वारा निर्दिष्ट अमोघपाश को माँगने के लिए जब वह लुब्धक फिर जाता है, तब वह नागपोतक सोचता है "ममानेन बहूपकृतम्" और अमोघपाश उसे दे देता है। नागपोतक लुब्धक द्वारा किये गये उपकारों के लिए इन शब्दों में आभार-प्रदर्शन करता है—

"त्वं मे माता, त्वं मे पिता, यन्मया त्वामागम्य मातापितृवियोगजं दुःखं नोत्पन्नम्।" [१]

इसी प्रकार पत्नी तथा पुत्रों द्वारा उपेक्षित गृहपति प्रेष्यदारिका की सेवा से स्वस्थ होने पर सोचता है कि मैं केवल इसी के कारण जीवित रह सका हूँ। अतः इसका कुछ प्रत्युपकार करना चाहिये। तथा वह निम्नलिखित शब्दों में आभार-प्रदर्शन करता है—

"दारिके, अहं पत्न्या पुत्रैश्चाप्युपेक्षितः। यत् किंचिदहं जीवितः, सर्वं तव प्रभावात्। अहं ते वरमनुप्रयच्छामीति।" [२]

कृत-उपकारों के लिए आभार-प्रदर्शन का निदर्शन आदि काव्य रामायण में भी प्राप्त होता है। [३]

[च] जनगर्हणा

व्यक्ति को अपने संबन्धि-जन-मध्य से बहिष्कार एवं जन-गर्हणा नहीं रुचती थी। गृहपति सुभद्र के एक संबन्धी को जब इस यथार्थ बात का ज्ञान

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८५।
२. पूर्णावदान, पृ० १५।
३. "प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया॥ (४।३८।२५)

होता है कि गृहपति ने अपनी सत्त्ववती पत्नी की हत्या कर डाली है । किन्तु वह महानुभाव एवं महर्द्धिक सत्त्व अग्नि से भी न जला और राजकुल में संवर्धित हो रहा है तो वह गृहपति सुभद्र से कहता है—

तद्गतमेतत् । यदि तावत्कुमारमानयसि, इत्येवं कुशलम् । नो चेद्वयं त्वां ज्ञातिमध्यादुत्क्षिपामः । सलोकानां [सालोहितानां ?] संकारं पातयामः रथ्यावीथीचत्वरशृङ्गाटकेषु चावरणं निश्चारयामः—अस्माकं भगिनी सुभद्रेण गृहपतिना प्रघातिता । स्त्रीघातकोऽयम् । न केनचिदाभाषितव्यमिति । राजकुले च तेऽनर्थं कारयाम इति ।"

यह सुन कर गृहपति सुभद्र अति व्यथित हो जाता है और जा कर राजा बिम्बिसार से याचना कर ज्योतिष्क कुमार को अपने साथ ले आता है ।[1]

[छ] विपत्ति में दूसरों की सहायता

दूसरे की विपत्ति संवेग उत्पन्न करने वाली होती है, ऐसा भगवान ने स्वयं कहा है— "परविपत्तिः संवेजनीयं स्थानमिति" ।[2] द्रष्टा के हृदय में उस के प्रति करुणा उमड़ पड़ती है, उस के साथ उसका व्यवहार सहानुभूति-पूर्ण होता है । ऐसा भी दृश्य प्राप्त होता है जहाँ लोग दूसरे की विपत्ति में परस्पर मिल कर हाथ बटाते थे । "सहसोद्गतावदान" में जब वणिक-जनों को यह ज्ञात होता है कि गृहपतिपुत्र हमारे साथ सहासमुद्रावतरण करने वाले एक वयस्य का पुत्र है, जिसकी महासमुद्रावतरण में मृत्यु हो गई है तो वे कहते हैं—

"शक्यं बहुभिरेकः समुद्धर्तुम्, न त्वेव एकेन बहवः । तदयं पटकः प्रज्ञप्तो येन वो यत् परित्यक्तम् सोऽस्मिन् पटकेऽनुप्रयच्छत्विति'

और इस प्रकार मणि-मुक्तादि रत्नों की महान् राशि एकत्रित कर वे उसको प्रदान करते हैं ।[3]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६८-१६९ ।
१. अशोकावदान, पृ० २८१ ।
३. सहसोद्गतावदान, पृ० १९० ।

[ज] अपने ही सुख में मग्न रहना

इसके विपरीत ऐसे समाज का भी चित्र उपलब्ध होता है, जिसमें प्राणी स्वकीय सुख-सम्पत्ति में ही निरत रहता हुआ विपत्तिग्रस्त-जनों की करुण-गाथा के श्रवणार्थ किंचिदपि उन्मुख नहीं होता, प्रत्युत् विपत्ति-काल में अपने भी संवन्धियों तक को भुला कर सर्वथा उन के प्रतिकूल हो जाता है। एक अवदान में विपत्तिग्रस्त स्वागत की ऐसी ही एक मार्मिक-कथा का उल्लेख है, जहाँ "संपत्तिकामो लोको विपत्तिप्रतिकूलः" का निदर्शन प्राप्त होता है। विपत्ति काल में स्वागत की कोई सहायता नहीं करता और सभी यह भुला देते हैं कि यह हमारा भी संवन्धी है। किन्तु भगवान् बुद्ध द्वारा गुणोद्भावना किये जाने पर कोई कहता है कि "यह मेरा भतीजा है", कोई "यह मेरा भागिनेय है" और कोई "यह मेरे वयस्य का पुत्र है"।[1]

(झ) आत्मघात के प्रचलित-साधन

अत्यधिक आत्मक्षोभ होने पर धर्मरुचि अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा तट-प्रपात करने का भी विचार करता है।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में आत्मघात के ये प्रचलित साधन रहे होंगे। इसके अतिरिक्त शस्त्र द्वारा या विष खाकर या गले में रस्सी वाँध कर या प्रपात से गिर कर भी प्राण त्याग किया जाता था।[3]

(ञ) पुत्र, पैतृक-धन का अधिकारी

समाज में पुत्र पैतृक-धन का अधिकारी होता था। वणिक् श्रेष्ठी की मृत्यु हो जाने पर उसके सुहृद् वणिक् उस श्रेष्ठी के भाण्डस्थ हिरण्य-सुवर्ण को उसके पुत्र को दे देते हैं और वह उस पैतृक धन को लेकर अपने घर जाता है—"स दारकस्तं भाण्डं हिरण्यसुवर्णं पैतृकं गृह्य स्वगृहमनुप्राप्तः"।[4]

(ट) हर्ष-प्रदर्शन

किसी व्यक्ति पर प्रसन्न हो कर लोग उसे पुरस्कार दान भी देते थे, जिस

---

१. स्वागतावदान, पृ० ११६।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
३ पूर्णावदान, पृ० २३।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६।

के लिए "प्रसन्नाधिकार" शब्द व्यवहृत हुआ है। इस प्रकार के दान-ग्रहण का समर्थन भगवान बुद्ध ने भी किया है।

"यदि प्रसन्नाः प्रसन्नाधिकारं कुर्वन्ति, गृहाण।"[२]

राजागण अपना हर्ष कोई न कोई पुरस्कार[३] या वर[४] प्रदान कर ही प्रकट करते थे।

(ठ) नौकरों की प्रवृत्ति

नौकरों के थोड़ा काम करने—अल्प कार्य के लिए भी अधिक समय लगाने —की प्रवृत्ति का बोध होता है। अन्य भृतकों की अपेक्षा गृहपति पुत्र (भृतक) अधिक शीघ्रता से कार्य करता दिखाई पड़ता है तथा अन्य भृतकों की कामचोरी देख कर वह कहता है—

"वयं तावत् पूर्वकेण दुश्चरितेन दरिद्रगृहेषूपपन्नाः। तद्यदि शाठ्येन कर्म करिष्यामः, इतश्च्युतानां का गतिर्भविष्यति ?"[५]

(ड) उत्साह

अपनी अभीप्सा-सिद्ध्यर्थ प्राणी अपने अयोग्य एवं कठोर श्रम करने के लिए सदा बद्ध परिकर रहता था। देवगति में जाने के लिए अनुरक्त चित्त गृहपति-पुत्र को जब बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन कराने के लिए पंचशत कार्षापण अपनी माता के पास प्राप्त नहीं होते, तो वह भृतिक-कर्म (मज़दूरी) करने के लिए तत्पर होता है।[६] सुप्रिय सार्थवाह देवता द्वारा निर्दिष्ट वदरद्वीप के कष्टसाध्य मार्ग को सुन कर अपना उत्साह नहीं खो देता, अपितु अदम्य धैर्य एवं उत्साह के साथ अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख हुआ वदरद्वीप की यात्रा

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८, १९०, १९१।
२. वही, पृ० १९१।
३. स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
४. पूर्णावदान, पृ० १५, १९।, कुणालावदान, पृ० २६४।, माकन्दिकावदान पृ० ४५६।
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
६. वही, पृ० १८७–१८८।

करता है।[1] इसी प्रकार राजकुमार सुधन ऋषि द्वारा मनोहरा-निर्दिष्ट विषम एवं दुर्गम मार्ग-श्रवण कर यथोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करता हुआ अपने इष्ट स्थल तक पहुँच जाता है।[2]

(ढ) प्रजा की मनोवृत्ति

यदि किसी राजा के राज्य में प्रजा को कष्ट होता तो वह उस राज्य को छोड़ कर अन्यत्र चली जाती थी, जिसके फलस्वरूप राजा प्रजा-जन को लौटा लाने के लिए अविलम्ब उपाय करता था। दक्षिणपांचाल राजा के अधर्म पूर्वक राज्य करने तथा क्रोधी एवं कर्कश स्वभाव से सन्त्रस्त समस्त जनकाय राष्ट्र-परित्याग कर तदितर सद्धर्म-परायण उत्तर पांचाल राजा के राज्य में चला जाता है। अमात्यों द्वारा कारण ज्ञात होने पर राजा उनसे ऐसा उपाय करने के लिए कहता है जिससे वे पुनः वहाँ आ कर रहने लगें।[3]

(ण) पूर्व-सूचना

राजमहल के प्रत्येक आगत-अभ्यागत को पहले द्वारपाल या दूत के द्वारा राजा के पास सूचना भेजनी पड़ती थी तथा उसकी अनुमति मिलने पर ही उसे प्रवेश मिलता था।[4]

[त] अतिथि-सत्कार

अतिथि--सत्कार, भारतीय-संस्कृति में सामाजिक शिष्टाचार का अभिन्न अंश है। स्वगृह में ऋषि-आगमन अनुकम्पा का कारण समझा जाता था। राजा कनकवर्ण प्रत्येक-बुद्ध को आते हुए देखकर कहते हैं—

"ऋषिरेषोऽस्माकमनुकम्पयेहागच्छति"।[5]

ऋषि के स्वागतार्थ राजा अपने आसन से उठ कर कुछ आगे जाता था

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६४–६८।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९६–२९८।
३. वही, पृ० २८३।
४. वीतशोकावदान, पृ० २७५।
५. कनकवर्णावदान, पृ० १८२।

और शिरसा प्रणाम कर उसे निर्दिष्ट आसन पर बैठाता था। तदनन्तर आगमन-प्रयोजन पूछ कर अविलम्ब तत्सम्पादनार्थ उद्यत हो जाता था।[१]

ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अभ्यागत के सम्मानार्थ कुछ आगे जा कर उसका स्वागत किया जाता था। राजा अशोक, स्थविर उपगुप्त के स्वागतार्थ नगर-शोभा एवं मार्ग-शोभा कर और सर्ववाद्य, सर्वपुष्प-गन्ध-माल्यादि लेकर समस्त पौर-जन एवं अमात्यगणों से परिवृत हो डेढ़ योजन आगे जा कर उन का स्वागत करते हैं।[२]

तत्कालीन राजागण बौद्धों के प्रति कितनी विनम्रता और सम्मान का भाव रखते थे तथा उन के आगमन पर किस हर्षातिरेक का अनुभव करते थे, इस का आभास स्थविर उपगुप्त के आगमन पर राजा अशोक के इन वचनों से प्राप्त होता है।

"यदा मया शत्रुगणान्निहत्य
प्राप्ता समुद्राभरणा सशैला।
एकातपत्रा पृथिवी तदा मे
प्रीतिर्न सा या स्थविरं निरीक्ष्य॥
त्वद्दर्शनान्मे द्विगुणः प्रसादः
संजायतेऽस्मिन् वरशासनाग्रे।
त्वद्दर्शनाच्चैव परेऽपि शुद्धया
दृष्टो मयाद्याप्रतिमः स्वयंभूः॥"[३]

आतिथ्य करने वाला इस बात का ध्यान रखता था कि अतिथियों को उनके पद और गौरव के अनुसार ही सम्मान प्राप्त हो। राजा बिम्बिसार रुद्रायण के आगमन का समाचार सुनकर सोचते हैं—

"न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तमेवमेव प्रवेशयेयम्। महता सत्कारेण प्रवेशयामीति......।"[४]

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
२. कुणालावदान, पृ० २४६।
३. कुणालावदान। पृ० २४६।
४. रुद्रायणावदान। पृ० ४७२।

पति की अनुपस्थिति में आतिथ्य करने का दायित्त्व उसकी पत्नी पर आ पड़ता था। "सहसोद्गतावदान" में एक गृहपति कुछ कार्य-वश कर्वटक में जाते समय अपनी अनुपस्थिति में महात्मा प्रत्येकबुद्ध को अन्नपान से संतुष्ट करने का आदेश अपनी पत्नी को दे जाता है।[१]

अतिथियों के प्रति एक आदर की भावना विद्यमान थी। ब्राह्मण के द्वारा यमली का मूल्य एक सहस्र कार्षापण माँगे जाने पर ज्योतिष्क कुमार ब्राह्मण से कहता है कि इस में एक वस्त्र परिभुक्त है और एक अपरिभुक्त। जो अपरिभुक्त है उस का मूल्य ५०० कार्षापण और जो परिभुक्त है उस का मूल्य २५० कार्षापण है। इस पर ब्राह्मण उन से उतना ही देने के लिए कहता है, किन्तु ज्योतिष्क कुमार कहता है—ब्राह्मण, अतिथिस्त्वम्। तवैव पूजा कृता भवति। सहस्रमेव प्रयच्छामीति।[२]

घर आये हुए अतिथि का स्वागत न करना उचित नहीं समझा जाता था। एक बार भद्रंकर नगर में भगवान् बुद्ध के आने पर वहाँ के लोगों ने उनका स्वागत नहीं किया। इस पर भगवान् ने ब्राह्मणदारिका द्वारा मेण्ढक गृहपति के पास यह सन्देश भेजा—

"गृहपते, त्वामुद्दिश्याहमिहागतः, त्वं च द्वारं बद्ध्वा स्थितः। युक्तमेतदेवमतिथेः प्रतिपत्तुं यथा त्वं प्रतिपन्न इति ?[३]

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १९३।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७९-८०।

परिच्छेद ५

भोजन-पान

भोजन-पान में सामिष और निरामिष दोनों ही प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रचलित थे। खाद्य पदार्थों की चार श्रेणियाँ थीं—

(१) भक्ष्य

(२) भोज्य

(३) चोष्य

(४) लेह्य

(क) धान्य

"दिव्यावदान" में कई प्रकार के चावलों का उल्लेख है—

अकणक[१]—बिना टूटे हुए चावल के दाने, अक्षत।

शालि[२]—यह सर्दियों में उत्पन्न होने वाला एक उत्कृष्ट प्रकार का चावल था।

अतुष[३]—छिलका (तुषा) से रहित धान

व्रीहि[४]—एक प्रकार का धान।

श्यामाक[५]—महीन चावल, जिसे सांवाँ कहते हैं।

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ७४।

२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।

३. सुप्रियावदान, पृ० ७४।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१५।

५. वही, पृ० ४१५।

तण्डुल[1] — साफ़ किया हुआ धान।

चकट्योदन[2]—एक खराब किस्म का चावल।

गोधूम[3]—गेहूँ

यव[4]—जौ

तिल[5]

(ख) कृतान्न

आहार में ओदन[6] या भक्त[7] (उबला हुआ चावल, भात) की प्रधानता थी। इसीलिए, संभवतः भोजन के लिए की जाने वाली तैयारियों के लिए "भक्तकृत्य" शब्द प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार भोजन समाप्त कर लेने के लिए "कृतभक्तकृत्य", क्षुधार्त के लिए "छिन्नभक्त"[8] तथा उस स्थान के लिए जहाँ भोजन दिया जाता था, "भक्ताभिसार"[9] ये शब्द प्रचलित थे। इन सब शब्दों में भक्त शब्द का योग केवल इस बात का सूचक है कि तत्कालीन भोजन में भात की प्रमुखता थी।

कुल्माप[10] निर्धन लोगों का भोजन था। इस में नमक भी डाला जाता था। "नगरावलम्बिकावदान" में अलवणिका कुल्मापपिण्डिका का उल्लेख है।[11] "कुम्मासपिण्ड जातक" में कुल्माष को दरिद्रों का भोजन

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।, सुप्रियावदान, पृ० ७४।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
३. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
४. वही, पृ० १८४।
५. वही, पृ० १८४।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३। रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
७. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
८. तोयिकामहावदान, पृ० ३०१।
९. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५४।
१०. वीतशोकावदान, पृ० २७५।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
११. पृ० ५५।

कहा गया है, जिसे थोड़ा जल, गुड़ या नमक और चिकनाई डालकर बनाते थे। निरुक्त[1] में कुल्माष को निकृष्ट भोजन कहा है।

मण्डीलक[2] आटे की बनाई हुई एक प्रकार की रोटी होती थी। आटे को "समित"[3] कहते थे।

सक्तु (सत्तू)[4] भी खाया जाता था।

(ग) **मिष्टान्न**

गुड[5]—गुड़।

शर्करा[6]—शक्कर।

शर्करा-मोदक[7]—शक्कर का लड्डू।

उक्करिका[8]—मीठी पाव रोटी।

खण्ड[9]—खांड

(घ) **दाल**

मुद्ग[10]—मूंग

माष[11]—उड़द

मसूर[12]—मसूर

---

१. "कुल्माषान् चिदादर इत्यवकुत्सिते" (१।४)
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६।
४. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१।
५. पूर्णावदान, पृ० १८।, मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
६. पूर्णावदान, पृ० १८।, मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
७. पूर्णावदान, पृ० १८।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३७।
९. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
१०. मान्धातावदान, पृ० १४१।, कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
११. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
१२. वही, पृ० १८४।

(ङ) गव्य-पदार्थ

दधि[1]—दही।

नवनीत[2]—मक्खन।

घृत[3]—घी।

घी को "सर्पि" भी कहते थे।

(च) पेय

क्षीर[4]—गाय के दूध के अतिरिक्त छगलिका (बकरी) का दूध[5] भी प्रचलित था।

मदिरा गृहों का अस्तित्व लोगों में मद्य-पान के प्रचार को सूचित करता है। इन गृहों को पानागार[6] कहते थे। स्वागत श्रावस्ती पहुंच कर पानागार में जाता है और वहाँ पर प्रवृद्ध वेग मद उत्पन्न करने वाले मद्य का पान करता है।[7]

चार प्रकार की सुधा[8] का उल्लेख है (१) नीला—नीले वर्ण की (२) पीता—पीले वर्ण की (३) लोहिता—रक्त वर्ण की (४) अवदाता—शुभ्र वर्ण की।

मधु, माधव, कादम्बरी आदि अन्य परिपानों[9] की भी चर्चा है।

मांस के लगाये हुए झोर [शोरवा, रस] को जोमा कहते थे।

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४-४३५।
२. वही, पृ० ४२७।
३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
५. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
६. स्वागतावदान, पृ० १०८।
७. वही, पृ० १०८।
८. मान्धातावदान, पृ० १३७।
९. मान्धातावदान, पृ० १३७।

"चूडापक्षावदान" में वृद्ध ब्राह्मण की पुत्र वधुएँ उसे सर्प का जोमा पान करने के लिए देती हैं।[१]

[छ] शाक और फल

कुछ पौधों की जड़ें पत्ते, फल, फूल और तने (स्कन्ध) भी खाने में प्रस्तुत किये जाते थे। इनके लिए "मूलखादनीय", "स्कन्धखादनीय", "पत्रखादनीय", "पुष्पखादनीय" और "फलखादनीय", शब्द प्रयुक्त हुये हैं।[२]

पलाण्डु (प्याज) का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि क्षत्रिय इसका उपयोग नहीं करते थे। क्योंकि राजा अशोक को रोग-मुक्त होने के लिए तिष्यरक्षिता जब उन से पलाण्डु खाने के लिए कहती है तो वह कहते हैं—

"देवि, अहं क्षत्रियः। कथं पलाण्डुं परिभक्षयामि ?"[३]

[ज] मांस-भक्षण

समाज में मांस-भक्षण प्रचलित था। शूकर के मांस का विक्रय होता था। एक कर्पटक [ग्राम] में पर्वणी उपस्थित होने पर एक सौकरिक द्वारा शूकरों को बाँधकर, उनका मांस बेचने के लिए, उन्हें नाव द्वारा नदी के पार ले जाने का उदाहरण प्राप्त होता है।[४]

ऐसे भी लोग थे, जो गो-मांस के द्वारा अपने परिवार का पोषण करते थे। गोघातक भगवान् बुद्ध से कहता है—

"मया एष बहुना मूल्येन क्रीतः। पुत्रदारं च मे बहु पोषितव्यमिति"।[५]

उरभ्रों को मार कर उनके मांस-विक्रय से जीविका-यापन करने वाले भी थे। ये औरभ्रक कहलाते थे।[६]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
३. कुणालावदान, पृ० २६४।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६।
५. अशोकवर्णावदान, पृ० ८५।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।

मृग, शरभ, मत्स्य, कच्छप, मण्डूक आदि का मांस भी खाया जाता था।[१]

परन्तु वौद्ध-धर्म में श्रद्धा रखने वाले भोजनार्थ किसी प्राणी की हत्या स्वयं नहीं करते थे। शाकुनिक के द्वारा अपने लिए लाये हुए जीवित कपिंजल को देख श्यामावती कहती है—

"किमहं शाकुनिकायिनी ? न मम प्राणातिपातः कल्पते। गच्छेति।"[२]

शाकुनिक के पुनः कपिंजल को मार कर ले जाने और यह कहने पर कि भगवान् बुद्ध के लिए इसे बनाओ, वह तत्पर हो जाती है।[३] इससे यह भी प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध मांस भी खाते थे।

[झ] षट् रस भोजन

भोजन में मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा, तीता और कसैला इन षट् रसों का समावेश होता था। आपन्नसत्त्वा स्त्रियों को वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो न अधिक तीते होते थे, न अधिक खट्टे, न अधिक नमकीन, न अधिक मीठे, न अधिक कड़वे और न अधिक कसैले।[४]

निमंत्रण

वौद्ध-धर्म में श्रद्धा रखने वाले बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजनार्थ आमंत्रित करते थे। निमंत्रण स्वीकृति को "अधिवासना" कहते थे।[५] भगवान् बुद्ध शान्त रहकर तूष्णीभाव से निमंत्रण की स्वीकृति देते थे। इसके वाद वे उसी रात को शुद्ध, सुन्दर खादनीय भोजनीय पदार्थ एकत्रित करते थे और प्रातःकाल उठकर घर की सफाई करते थे, गोवर का लेप करते थे और आसन एवं जल रखकर भगवान् बुद्ध को भोजन तैयार हो जाने की सूचना देते थे। भिक्षु-संघ के साथ भगवान् पूर्वाह्ण में भोजन के लिए जाते थे।[६]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० १। इत्यादि
५. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५१। सुप्रियावदान, पृ० ६१।
६. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३-५४। सहसोद्गतावदान, पृ० १८६।

"सुप्रियावदान" में कहा गया है कि भिक्षु-संघ सहित भगवान् के भोजनार्थ पहुँचने पर चोरों ने चन्दन-मिश्रित जल से उन लोगों का हाथ पैर धुलाया।[1] इसके बाद वे अपने-अपने आसनों पर बैठ जाते थे और निमंत्रण देने वाला व्यक्ति स्वयं अपने हाथों से उन लोगों को स्वच्छ एवं सुन्दर भोजन परोसता था। भोजन कर चुकने के बाद हाथ धुलाया जाता था और वर्तन [पात्र] हटा लिए जाते थे।

"स्वागतावदान" में ब्राह्मण के द्वारा, स्वागत को, आहार और मद्य प्रदान करने का उल्लेख है।[2] भोजन परोसने को "परिवेषण" और परोसने वाले को "परिवेषक" कहते थे।[3]

विशाल भोजों का आयोजन तत्कालीन अन्न-बहुलता का परिचायक है। इन भोजों में खाद्य एवं पेय पदार्थों का अपार भंडार रहता था। श्रावस्ती का एक गृहपति ५०० भिक्षुओं को खिलाने के लिए अन्न-पान गाड़ी (शकट) में भरकर ले जाता है।[4] एक अन्य स्थल पर एक गृहपति बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ और पाँच सौ वणिकों को अन्न-पान से संतृप्त करता है।[5] राजा प्रसेनजित् ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को एक सप्ताह तक अपने यहाँ भोजन कराया।[6]

कुछ पारिभाषिक भोजन-सम्बन्धी शब्द

बचे हुए भोजन को "उत्सदनधर्मक" कहते थे।[7] नाश्ते के लिए "पुरोभक्तका"[8] "पूर्वभक्षिका"[9] और 'पुरोभक्षिका'[10] शब्द प्रचलित थे।

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६१।
२. स्वागतावदान, पृ० ११७।
३. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५४।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७।
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८६-१९०
६. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३।
७. सहसोद्गतावदान, पृ० १९०।
८. वही, पृ० १८६।
९. पूर्णावदान, पृ० १८।
१०. स्वागतावदान, पृ० १०८।

ऐसा खाद्य पदार्थ जो भोजन-काल के समाप्त हो जाने पर खाया जाता था, "अकालक" कहलाता था।[1] एक बार चिरकाल तक धर्म-देशना करते हुए भगवान् के भोजन का समय व्यतीत हो गया। मेण्ढक गृहपति के भोजन करने के लिए कहने पर वे कहते हैं "भोजन-काल तो समाप्त हो गया"। गृहपति के द्वारा "अकालक" के विषय में पूछे जाने पर वे कहते हैं—

"घृतगुडशर्करापानकानि चेति"[2]

इस प्रकार घी, गुड़, शक्कर अकालखाद्यक एवं अकालपानक का उल्लेख है।

भोजन-पात्र

भोजन से संबन्धित निम्नलिखित बर्तनों का उल्लेख हुआ है—

[१] शतपलपात्र[3]
[२] सौवर्ण पात्र[4]
[३] रजत पात्र[5]
[४] मृण्मय पात्र[6] या मृद्‌भाजन[7]
[५] स्थालिका या स्थाली[8]
[६] कटच्छ[9]
[७] कांसिका[10]

---

१. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
२. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
४. वही, पृ० ४७३।
५. वही, पृ० ४७३।
६. वही, पृ० ४७३।
७. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४।
९. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० १०२।
१०. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५।

[८] पिपरीका[१]

[९] नालिका[२]

[१०] पिठरिका[३]

[११] भृङ्गार[४]

O

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।

२. संघरक्षितावदान, पृ० २११ ।

३. अशोकावदान, पृ० २८० ।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२४ ।

परिच्छेद ६

क्रीड़ा-विनोद

क्रीड़ा-विनोद में सार्वजनीन अभिरुचि थी । तत्कालीन सुसमृद्ध नगर राजधानी, प्रासाद, रम्य-उद्यान, क्रीड़ा-पुष्किरिणी, वस्त्राभूषण तथा अनेक प्रसाधन-सामग्री इन सब का अस्तित्व इस बात का परिचायक है कि लोग आमोद-प्रमोद में कितने संलग्न रहते थे ।

राजा चन्द्रप्रभ की राजधानी भद्रशिला नगरी में चतुर्दिक् चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुरभित समीर का प्रसार हो रहा था । एक ओर प्रस्फुटित-पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल पुष्प-मण्डित स्वादु, स्वच्छ एवं शीतल जल-परिपूर्ण तड़ाग, कूप और प्रस्रवण का नयनाभिराम दर्शन होता है, तो दूसरी ओर, ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पुंनाग, नागकेसर, चम्पक, बकुल, पाटलादि पुष्पों से आच्छादित एवं कलविङ्क, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवंजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण-निकूजित वनषण्डोद्यान हमारे चित्त को बरबस आकृष्ट कर लेता है।[1] राजा चन्द्रप्रभ सर्व परित्यागी थे। उन के राज्य में सभी जम्बूद्वीप-वासी हाथी, घोड़े और रथों पर चलते थे। सभी मौलिधर और पट्टधर हो गये थे एवं सभी नानाविध वाद्य-घोषों से युक्त, सर्वालंकार-विभूषित प्रमदा गणों से परिवृत राजक्रीड़ा का अनुभव कर रहे थे।[2]

क्रीड़ा के लिए उद्यान, क्रीड़ा-पुष्किरिणी, मृगया, अनेक कथाएँ, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के सामान्य प्रचलित साधन थे ।

(क) उद्यान-यात्रा

मनोरंजन के लिए उद्यान होते थे। उद्यानों में भांति-भांति के वृक्ष लगे

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६५ ।
२. वही, पृ० १६६ ।

रहते थे, जो नानाविध चित्तरंजक पुष्पों से आच्छादित होते थे। उन में मनोरम प्राकृतिक छटा सर्वत्र विराजती थी और भांति-भांति की क्रीड़ाओं के लिए साधन प्रस्तुत किये जाते थे। इन उद्यानों में नैक-विध मोहक एवं अनुरागोत्पादक ध्वनि करने वाले पक्षि-गण भी पाले जाते थे। भद्रशिला राजधानी के मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम-दृश्य अवलोकनीय है।[1]

प्रायः वसन्त-ऋतु में वन तथा उपवनों की शोभा द्विगुणित हो जाने पर लोग मनोरंजन के लिए सस्त्रीक उद्यान-यात्रा करते थे। वसन्त-काल के समुपस्थित होने पर एक गृहपति अपने अन्तर्जनों के साथ एक वसन्तकालीन पुष्पाच्छादित-वृक्ष-समन्वित एवं हंस, क्रौंच, मयूर, शुक, सारिका, कोकिल, जींवजीवकोन्नादित उद्यान में जाता है—

"............स गृहपतिः संप्राप्ते वसन्तकालसमये संपुष्पितेषु पादपेषु हंसक्रौञ्चमयूरशुकशारिकाकोकिलजीवंजीवकोन्नादितं वनखण्डमन्तर्जनसहाय उद्यानभूमिं निर्गतः" ।[2]

इसी प्रकार राजा अशोक के भी, वसन्त-काल में अपने अन्तःपुर के साथ सुपुष्पित उद्यान में, जाने का उल्लेख है।[3]

गृहपति वलसेन—हैमन्तिक, ग्रैष्मिक एवं वार्षिक-तीन प्रकार के उद्यानों का निर्माण कराता है, जिन में ऋतुओं के अनुसार पुष्पादि वृक्ष लगे थे।[4] राजा धन भी अपने पुत्र के लिए ऐसे तीन उद्यानों को वनवाता है।[5]

इस प्रकार उद्यान, पति-पत्नी के सरस जीवन के राग-रंग तथा अठखेलियाँ [क्रीड़ा] करने का एक स्थल था, जहाँ काम-संचार करने वाले विविध पक्षियों का समुचित संग्रह होता था।

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।

२. सहसोद्गतावदान, पृ० १९२, १९३।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।

५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

[ख] जल-क्रीड़ा

उद्यान में ही क्रीड़ा-पुष्किरिणी होती थी, जिसमें उत्पल, पद्म, कुमुद, पुण्डरीक आदि जलज-पुष्प प्रस्फुटित रहते थे। वाराणसी का राजा, ब्रह्मदत्त अपने अन्तःपुर-परिवार सहित उद्यान की यात्रा करता है। वहाँ पर अन्तःपुर-वासिनी स्त्रियों के क्रीड़ा-पुष्किरिणी में स्नान कर शीतानुबद्ध हो जाने की चर्चा प्राप्त होती है।[१]

"सुधनकुमारावदान" में ब्रह्मसभा नाम की पुष्किरिणी का उल्लेख है, जो उत्पल, पद्म आदि पुष्पों से संछन्न, नानापक्षिगणनिषेवित, स्वच्छ एवं सुरभित जल से परिपूर्ण थी। किन्नर राज दुहिता मनोहरा पाँच सौ किन्नरी-परिवारों के साथ इस पुष्किरिणी में स्नानार्थ जाती थी।[२]

रोहितक महानगर में एक "उद्यानसभापुष्करिणी" और एक तड़ाग का उल्लेख है, जिस के तट पर कादम्ब, हंस, कारण्डव, और चक्रवाक थे।[३]

(ग) मृगया

राजाओं के लिए मृगया एक प्रिय मनोरंजन-साधन था। "वीतशोकावदान" में राजा अशोक मृगवध के लिए जाते हैं।[४] राजकुमार सुधन के भी, मृगया के लिए, जाने का उल्लेख है।[५]

(घ) कथा

परंपरा से प्राप्त कथाएँ सुनना और सुनाना मनोरंजन का एक सार्वजनिक साधन था। वैदिक-काल से आज तक महापुरुषों और देवताओं की चरितगाथा का वर्णन करना और सुनना पुण्य-प्रसव का कारण माना गया है। शास्त्रबद्ध कथा एवं नानाश्रुतिमनोरथ आख्यायिकाओं के द्वारा सुप्रिय, सार्थवाह मघ का अनुरंजन करता है।[६]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४६१।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
४. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
६. सुप्रियावदान, पृ० ६८।

लोग लोकाख्यायिकाओं में भी कुशल होते थे। गृहपति-पुत्र (भृतक) के द्वारा एक लोकाख्यान कथा के कहे जाने का उल्लेख है।[1]

(ङ) कविता-पाठ

प्रचीन-काल से ही कविता-पाठ मनो-विनोद का एक उत्तम साधन माना गया है। वैदिक-काल में यज्ञ के अवसर पर देवताओं की स्तुति करने के लिए लोग कविता-पाठ करते थे। कवियों को आश्रय देने वाले अधिकांशतः नृपति-गण होते थे। इस प्रकार राजाश्रित कवि राजा की स्तुति कर उन को प्रसन्न करते थे और फलस्वरूप यथेष्ट धन एवं मान को प्राप्त करते थे। वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अत्यन्त कवि प्रिय था। वहाँ एक ब्राह्मण कवि रहता था। शीत-काल में वह ब्राह्मण राजा के अनुकूल भाषण कर के कुछ शीत-त्राण पाने की इच्छा से उनके पास जाता है। वहाँ राजा के हाथी की स्तुति करता है, जिस से प्रसन्न हो कर वह राजा उस ब्राह्मण कवि को पाँच सुन्दर ग्राम प्रदान करता है।[2]

सुप्रिय "चित्राक्षरव्यञ्जनपदाभिधान" के द्वारा सार्थवाह मघ का मन वहलाता है।[3]

(च) संगीत

वाद्य-यंत्रों को परंपरा से चार भागों में विभाजित किया जाता है तत (तार वाले), आनद्ध (ढोल की तरह पीटे जाने वाले), सुषिर (साँस से संचालित) और घन (वजाये जाने वाले)।[4] इसी दृष्टि से "दिव्यावदान" में प्राप्त वाद्य यंत्रों का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया जाता है।

(अ) तन्त्रीं वाद्य

(१) वीणा[5]

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
२. स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
४. रामायणकालीन संस्कृति—शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृ० १०४।
५. सुप्रियावदान, पृ० ६७।, चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।

(२) वल्लिका[१]
(३) वल्लरी[२]
(४) महती[३]
(५) सुघोषक[४]

(ब) ताड्य वाद्य

(१) पणव[५]
(२) मृदंग[६]
(३) भेरी[७]
(४) पटह[८]
(५) मुरज[९]
(६) घण्टा[१०]
(७) ताल[११]

इन ताड्य वाद्यों में घण्टा और ताल धातु के बने हुए होते थे। और अन्य शेष ढोलों की श्रेणी में आते थे।

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
२. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
४. वही, पृ० ६७।, चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५, १९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
५. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
६. वही, पृ० १९५,१९६।, वही, पृ० २९९।
७. वही, पृ० १९५,१९६।
८. वही, पृ० १९५,१९६।
९. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, इत्यादि
११. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।

[ख] मुखवाद्य

[१] वेणु[1] (बाँसुरी)

[२] शंख[2]

[३] तूर्य (तुरही)[3]

राजाज्ञा घण्टा बजाकर प्रसारित की जाती थी[4], या जब कोई धनाढ्य व्यापारी महासमुद्रावतरण करता था, तो वह घण्टावघोष के द्वारा यह घोषणा करवाता था कि जो भी महासमुद्रावतरण के इच्छुक हों, वे शीघ्र ही तैयार हो जाँय ।[5]

ज़न्मोत्सव के समय आनन्द की भेरी बजायी जाती थी ।[6] मनोहरा के साथ सुधनकुमार के हस्तिनापुर लौटने का समाचार सुनकर राजा धन आनन्द की भेरी बजवाते हैं ।[7] राजा चन्द्रप्रभ सुवर्ण-भेरी बजाकर दान देते थे ।[8]

लोग निष्पुरुष तूर्य-निनाद में अपनी पत्नी के साथ रमण, परिचरणादि क्रीड़ा में रत होते थे ।[9]

रोहितक महानगर में वीणा, वल्लिका, महती और सुघोषक वाद्यों के

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५, १९६ ।

२. वही, पृ० १९५, १९६ ।

३. वही, पृ० १९६ ।

४. वही, पृ० १९६ ।

५. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।

६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६ ।

७. वही, पृ० ३०० ।

८. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।

९. कोटिकर्णावदान, पृ० २ । सुधनकुमारावदान, पृ० २८७, २९९ ।

साथ-साथ गीत-ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।[1] कुणाल अपनी स्त्री काञ्चनमाला के साथ वीणा बजाता और गाता हुआ तक्षशिला से निकल पड़ता है।[2]

भद्रशिला नगरी विभिन्न वाद्यों से सदा निनादित रहती थी।[3]

[छ] नृत्य

जब स्त्रियाँ नृत्य करती थीं, तो उसकी संगति में वाद्य-यन्त्र बजाये जाते थे। राजा रुद्रायण वीणा बजाने में दक्ष थे तथा उनकी पत्नी चन्द्रप्रभा देवी नृत्य-कला में कुशल थीं। इस प्रकार चन्द्रप्रभा देवी नृत्य करती थीं और रुद्रायण वीणा बजाते थे।[4]

किन्नर-लोक में पहुँचकर, सुधनकुमार सहस्रों किन्नरों के साथ नृत्य, गीत और अनेक वाद्यों से परिवृत थे।[5]

[ज] क्रीड़ाएँ

तत्कालीन अनेक क्रीड़ाओं के नाम प्राप्त होते हैं।[6] जैसे—

(१) अकायिका
(२) सकायिका
(३) वित्कोटिका
(४) स्यपेटारिका
(५) अघरिका
(६) वंशघटिका
(७) संधावणिका

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
२. कुणालावदान, पृ० २६७।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६५।
४. रुद्रायणावदान पृ० ४७०।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २६६।
६. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।

(८) हस्तिविग्रह
(९) अश्वविग्रह
(१०) बलीवर्दविग्रह
(११) धनुर्ग्रह

इन उपर्युक्त क्रीड़ाओं का विवरण कहीं स्पष्ट रूप से नहीं प्राप्त होता कि ये किस प्रकार की क्रीड़ाएँ थीं ? बस केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये तत्कालीन कुछ क्रीड़ाओं के प्रसिद्ध नाम हैं ।

O

परिच्छेद ७

वेश-भूषा

"दिव्यावदान" में बहुसंख्यक वस्त्रों का अनेक वार उल्लेख हुआ है। नाना प्रकार के वस्त्र दान में दिये जाते थे। राजा चन्द्रप्रभ ने अनेक रंगों के, अनेक देशों के तथा अनेक चित्र-विचित्र प्रकार के वस्त्रों का दान समस्त जम्वुद्वीप वासियों को किया था।[1]

लोग उपहार-स्वरूप भी दूसरों के पास वस्त्र भेजते थे। राजा विम्बिसार ने महार्ह वस्त्रों से एक सन्दूक भरकर राजा रुद्रायण के पास प्राभृत-रूप में भेजा था।[2] कीमती कपड़े "महार्ह" वस्त्र कहलाते थे।

राजा के योग्य वस्त्र को "राजार्ह" कहते थे। राजा चन्द्रप्रभ ने समस्त जम्वुद्वीप-निवासियों को यथेष्ट "राजार्ह" वस्त्र प्रदान किया था।[3] राजा विम्विसार ने राजा रुद्रायण को "राजार्ह" वस्त्र-ग्रन्थ-विलेपनों से अलंकृत कर भोजन कराया था।[4]

धूप के धुएँ से वस्त्रों को सुगन्धित करने की रीति प्रचलित थी। राजा विम्विसार के वस्त्रों के काष्ठधूम से वासित होने के कारण ही ज्योतिष्क कुमार के घर की स्त्रियों के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा था।[5]

पहने हुए अर्थात् उपयोग में लाये हुए वस्त्र को "परिभुक्तक" तथा ऐसा वस्त्र जिसका उपयोग अभी न किया गया हो "अपरिभुक्तक" कहलाता था।[6]

---

१. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५।
३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
६. वही, पृ० १७१।

नये कपड़े "अहत" वस्त्र कहलाते थे।[१] "अनाहत दूष्य" (पुराने वस्त्र) का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[२]

मामूली कपड़ा "खुस्तवस्त्र" कहलाता था।[३]

रंगे हुए वस्त्रों का भी प्रयोग होता था। शुक्ल[४] या अवदात वस्त्र[५] के अतिरिक्त नीले[६], पीले[७], और लाल[८] वस्त्रों का भी उल्लेख है। संन्यासी लोग काषाय (गेरुए रंग के) वस्त्र[९] धारण करते थे।

"दिव्यावदान" में निम्नलिखित वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) कौशेय[१०]
(२) क्षौम[११]
(३) काशिक[१२]
(४) कार्पास[१३]
(५) कौटुम्ब[१४]

---

१. कुणालावदान, पृ० २५५।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
३. स्वागतावदान, पृ० १०७।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
५. पूर्णावदान, पृ० १७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
७. पूर्णावदान, पृ० १७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
८. वही, पृ० १७। वही, पृ० १६३। सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
९. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
१०. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६। रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
११. वही, पृ० १९६।, वही, पृ० ४७४।
१२. पूर्णावदान, पृ० १७। चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
१३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
१४. वही, पृ० ४७४।

(६) सण शाटिका[१]

(७) फुट्टक[२]

(८) अंशुक[३]

(९) पट्ट[४]

(१०) ऊर्णादुकूल[५]

(११) चीन वस्त्र[६]

(१२) कम्वल[७]

(१३) प्रावरक[८]

(१४) यमली[९]

(१५) स्नानशाटक[१०]

(१६) कल्पदूष्य[११]

(१७) तुण्डिचेल[१२]

(१८) पोत्री[१३]

(१९) तसरिका[१४]

---

१. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
२. पूर्णावदान, पृ० १७।
३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
४. चन्द्रप्रभवोधित्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
५. वही, पृ० १९६।
६. वही, पृ० १९६।
७. वही, पृ० १९६।
८. वही, पृ० १९६।
९. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
१०. वही, पृ० १७२।
११. मान्धातावदान, पृ० १३३, १३७।
१२. वही, पृ० १३७।
१३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८।
१४ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०-१७१।

कपास का स्वच्छ (श्लक्ष्ण) सूत्र काता जाता था।[१] ब्राह्मणी एक कुविन्द से सहस्र कार्षापणों वाली यमली बुनवाती है।[२]

स्त्रियाँ सिर पर एक वस्त्र डाले रहती थीं, जिसे "शिरोत्तरपट्टिका" कहते थे।[३] स्त्रियाँ अपने वस्त्र की छोर में कार्षापणों को बाँधकर रखती थीं।[४]

राजाओं के यहाँ रत्न-सुवर्ण जटित कपड़े भी होते थे। राजा चन्द्रप्रभ अन्य वस्त्रों के साथ "रत्न-सुवर्ण-प्रावरक" भी दान में प्रदान करता है।[५]

"प्रावरण" एक प्रकार का ऊपरी वस्त्र था, जिसे "उपरिप्रावरण" भी कहते थे।[६]

प्रव्रजितों और भिक्षुओं के वेश में निम्नलिखित वस्त्रों का उल्लेख हुआ है—

(१) चीवर[७]
(२) संघाटी[८]
(३) काषाय-वस्त्र[९]
(४) पांशुकूल[१०]

ऋषि वल्कल और चीवर पहनते थे।[११] ये चीवर दर्भ (कुशों) के बने होते थे।[१२]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
२. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३।
३. धर्मरुच्यावदान, पृ० १५८।
४. पूर्णावदान, पृ० १८।
५. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८।
७. सुप्रियावदान, पृ० ६१।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
९. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
१२. वीतशोकावदान, पृ० २७२।

ब्राह्मणों की वेश-भूषा में अन्तर रहा होगा, जिसके आधार पर उन्हें पहचाना जाता था। "ज्योतिष्कावदान" में कौशिक ब्राह्मण का वेश बना कर अनङ्गण गृहपति के घर जाते हैं।[१] इसी प्रकार देवेन्द्र शक्र के, उदार ब्राह्मण का रूप धारण कर उत्पलावती राजधानी में, जाने का उल्लेख है।[२]

भृतक पुरुषों की वेश-भूषा पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनके बाल रूखे रहते थे और वस्त्र फटे हुए और मलिन। संभवतः उनकी पहचान भी इन्हीं के कारण होती थी। भृतक-कर्म करने के लिए उद्यत अपने पुत्र के भृतक-वीथी में खड़े होने पर भी जब उसे कोई नहीं पूछता, तो उसकी माता कहती है—

"पुत्र, न एवंविधा भृतकपुरुषा भवन्ति। पुत्र, स्फटितपरुषा रूक्षकेशा मलिनवस्त्रनिवसनाः।"

और उसे आदेश देती है कि यदि तुम्हें भृतक-कर्म करना है, तो इस प्रकार के वेश को धारण कर भृतक-वीथी में जाओ।[३]

इसी प्रकार "नगरावलम्बिकावदान" में कुविन्द की वेश-भूषा का परिचय प्राप्त होता है।[४]

राजाओं के यहाँ सौ शलाकाओं वाले छत्रों (शतशलाकं छत्रम्) तथा सौवर्ण-मणि-व्यजनों का अस्तित्व तत्कालीन सिलाई के प्रचार का सूचक है।[५]

"रामायण" में भी सौ शलाकाओं वाले छत्र का उल्लेख है।[६]

पैरों में उपानह धारण किये जाते थे। राजा बिम्बिसार ज्योतिष्क कुमार के गृह-स्थित मणि-भूमि को वापी समझ कर जूते उतारने लगते हैं।[७]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७।
२. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।
३. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
४. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७। चूडापक्षावदान, पृ० ४४४।
६. २।२६।१०
७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।

भगवान् बुद्ध कर्मापनय करने के निमित्त पन्थक से भिक्षुओं के जूते साफ़ करने को कहते हैं ।[1]

आभूषण के लिए अलंकार[2] और आभरण[3] दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अलंकार, स्त्री और पुरुष दोनों ही धारण करते थे । उपगुप्त के आगमन का शुभ समाचार देने वाले प्रियाख्यायी को राजा अशोक शत- सहस्र मूल्य वाला मुक्ताहार अपने शरीर से उतार कर देते हैं ।[4] भविल रत्नकर्णिका कानों में पहने था ।[5] भद्रशिला राजधानी में राजा चन्द्रप्रभ ने सर्वालंकार-विभूषित कुमार-कुमारिकाओं का दान दिया था ।[6] श्रोण कोटिकर्ण प्रेतनगर में अंगद, कुंडल, विचित्र माल्यादि आभरणों तथा अनुलेपनों से युक्त एक पुरुष को चार अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए देखता है ।[7]

सिर में धारण किये जाने वाले अलंकारों में "चूड़ामणि" का उल्लेख हुआ है ।[8] इसे केवल स्त्रियाँ ही पहनती थीं ।

कानों में "कुंडल" पहना जाता था । ये लेश मात्र शरीर-संचालन से हिलने-डुलने लगते थे । इसे स्त्री[9] और पुरुष[10] समान रूप से धारण करते थे । चन्द्रप्रभ देवकन्या ने चंचल एवं स्वच्छ कुंडल धारण किया था ।[11] कानों में पहने जाने वाले एक और अलंकार "कर्णिका" का उल्लेख हुआ है । यह कई वस्तुओं की बनाई जाती थी और इसका नामकरण उस वस्तु के आधार पर होता था, जिससे वह निर्मित की जाती थी, जैसे रत्नों की बनी कर्णिका "रत्नकर्णिका", लकड़ी की बनी "दारुकर्णिका" लाख की बनी "स्तवकर्णिका"

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३१ ।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
३. वही, पृ० १९६ ।
४. कुणालावदान, पृ० २४५ ।
५. पूर्णावदान, पृ० १६ ।
६. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० ५ ।
८. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८, २९० २९१ ।
९. कोटिकर्णावदान, पृ० ७ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।
१०. वही, पृ० ५ ।, चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
११. रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।

और राँगे की बनी "त्रपुकर्णिका" कहलाती थी ।[१] "आमुक्तिका" भी कानों में पहनने का एक आभूषण था ।[२]

गले में "हार"[३], "अर्धहार"[४] और चित्र-विचित्र "मालाएँ"[५] पहनी जाती थीं । "हार" प्रायः सोने के होते थे, जिन में मणियाँ जड़ी होती थीं ।[६] इन अलंकारों को भी स्त्री और पुरुष दोनों ही पहनते थे ।

बाहों में "अंगद"[७] और "केयूर"[८] स्त्री-पुरुष दोनों ही धारण करते थे ।

कलाई में "वलय"[९] पहना जाता था । "कटक" भी कलाई में पहनने का एक आभरण था ।[१०]

उंगली में अंगूठी पहनी जाती थी, जिसे "अंगुलिमुद्रिका"[११] या "अंगुलिमुद्रा"[१२] कहते थे ।

कमर में स्त्रियाँ "काँची"[१३] और "मेखला"[१४] धारण करती थीं । ये अलंकार साथ ही इन के अधोवस्त्र को यथास्थान रखने में भी सहायक होते थे । मनोहरा किन्नरी को "सचीवरप्रभ्रष्टकाञ्चीगुणाम्" कहा गया

---

१. पूर्णावदान. पृ० १६ ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २, १४ ।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ । रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।
४. वही, पृ० १९६ ।, वही, पृ० २८८ ।, वही, पृ० ४७० ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ५, ७ ।
६. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०५ ।,वीतशोकावदान, पृ० २७३ ।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० ५,७ ।
८. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
९. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।
१०. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५११ ।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २९६, २९८ ।
१२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७६ ।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९२,२९८ ।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६ ।
१४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४, ५०५ ।

है ।[१] रमण नगर में, मैत्रकन्यक ने ऐसी अप्सराओं को देखा, जिन की "कांची" खिसक गई थी ।[२] मणियों की दानेदार करधनी "मेखला" कहलाती थी। इसे पहन कर चलने से मधुर झंकार भी होता था । रमण नगर में अप्सराओं को 'क्वणद्रुचिरविविधमणिमेखलाप्राग्भारमन्दविलासगतयः" कहा गया है ।[३]

पैरों के आभूषण में "नूपुर" का उल्लेख हुआ है । यह स्त्रियों का अलंकार था । "नूपुर" मणि-जटित और घुंघरुओं वाले होते थे, जो चलने से बजते थे ।[४]

तत्कालीन भारत में मणि-रत्नों का यथेष्ट प्रचार था । लोग समुद्रावतरण कर अनेक प्रकार के मणि-रत्नों को अपने साथ ले आते थे । मणि, मुक्ता, वैडूर्य, शंख, प्रवाल, रजत, जातरूप, अश्मगर्भ, मुसारगल्व, लोहितिक, दक्षिणावर्त आदि रत्नों का उल्लेख हुआ है ।[५] समस्त जम्बुद्वीपवासी "मणिमुक्ताभरणादि" से युक्त तथा "सर्वालंकारविभूषित-प्रमदागण" से परिवृत हो कर राज-श्री का अनुभव करते थे ।[६] किन्नरराज द्रुम प्रभूत मात्रा में मणि, मुक्ता, सुवर्ण आदि दे कर मनोहरा को सुधनकुमार के साथ हस्तिनापुर के लिए भेजते हैं ।[७]

लोग पशुओं को भी सुवर्णादि से विभूषित करते थे । दान में दी जाने वाली गायों के सींग सोने से मढ़े होते थे–"सुवर्णशृङ्गाश्च गावः कामदोहिन्यः" ।[८]

रथों का भी सुवर्णादि से अलंकृत होने का उल्लेख प्राप्त होता है। जम्बुद्दीप निवासी चार अश्वों से युक्त सुवर्णमय, रूप्यमय रथों पर आरूढ़

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।
२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६ ।
३. वही, पृ० ५०४ ।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०५ ।
५. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२ ।
६. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २९९ ।
८. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।

हो कर एक उद्यान से दूसरे उद्यान तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते थे।[१]

लम्वे केशों को शारीरिक सौन्दर्य में वड़ा महत्त्व दिया जाता था। मनोहरा किन्नरी को "आयतनीलसूक्ष्मकेशीम्" कहा गया है।[२]

पुरुष अपने वाल तथा दाढ़ी-मूँछ कटवाते नहीं थे। इन को व्यवस्थित रूप से संवार कर रखा जाता था। राजा विन्दुसार के केश श्मश्रु प्रसाधन के लिए एक नापिनी थी, जो उन के केश-श्मश्रु को संवारती थी।[३]

रामायण-काल में भी पुरुष-वर्ग दाढ़ी-मूँछ रखते थे। वहाँ नाइयों को "श्मश्रु-वर्धन" की संज्ञा दी गई है।[४]

भृतकों के केश संवरे नहीं होते थे। उन्हें "रूक्षकेशा" कहा गया है।[५] वध्यघातकों को लम्वे लटकने वाले बाल होते थे।[६] तपस्या करने वाले ऋषि दीर्घ केश, श्मश्रु, नख और रोम वाले होते थे।[७] राजा रुद्रायण ने केश-श्मश्रु कटवा कर और काषाय-वस्त्र धारण कर प्रव्रजित होने के विषय में रौरुक नगर में घंटावघोष करवाया था।[८]

स्नान में सुगंधित पदार्थों का उपयोग चिरकाल से होता आया है। स्नान का जल सुगन्धित रहता था। राजा विम्विसार ने रुद्रायण को अनेक सुगंधित पदार्थों से युक्त जल से स्नान कराया था।[९] व्रह्मसभा पुष्किरिणी उत्पल, पद्म आदि पुष्पों से संछन्न, नानापक्षिगणनिषेवित, स्वच्छ एवं सुरभित जल से परिपूर्ण थी।[१०]

---

१. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।
४. ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
   सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन्॥ (६।१२८। १३)
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
९. वही, पृ० ४७२।
१०. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

वे सुगन्धित द्रव्य, जिन का उपयोग स्नान-काल में किया जाता था, "स्नानोद्वर्तन" कहलाते थे। किन्नरराज दुहिता मनोहरा पाँच सौ किन्नरी परिवारों के साथ ब्रह्मसभा पुष्किरिणी में नानाविध स्नानोद्वर्तनों को ले कर स्नानार्थ जाती थी।[1]

सिर से स्नान किये जाने का उल्लेख है। मातंगदारिका प्रकृति सिर से स्नान कर अनाहतदूष्य को धारण करती है।[2]

मनुष्य-गन्ध को नष्ट करने के लिए मनोहरा किन्नरी को सिर से नहलाया गया था।[3]

अन्य शृंगार-प्रसाधनों में चन्दन[4], कुंकुम[5], कपूर[6], अगुरु-गन्ध[7], चूर्णगंध[8], कुसुम-गंध[9], धूप[10], माल्य[11], विलेपन[12] आदि का उल्लेख हुआ है। राजा बिम्बिसार ने रुद्रायण को राजार्ह वस्त्र, गन्ध, माल्य और विलेपनों से अलंकृत कर भोजन कराया।[13] वत्सराज उदयन अनुपमा को पत्नी रूप में स्वीकार करते समय अन्य वस्तुओं के साथ पाँच सौ कार्षापण प्रतिदिन गन्धमाल्य के निमित्त देता है।[14]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २६८।
४. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६५।, कुणालावदान। पृ० २५६।
५. कुणालावदान, पृ० २५६।
६. वही, पृ० २५६।
७. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६५।
८. वही, पृ० १६५।
९. वही, पृ० १६५।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४६१।
११. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।, रुद्रायणावदान पृ० ४७२।
१२. वही: पृ० १६६।, वही, पृ० ४७२।
१३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
१४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५।

तैल आदि सुगन्धित पदार्थों को बेचने वाला "गान्धिक" कहलाता था।[१]

पुष्पों से भी शरीर का श्रृंगार किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है, रात को मालाएँ पहन कर सोने का प्रचलन था। सुधन कुमार नीलोत्पल की माला धारण किये हुए रात में उठ कर, उस मार्ग से मनोहरा की खोज में जाता है, जिस पर कोई रक्षक पुरुष न थे।[२]

O

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९४-९५।

परिच्छेद ८

नारी

नारी जीवन के वस्तुतः तीन सोपान हैं—कन्यात्व, पत्नीत्व और मातृत्व। नारी-संस्कृति का यथार्थ स्वरूप प्राप्त करने के लिए इनका इसी क्रम से विश्लेषण उचित प्रतीत होता है।

(क) कन्यात्व

परिवार में कन्या का जन्म सन्ताप जनक न था। उसका पालन-पोषण पूर्ण मनोयोग के साथ किया जाता था। मानव की सहज वृत्ति सन्तति-स्नेह से कन्याएँ वंचित नहीं रहती थीं। उसके प्रति घृणा या द्वेश नहीं किया जाता था। कन्या के उत्पन्न होने पर भी पुत्रजन्मवत् सर्व अनुष्ठेय कृत्यों का सम्पादन हर्ष एवं उल्लास के साथ समुचित रूप से किया जाता था।[१] राजा धन अन्य सब प्रकार से सम्पन्न होने पर भी सन्तान न होने के कारण चिन्तित हो सोचता है, "अनेकधनसमुदितं मे गृहम्। न मे पुत्रो न दुहिता"।[२] इससे यह स्पष्ट होता है, कि पुत्र अथवा दुहिता दोनों ही परिवार के लिए आह्लादजनक समझे जाते थे।

कन्याएँ संगीत, नृत्यादि ललित कलाओं में दीक्षित होती थीं।[३] वे शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। "माकन्दिकावदान" में दारिकाओं के द्वारा, रात्रि में बुद्धवचन का पाठ किए जाने का उल्लेख है।[४]

युवावस्था के प्राप्त होने पर, माता-पिता, कन्या के लिए समुचित वर का चुनाव पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् नियत सिद्धान्तों के आधार पर ही करते थे।

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४४६।

२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।

३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।

४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।

(ख) पत्नीत्व

विवाह होने के बाद पति-गृह में कन्या "वधू" का पद प्राप्त करती थी।[१] पत्नी के लिए "भार्या" शब्द प्रचलित था।[२] भार्या के गुणों में "सदृशिका", "हृद्या", "आश्रवा" और "प्रियंवदा" की गणना की गई है।[३] वह पति की सहधर्मचारिणी होती थी। सुख और दुःख दोनों में ही वह सदा पति के साथ रहती थी।[४]

नैतिक गुणों के अतिरिक्त पत्नी में शारीरिक आकर्षण की भी अपेक्षा रहती थी।

स्त्री के शरीर का रंग द्रवित नवकनकरस के समान (द्रवितनवकनकरसरागावदातमूर्तयः)[५] या मेघ के समान गौर वर्ण (मेघवर्णा)[६] होना चाहिए। उसे सुप्रतिष्ठित "तनुत्वचा" वाली होना चाहिए।[७] उसके नेत्र मनोहर (मधुरलोचना)[८] और विकसित नीलरक्तांशुक विशाल नव कमल के समान (अभिनीलरक्तांशुकविसृतायतनवकमलसदृशनयना)[९] होने चाहिएँ। उनके कोनें लाली लिए हुए (रक्तान्त) हों।[१०] भौंहें सुन्दर (सुभ्रुवं) हों।[११] उनकी आँखें हरिण या मृग के समान भोली-भाली होनी चाहिएँ।[१२] नाक उठी हुई (तुङ्गनासा) हो।[१३] दाँत गोक्षीर के समान पाण्डुवर्ण के तथा

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ८।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
४. कुणालावदान, पृ० २६७।
५. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
७, वही, पृ० ४१२।
८. वही, पृ० ४११।
९. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१०. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।

समान शिखरों से युक्त स्निग्ध आभा वाले हों।[1] अधरोष्ठ विद्रुम, मणि, रत्न एवं बिम्बाफल के सदृश हों।[2] उसका मुख कमल पलाश सदृश भास्वरित अधर किशलयों से युक्त होना चाहिए।[3] गण्डपार्श्व सुदृढ़ एवं परिपूर्ण हों।[4] मुख मंडल स्वच्छ (विमल) चन्द्रमा के समान हो।[5] ग्रीवा मृग के समान होनी चाहिए।[6] हाथ लम्बे होने चाहिएँ[7] तथा अँगुलियाँ कमल के सदृश संहित और कान्तिमान् नखों वाली।[8] स्तन कनक कलशाकार, कछुए की पीठ की तरह मोटे और उठे हुए, पुष्ट (कठोर) अर्ध वृत्ताकार और परस्पर सटे हुए (संहत) होने चाहिएँ।[9] पेट पतला (क्षामोदरी) हो और उसमें गंभीर त्रिवलि रेखाएँ हों।[10] उसे मृगोदरी होना चाहिए।[11] वह कमर के पतली होने के कारण कनक कलशाकार पृथु-पयोधर-भार से अवनमित मध्य भागों वाली हो।[12] जघन "रथाङ्गसंस्थित" होना चाहिए।[13] जाँघें कदली के तने के सदृश या हाथी की सूँड़ की तरह हों।[14] "मृगजंघा" भी यहाँ स्त्रियों के प्रशस्त गुणों में परिगणित है।[15] कद मझला हो, न अधिक लम्बा और न ठिगना।[16] उसकी चाल मन्द और विलासयुक्त होनी चाहिए।[17]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
५. वही, पृ० २८८।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
८. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
९. सुधनकुमारावदान पृ० २८८।
१०. वही, पृ० २८८।
११. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१४. वही, पृ० २८८।
१५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१६. वही, पृ० ४१२।
१७. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।

सुधन कुमार मनोहरा किन्नरी को अठारह स्त्री लक्षणों से समलंकृत देखता हैं।[१]

इस प्रकार पत्नी को शारीरिक एवं नैतिक गुणों से अलंकृत होना चाहिए।

दुष्टा पत्नी के ताड़न एवं उसके परित्याग के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। "चूडापक्षावदान" में कहा गया है कि ब्राह्मण के बारह पुत्र अपनी-अपनी दुष्ट पत्नियों की पिटाई भली-भाँति करते हैं।[२] राजा अशोक को यह ज्ञात होने पर कि कुणाल का नेत्र निष्कासन कर्म तिष्यरक्षिता-प्रयुक्त है, वह कहते हैं—

"त्यजाम्यहं त्वामतिपापकारिणी—
मधर्मयुक्तां श्रियमात्मवानिव ॥"[३]

[ग] मातृत्व

नारी के पत्नीत्व का पूर्णतम सार्थक्य उसके मातृत्व की गौरवमयी परिणति में ही निहित है। बिना मातृ-पद को प्राप्त किये नारी की जीवन-यात्रा अधूरी रह जाती है। मातृत्व के इस गौरव के कारण ही स्त्री का एक नाम "प्रजावती" भी था।[४] वर और वधू का चुनाव ऐसे सुयोग्य पुत्र की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था, जो माता-पिता के सद्गुणों का कान्त संमिश्रण हो। अनुरूप पत्नी से पुत्र लाभ चरम आनन्द की वस्तु थी। इसीलिए मातंग-राज त्रिशंकु अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए शीलवती, रूपवती, प्रतिरूपा और प्रजावती कन्या को पत्न्यर्थ ढूँढ़ता है।[५]

पत्नी का वन्ध्यात्व पति के लिए अपार वेदना का कारण होता था।[६] राजाओं के अपुत्र होने पर उन्हें राजवंशसमुच्छिन्न हो जाने की चिन्ता

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
३. कुणालावदान, पृ० २७०।
४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
५. वही, पृ० ३१९।
६. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।

अत्यन्त बाधित किया करती थी। अनेक प्रकार के धन-धान्य-संपन्न होने पर भी एक पुत्र का न होना अपार दुःख का कारण होता था। राजा प्रणाद इसी चिन्ता से ग्रस्त था—

"अनेकधनसमुदितोऽहमपुत्रश्च। ममात्ययाद् राजवंशसमुच्छेदो भविष्यति"।[1]

सन्तान प्राप्त्यर्थ मनुष्य अनेक प्रकार के देवाराधन किया करते थे।[2] पत्नी के गर्भवती होने पर पति के हर्ष की सीमा नहीं रहती थी। गृहपति बलसेन, पत्नी को आपन्नसत्त्वा जान कर अपनी प्रसन्नता को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

"अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम्। जातो मे स्यान्नावजातः। कृत्यानि मे कुर्वीत। भृतः प्रतिबिभृयात्। दायाद्यं प्रतिपद्येत। कुलवंशो मे चिरस्थितिको भविष्यति।"[3]

गर्भिणी स्त्रियों के आहार-विहार में विशेष सावधानी रखी जाती थी। उन्हें वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो अति तिक्त, अम्ल, लवण, मधुर, कटु एवं कषाय न होते थे। गर्भ परिपुष्टि काल पर्यन्त वे किंचिदपि अमनोज्ञ शब्द-श्रवण नहीं करती थीं। वे एक मंच (खाट) से दूसरे मंच पर पीठ के सहारे जाती थीं। जमीन पर पैर रख कर नहीं चलती थीं।[4]

वृद्धयुवति (दाई) का अस्तित्व तत्कालीन प्रसव-विज्ञान की प्रगति का आभास कराता है। इन का कार्य प्रसव-काल उपस्थित होने पर बच्चे को सुव्यवस्थित ढंग से उत्पन्न कराना होता था, तथा ये उस के जीवित रहने के लिए कुछ उपाय का भी निर्देश करती थीं। श्रावस्ती के एक ब्राह्मण की संतान जीवित नहीं रहती थी। अतः वह प्रसव काल उपस्थित होने पर एक

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० १।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६। मैत्रकन्यकावदान, पृ ४६३।
३. वही, पृ० १।
४. वही, पृ० १।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।

वृद्धयुवति को बुलाता है, जो बच्चे को उत्पन्न कराती है, और पुत्र उत्पन्न होने पर कहती है—

"इमं दारकं चतुर्महापथे धारय। यं कंचित् पश्यसि ब्राह्मणं वा श्रमणं वा, स वक्तव्यः—अयं दारकः पादाभिवन्दनं करोतीति। अस्तं गते आदित्ये यदि जीवति, गृहीत्वा आगच्छ। अथ कालं करोति, तत्रैवारोपयितव्यः"।[1]

बच्चे के उत्पन्न होने पर वृद्धयुवति सर्व-प्रथम उस को स्नान कराती थी। तत्पश्चात् शुक्ल वस्त्र द्वारा वेष्टित कर उस के मुख को नवनीत से पूर्ण कर देती थी।

"दिव्यावदान" में धात्रियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो बच्चों का पालन-पोषण सम्यक् रूपेण करती थीं। इन की देख रेख में बच्चे सरोवरावस्थित पंकज के समान शीघ्र ही विकास को प्राप्त करते थे।[2] ये धात्रियाँ चार प्रकार की होती थीं।

(१) अङ्कधात्री[3] या अंसधात्री[4]—जो बच्चे के अंग प्रत्यंग को दबाती थी।

(२) मलधात्री[5]—जो बच्चे को नहलाती थी तथा उस के कपड़ों से मल साफ करती थी।

(३) स्तनधात्री[6] या क्षीरधात्री[7]—जो बच्चे को दूध पिलाती थी।

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान, पृ० ६३।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।, रूपावत्यवदान, पृ० ३१०। मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६५।
३. रूपावत्यवदान, प० ३१०।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान, पृ० ६३। सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
५. वही, पृ० २।, वही, पृ० ३५।, वही, पृ० ६३।, वही, पृ० २८७। रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
६. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान, पृ० ६३, सुधनकुमारावदान प० २८७।

(४) क्रीडापरिणका[1] या क्रीडनिका[2]—जो बच्चों को अनेकों खेल खिलाती थी।

इन चार प्रकार की धात्रियों का वर्णन "रूपावत्यवदान" में इन शब्दों में प्राप्त होता है—

"अङ्कधात्रीत्युच्यते या दारकमङ्केन परिकर्षयति, अङ्गप्रत्यङ्गानि च संस्थापयति। मलधात्रीत्युच्यते या दारकं स्नपयति, चीवरकान्मलं प्रपातयति। स्तन्यधात्र्युच्यते या दारकं स्तन्यं पाययति। क्रीडापनिकाधात्र्युच्यते यानि तानि दारकाणां दक्षकाणां तरुणकानां क्रीडापनिकानि भवन्ति"।[3]

प्रसूता स्त्री "जनिका" "कहलाती थी।[4]

माता के प्रति पुत्रों का स्नेह और आदर भाव दिखाई पड़ता है। कुणाल हमें उस आदर्श पुत्र के रूप में दिखाई पड़ता है जो विमाता के प्रति भी अपनी सगी माता का सा व्यवहार करता है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

[१] दोष

समाज में नारियों को अतिहीन दृष्टि से देखा गया है। "माकन्दिकावदान" में परिव्राजक माकन्दिक के द्वारा रूपोपपन्ना वस्त्रालङ्कार-विभूषिता अपनी कन्या अनुपमा को भगवान् बुद्ध के लिये प्रदान किये जाने पर, भगवान् बुद्ध उस से कहते हैं—"हे ब्राह्मण तृष्णा, असन्तोष, और काम-विकार देख कर स्त्रियों की संगति मुझे अच्छी नहीं लगती।" वे उसके शरीर को "मूत्रपुरीषपूर्ण" बतलाते हैं और कहते हैं कि प्राज्ञधी ऐसे अशुचि पदार्थों से पूर्ण शरीर का स्पर्श पैरों से भी नहीं करते।[5]

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २१, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रिया०, पृ० ६३। सुधन०, पृ० २८७।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
५. माकन्दिकावदान, पृ० ४४९।

स्त्रियों के दुर्गुणों के अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। वैदिक-काल, रामायण एवं महाभारत काल तक पति-पत्नी दोनों का अपनी-अपनी अनर्गल अनियन्त्रित भोग-प्रवृत्तियों को आत्मसात कर आत्मसंयम एवं आत्मत्याग के कुशलानुष्ठान नैरन्तर्य द्वारा आध्यात्मिक प्रगति की प्रवृत्ति के उदात्त दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार उनका पारस्परिक पूत संबन्ध सामाजिक उत्तरदायित्वों के वहन करने का एक प्रतिज्ञा रूप था, जहाँ वासना के दंश का लेश तक न था। किन्तु बौद्ध-काल में आ कर यह भावना लुप्त हो गई और उनका संबन्ध केवल यौन मात्र सीमित रह गया।

स्त्रियों का हृदय काम के अधीन रहता है।[1] "धर्मरुच्यवदान" में किसी महाश्रेष्ठी के धनार्थ देशान्तरगमन करने पर जब वह बहुत दिनों तक नहीं लौटता, तो उसकी पत्नी काम सन्ताप से क्लेशित हो अपने वयस्क पुत्र के साथ प्रच्छन्न रूप से एक वृद्धा के घर चिरकाल तक रति-क्रीड़ा करती है। किन्तु इस भेद के ज्ञात होने पर वह दारक विमूढ़ एवं विह्वलचित्त हो भूमि पर विमूर्छित हो जाता है। तदनन्तर उसकी माता जलघट-परिषेक द्वारा अवसिक्त कर सचेत होने पर, बहुविध अनुनय वचनों द्वारा उसे पुनः पातक असद्धर्म में प्रवृत्त करती है। कालान्तर में श्रेष्ठी के आने पर अपने पुत्र को उसका वध कर डालने के नृशंस कार्य के लिये प्रेरित करती है।[2]

भोगों का निरन्तर आस्वादन उनमें आसक्ति का कारण होता है। स्त्रियाँ अस्थिर चित्त वाली होती हैं। यही कारण है कि इसके बाद वह दुष्टा पुनः एक श्रेष्ठि-पुत्र के प्रति प्रच्छन्न रूप से असद्धर्म में अनुरक्त चित्त वाली होती है। "रामायण" में भी स्त्रियों को अस्थिर चित्त वाली कहा गया है।[3]

इस युग में नारी सार्वजनिक उपयोग की वस्तु मानी गई। इस अवदान में पुत्र को विषाद करने से रोकती हुई उसकी माँ स्त्रियों को पथ-

---

१. "असातमन्त जातक" में भी कहा गया है कि स्त्रियों के काम-वैकल्य में संयम, मर्यादा, एवं सन्तुष्टि की सीमा का बाँध ढह जाता है "वेला तासं न विज्जति।"

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६।

३. "अनित्यहृदया हि ताः" २। ३६। २०-२३

सदृश और तीर्थ के समान वतलाती है ।[1] इस प्रकार स्त्री को ऐश आराम की वस्तु समझना या उसे एक खिलौना समझ कर जीवन भर उसके साथ खिलवाड़ करना मानव की वर्बरता का स्पष्ट परिचायक है ।

स्त्रियों की जघन्यता के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं । स्त्री की चारित्रिक हीनता यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि वह अपने पुत्र तक से प्रणय याचना करने में नहीं हिचकती थी । "कुणालावदान" में अशोक-पत्नी तिष्यरक्षिता सपत्नी-पुत्र कुणाल से प्रणय याचना करती है । वह कहती है—

> "दृष्ट्वा तवेदं नयनाभिरामं,
> श्रीमद्वपुर्नेत्रयुगं च कान्तम् ।
> दंदह्यते मे हृदयं समन्ता—
> द्दावाग्निना प्रज्वलतेव कक्षम् ॥"

किन्तु कुणाल के इसका विरोध करने पर वह प्रणयतिरस्कृत तिष्यरक्षिता क्रुद्ध हो अपना प्रतिशोध लेने के लिये कुणाल के दोनों नेत्र निकाल लेने का क्रूर आदेश प्रेषित करती है ।[2]

"चूडापक्षावदान" से वृद्धावस्था के कारण नेत्र-ज्योति विहीन ब्राह्मण के वारह पुत्रों की स्त्रियाँ अपने-अपने स्वामियों की अनुपस्थिति में परपुरुषों के साथ अवैध संवन्ध स्थापित करती थीं ।[3]

एक दूसरे स्थान पर, पण्य ले कर महासमुद्रावतरण करने के लिये उद्यत एक गृहपति के मन में, अपनी पत्नी को प्रभूत कार्षापण प्रदान करने में यह वात खटकती है कि "यद्यहमस्मै प्रभूतान् कार्षापणान् दास्यामि, परपुरुषैः सार्धं विहरिष्यति" जिससे वह अपने वयस्य श्रेष्ठी को कार्षापण दे जाता है और उससे कहता है "यदि मम पत्न्या भक्ताच्छादेन योगोद्वहनं कुर्याः"।

---

१. पन्थासमो मातृग्रामः । येनैव हि यथा पिता गच्छति, पुत्रोऽपि तेनैव गच्छति । न चासौ पन्था पुत्रस्यानुगच्छतो दोषकारको भवति, एवमेव मातृग्रामः । तीर्थसमोऽपि च मातृग्रामः । यत्रैव हि तीर्थे पिता स्नाति, पुत्रोऽपि तस्मिन् स्नाति, न च तीर्थं पुत्रस्य स्नायतो दोषकारकं भवति एवमेव मातृग्रामः ।" । पृ० १५६ ।

२. कुणालावदान, पृ० २६४ ।

३. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।

"माकन्दिकावदान' में सभी स्त्रियों को राक्षसी बतलाया गया है, "सर्वा एव स्त्रियो राक्षस्यः"।[१]

स्त्रियों को आपस में फूट डालने वाली कहा गया है, "सुहृद्‌भेदकाः स्त्रियो भवन्तीति"। "पूर्णावदान" में भव गृहपति अपने पुत्रों को आदेश देता है कि मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के कथनानुसार कार्य न करना। इस संबन्ध में वह इस तथ्य का निरूपण करता है—

"कुटुम्बं भिद्यते स्त्रीभिर्वाग्भिर्भिद्यन्ति कातरा:।
दुर्न्यस्तो भिद्यते मन्त्रः प्रीतिर्भिद्यति लोभतः ॥[२]

रामायण में भी स्त्रियों के अवगुण में "भेदकराः स्त्रियः" की चर्चा है।[३]

स्त्रियों का स्वभाव ईर्ष्यालु होता है—"ईर्ष्याप्रकृतिर्मातृग्रामः"। "माकन्दिकावदान" में अनुपमा अपनी सपत्नी श्यामावती के रन्ध्रान्वेषण में दत्त-चित्त रहती है। वह महाराज उदयन को श्यामावती के विरुद्ध उत्तेजित करती है और अन्ततोगत्वा अपने पिता माकन्दिक से श्यामावती को मार डालने के लिये कहती है, जिससे वह उपाय द्वारा श्यामावती प्रमुख ५०० स्त्रियों को जला कर नष्ट कर देता है। यह प्रसंग उस समय के सापत्न्य भाव का स्पष्ट प्रदर्शन करता है।

भगवान् बुद्ध के "मूत्रपुरीषपूर्णा" कहने पर अनुपमा अपनी इस निन्दा को सुन क्रोधित हो उठती है और राग का स्थान द्वेष ग्रहण कर लेता है, जिसका परिणाम श्यामावती प्रमुख ५०० स्त्रियों का विनाश होता है।

प्रणय-याचना के ठुकरा दिये जाने पर तिष्यरक्षिता द्वारा प्रतिशोध-रूप में कुणाल के दोनों नेत्रों का निकलवा लेना स्त्री की द्वेष-बुद्धि को ही प्रकट करता है।[४]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५३।
२. पूर्णावदान, पृ० १७।
३. रामायण ३। ४५। २९-३०
४. कुणालावदान, पृ० २६४।

[२] गुण

नारी के इन दोषों के अतिरिक्त उसके कुछ गुणों का भी बोध होता है।

पत्नी, पति के साथ केवल सुख के दिनों में ही नहीं रहती, वह उसके दुर्दिन में भी हाथ बटाने वाली सहचरी होती है। वह अपना जीवन पति-सेवा में अर्पित कर देने में गौरव समझती है। यही भारतीय ललना की निजी विशेषता रही है, जिसका पावन प्रकाश भारतीय-संस्कृति के उज्जवल स्वरूप को सदा प्रद्योतित करता रहा है। कांचनमाला अपने पति कुणाल के "स्वयं कृतानामिह कर्मणां फलमुपस्थितम्" कहने से शान्त रह जाती है और उन दुष्कर्म करने वालों के प्रति विद्रोह नहीं करती, अपितु अपने पति के साथ-साथ भिक्षा माँगती हुई तक्षशिला से निकल पड़ती है,[1] जो पति के प्रति उसकी ऐकान्तिक निष्ठा और सेवाभावना को व्यक्त करती है।

पति के भोजनोपरान्त भोजन करना भारतीय नारी की मर्यादा रही है। गृहपति के द्वारा अपने भोजन का अंश प्रत्येक बुद्ध को दे दिये जाने पर, उसकी पत्नी विचार करती है—

"मम स्वामी न परिभुंक्ते, कथमहं परिभोक्ष्य इति"।[2]

स्त्रियाँ बेकार रहना उचित नहीं समझती थीं। अतः वे किसी न किसी छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे का सम्पादन करती थीं, और इस प्रकार धनोपार्जन में अपने स्वामी का हाथ बटाती थीं। 'ज्योतिष्कावदान' में चम्पा नगरी के एक ब्राह्मण की पत्नी ऐसा ही विचार करती है।[3]

विदुषी स्त्रियों में पञ्च आवेणिक (परम्परानुगत स्वाभाविक) धर्म होते थे।[4]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६७।

२. मेण्ढकावदान, पृ० ८३।

३. "अयं ब्राह्मणो यैस्तैरुपायैर्धनोपार्जनं करोति। अहं [illegible]। न मम प्रतिरूपं यदहमकर्मिका तिष्ठेयमिति।" पृ० १३०।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० १।

(१) अनुरक्त एवं विरक्त पुरुष का ज्ञान ।
(२) काल एवं ऋतु का ज्ञान ।
(३) गर्भ-स्थापन (स्थिति) का ज्ञान ।
(४) जिस(व्यक्ति) से गर्भस्थिति होती है, उसका ज्ञान ।
(५) गर्भस्थ दारक-दारिका परिज्ञान । (गर्भ के दक्षिण कुक्षि का आश्रयण पुत्र एवं वाम कुक्षि का आश्रयण पुत्री होने का परिचायक है ।)

पर्दा-प्रथा

राज-परिवार की महिलाएँ अन्तः पुरों में रहती थीं, बाहर जन समूह के मध्य नहीं निकलती थीं । वे लज्जावती होती थीं । रुद्रायण के, अपनी अन्तः पुरिकाओं से धर्म-श्रवण के लिए कहने पर, वे कहती हैं—

"देव वयं ह्रीमन्त्यः । कथं वयं तत्र गत्वा धर्मं शृणुमः । यद्यार्यो महाकात्यायन इहैवागत्य धर्मं देशयेत्, एवं वयमपि शृणुयाम इति" ।[१]

एक अन्य स्थल पर प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर रुद्रायण के राजगृह में भिक्षाचरणार्थ प्रविष्ट होने पर स्त्रियाँ उसे वातायनगवाक्षादिकों से देखती हैं । वे बाहर नहीं निकलतीं । उन्हें "अन्तर्भवनविचारिणी" कहा गया है ।[२]

रामायण में भी यह प्रथा दृष्टिगोचर होती है ।[३]

O

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६ ।
२. वही, पृ० ४७३ ।
३. या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥" (६।१२८।१७)

परिच्छेद ६

नगर एवं प्रासाद

तत्कालीन मनोरम एवं वैभवशाली नगर और प्रासादों का निर्माण यह स्पष्ट करता है कि उस काल में स्थापत्य का समुचित विकास हो चुका था। प्रसिद्ध स्थपति देवपुत्र विश्वकर्मा का उल्लेख प्राप्त होता है। देवेन्द्र, शक्र उन से अनङ्गण गृहपति की सहायता करने के लिए कहते हैं। फलस्वरूप वह विशिष्ट प्रकार की नगर-शोभा एवं दिव्य मंडलवाट (वगीचा) का निर्माण करते हैं।[1]

नगरों का विस्तार बहुत दूर-दूर तक होता था। कनकावती राजधानी पूर्व और पश्चिम से बारह योजन लम्बी एवं उत्तर और दक्षिण से सात योजन चौड़ी थी। राजा कनकवर्ण के राज्य में अस्सी हजार नगर, अठारह करोड़ कुल, सत्तावन करोड़ ग्राम और साठ हजार कर्वटक थे।[2] इसी प्रकार भद्रशिला नगरी भी बारह योजन लम्बी और बारह योजन चौड़ी थी।[3]

ये नगरियाँ ऊँचे-ऊँचे प्राकारों (चहारदीवारियों) से घिरी रहती थीं। एक बार भद्रंकर नगर में भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ अपार जन-काय एक साथ ही निकलने लगा, जिस से अपार भीड़ हो जाने से उन के जाने में असुविधा होने लगी। फलतः वज्रपाणि यक्ष के द्वारा वज्र फेंक कर प्राकार भग्न कर दिये जाने की चर्चा है, जिस से कई सौ हजार प्राणी एक साथ ही निकल गये।[4]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७८।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान पृ० १९५।
४. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०।

त्रायस्त्रिंश देवों का सुदर्शन नामक नगर ढाई सहस्र योजन लम्बा और ढाई सहस्र योजन चौड़ा बतलाया गया है। यह नगर दस सहस्र योजन वाले सात सुवर्णमय प्राकारों से घिरा हुआ था तथा ये प्राकारें ढाई योजन ऊँची बतलाई गई हैं। यह इस लोक के किसी नगर का वर्णन नहीं अपितु देव-लोक के एक नगर का वर्णन है।[१]

नगरों में प्रविष्ट होने के लिए कई द्वारा होते थे, जिनमें से एक मूल द्वार होता था। सूर्पारक नगर में अठारह द्वारों के होने का उल्लेख है।[२] साधारणतः चार द्वार होते थे, जो उच्च तोरण, गवाक्ष, वातायन, तथा वेदिकाओं से मंडित रहते थे।[३]

नगरों में उद्यान, प्रस्रवण, तडाग एवं कूपों का निर्माण देखने को प्राप्त होता है। उद्यान में अनेकों प्रकार के वृक्ष लगाये जाते थे और नाना प्रकार के पक्षि-गण कूजन किया करते थे। ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पुंनाग, नागकेसर, चपंक, बकुल, पाटलादि पुष्पों से आच्छादित एवं कलविंक, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवंजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण निकूजित भद्रशिला का वनषण्डोद्यान हठात् चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। तत्रस्थ मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम दृश्य भी अवलोकनीय है।[४] भद्रशिला राजधानी में प्रस्फुटित पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल-पुष्प-मंडित स्वादु, स्वच्छ एवं शीतल जल परिपूर्ण तडाग, कूप एवं प्रस्रवण का भी नयनाभिराम दर्शन होता है।[५]

तीन प्रकार के उद्यानों का निर्माण कराया जाता था, जिन में ऋतुओं के अनुसार पुष्पादि वृक्ष लगे होते थे[६]—

(१) हैमन्तिक
(२) ग्रैष्मिक
(३) वार्षिक

---

१. मान्धातावदान, पृ० १३६।
२. पूर्णावदान, पृ० २७।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।
४. वही, पृ० १९५।
५. वही, पृ० १९५।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

इन नगरों में मार्गों की विशिष्ट योजना होती थी। मार्गों में वीथी[1], पन्थलिका[2], रथ्या[3], चत्वर[4], शृंगाटक[5] आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। चतुर्महापथ[6] का भी वर्णन है, जहाँ चार बड़े-बड़े रास्ते आ कर मिलते थे। भद्रशिला नगरी में इन मार्गों पर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुरभित समीर का प्रसार चतुर्दिक हो रहा था।[7]

किसी उत्सव या किसी के स्वागत में इन मार्गों की विशेष सजावट की जाती थी। इसके लिए "मार्गशोभा"[8] शब्द प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार नगर की सजावट के लिए "नगर शोभा"[9] शब्द भी प्राप्त होता है। नगर एवं मार्गों की सजावट के लिए उन्हें कंकड़, पत्थर वालुकादि से रहित कर चन्दन-वारि-सिक्त कर दिया जाता था। नगर में ध्वज-पताकाएँ फहराती थीं। सुरभिधूप-घटिका रख दी जाती थी तथा नानाविध पुष्प बिखेर दिये जाते थे।[10]

हर वस्तु के लिए अलग-अलग स्थान नियत था। यदि किसी को भृतक (मजदूर) की आवश्यकता पड़ती थी, तो उसके लिए एक नियत स्थान था, जहाँ वे काम की खोज में बैठे मिलते थे। "सहसोद्गतावदान" में "भृतकवीथी" का उल्लेख है, जहाँ से लोग भृतकों को ले जाया करते थे।[11]

---

१. स्वागतावदान, पृ० ११७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
   चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४२९।
३. वही, पृ० ४३३।
४. वही, पृ० ४३३।, चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
५. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५। चूडापक्षावदान, पृ० ४३३।
६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
७. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४४४। रुद्रायणावदान, ४६७,६८,६९,७२।
९. रुद्रायणावदान, पृ० ४६९, ७२।
१०. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६-८७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १५९।
११. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।

"गृहस्योपरितल"[१] या "उपरिप्रासादतल"[२] यह प्रकट करता है कि मकान कई मंजिलों का होता था। गृहों में निर्मुक्त वायु के आने-जाने के लिए गवाक्ष एवं वातायनादि होते थे। इन खिड़कियों का मुख सड़क की तरफ़ होता था। प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर रुद्रायण के राजगृह में भिक्षाचरणार्थ प्रविष्ट होने पर स्त्रियाँ उसे वातायन, गवाक्षादिकों से देखती हैं।[३]

राजघरानों एवं समृद्धिशाली व्यक्तियों के यहाँ ऋतुओं के अनुसार तीन प्रकार के गृहों का उल्लेख प्राप्त होता है[४]—

(१) हैमन्तिक—हेमन्त और शिशिर ऋतु के उपयुक्त गृह

(२) ग्रैष्मिक—बसन्त और ग्रीष्म ऋतु के उपयुक्त गृह

(३) वार्षिक— वर्षा और शरद् ऋतु के उपयुक्त गृह

गृहों में आँगन भी होते थे। मातंगदारिका प्रकृति की माँ गृह में आँगन के बीच गोबर का लेप देकर आनन्द के चित्त को आक्षिप्त करने के लिए मंत्रों का उच्चारण करती है।[५]

गृहों में अनेक आगारों, शालाओं एवं कक्षादिकों का उल्लेख हुआ है—

(१) कोष्ठागार[६]—समान एकत्र कर रखने का स्थान।

(२) कूटागार[७]—घर की छत के ऊपर का कमरा।

(३) भाण्डागार[८]—घर की वस्तुओं और बर्तन आदि के रखने का कमरा।

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७१।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २। ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
७. वही, पृ० ४७४।
८. अशोकावदान, पृ० २७९।

(४) पानागार[१]—जहाँ लोग मद्यादि पानों का सेवन करते थे।

(५) शोकागार[२]—जहाँ मनुष्य शोक युक्त हो निवास करता था।

(६) स्नानशाला[३]—स्नान-गृह।

(७) दानशाला[४]—दान देने का स्थान।

(८) उपस्थानशाला[५]—लोगों के एकत्र होने का वह स्थल जहाँ उन्हें कोई उपदेश या आदेश दिया जाता था।

(९) कुलोपकरण शाला[६]—कक्ष-विशेष।

(१०) शुल्क शाला[७]—जहाँ व्यापार की वस्तुओं पर शुल्क-ग्रहण किया जाता था।

(११) यान शाला[८]—विभिन्न यानों के रखने का स्थान।

(१२) लेख शाला[९]—विद्या प्राप्त करने का स्थान।

(१३) लिपिशाला[१०]—जहाँ बालक लिपि-शिक्षा ग्रहण करता था।

(१४) कुतूहल शाला[११]– मनोविनोद करने का बड़ा कमरा।

(१५) मन्दुरा[१२]– घोड़ों के रहने का स्थान।

(१६) महानस[१३]—रसोई घर।

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०८।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७।
३. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
४. मैत्रेयावदान, पृ० ३६। माकन्दिकावदान, पृ० ४६२।
५. मान्धातावदान, पृ० १२८।
६. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७८।
७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
८. कुणालावदान, पृ० २६७।
९. स्वागतावदान, पृ० १०६।
१०. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
११. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८९।
१२. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३।
१३. वही, पृ० ३३५।

(१७) यन्त्रगृह[1]—जहाँ लोगों को अपराध के दंड स्वरूप कष्ट झेलने के लिए डाल दिया जाता था।

इन गृहों एवं शालाओं के अतिरिक्त हाट में दूकानें होती थीं, जहाँ विक्री की वस्तुएँ रखी जाती थीं। दूकानों को "आवारी"[2] या "आपण"[3] कहते थे।

स्तूपों का भी बुद्धकालीन भवनों में विशेष स्थान है।

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २४०।, माकन्दिकावदान, पृ० ४६०।
२. पूर्णावदान, पृ० १६,१७।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६६।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५७।

परिच्छेद १०

लोक-मान्यताएँ

[क] यक्ष

यह प्रसिद्धि थी, कि जेतवन में पाँच सौ नीले वस्त्र धारी यक्ष निवास करते हैं।[1] यक्ष-समिति में खगपथ से जाते हुए महाराज वैश्रवण यक्ष के यान के रुक जाने का उल्लेख है।[2] भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिए समस्त भद्रंकर निवासी जब एक साथ जाने लगे, तो उनकी सुविधा के लिए वज्रपाणि नामक यक्ष ने वज्र फेंक कर प्राकार तोड़ दिया था।[3] गोशीर्षचन्दन वन महेश्वर यक्ष द्वारा परिग्रहीत था। वहाँ पर पाँच सौ वणिकों को कुठार धारण किये हुए देखकर वह क्रुद्ध हो महान् कालिकावात छोड़ता है।[4]

[ख] किन्नर

सार्थवाह सुप्रिय बदरद्वीप की यात्रा करते समय क्रमशः सौवर्ण, रूप्यमय, वैडूर्यमय तथा चतूरत्नमय किन्नर-नगरों में जाता है। वहाँ उसे किन्नर-कन्याएँ मिलती हैं, जो "अभिरूपा", "दर्शनीया", "प्रासादिका", चातुर्य-माधुर्यसंपन्ना", "सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता", "परमरूपाभिजाता" तथा हास-रमण-परिचरण-नृत्य-गीत-वादित्रकला विशारदा थीं। वे उससे कहती हैं—

"एतु महासार्थवाहः। स्वागतं महासार्थवाह। अस्माकमस्वामिनीनां स्वामी भव, अपतीनां पतिरलयनानां लयनोऽद्वीपानां द्वीपोऽशरणानां शरणोऽत्राणानां त्राणोऽपरायणानां परायणः।.........त्वं चास्माभिः सार्धं क्रीडस्व रमस्व परिचारयस्व।"[5]

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९०।
३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०।
४. पूर्णावदान, पृ० २५।
५. सुप्रियावदान, पृ० ७२-७३।

ब्रह्मसभा नाम की पुष्करिणी में किन्नरराज द्रुम की पुत्री मनोहरा पाँच सौ किन्नरी परिवारों के साथ स्नान के लिए जाती थी। स्नान काल में मधुर गीत वादित ध्वनि होती थी।[१]

इस प्रकार किन्नर एक ऐसी जाति थी, जो शृंगारिक क्रीड़ाओं और गीतों में मग्न रहती थी। किन्नरियाँ शारीरिक सौन्दर्य में अप्रतिम होती थीं। मनोहरा किन्नरी को अष्टादश स्त्री-लक्षणों से समलंकृत बतलाया गया है।[२]

[ग] अप्सरा

अप्सराएँ सौन्दर्य और विशिष्ट आकर्षणों की केन्द्र समझी जाती थीं। मैत्रकन्यक घूमते हुए क्रमशः रमण, सदामत्ताक, नन्दन और ब्रह्मोत्तर नामक नगरों में जाते हैं, जहाँ कनकवर्ण, विकसित कमल के समान चारु नेत्रों वाली, शब्द करने वाली विविध मणि-मेखला धारण करने के कारण मन्द विलास गतियों वाली, कनक-कलशाकार-पृथु-पयोधर भार से अवनमित मध्य भागों वाली, कमल-पलाश सदृश भास्वरित अधर किशलयों वाली तथा अनेक आभूषणों से अलंकृत अप्सराएँ उनका स्वागत करती हैं। वहाँ उन अप्सराओं के सविलास गमन, लीला युक्त हास, कटाक्ष और मधुर प्रलापों के साथ क्रीड़ा करते हुए उसे समय के व्यतीत होने का भान नहीं होता।[३]

श्रोण कोटिकर्ण प्रेतनगर में एक पुरुष को सौन्दर्यशालिनी चार अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए देखता है।[४] अप्सराओं का सेवन दिव्य सुख कहा गया है।[५]

[घ] राक्षस

ये समुद्र-तट के निवासी थे। इनका प्रधान निवास स्थान दक्षिण भारत का समुद्री किनारा और लंका द्वीप था। रत्नद्वीप में क्रौंचकुमारिका नाम

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. वही, पृ० २८८।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४,५०६।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० ५।
५. वही, पृ० ६,७।

की राक्षसी स्त्रियों के निवास करने का उल्लेख है।[1] ताम्रद्वीप में भी राक्षसियों के वास करने की चर्चा है।[2]

राक्षसों की नर-मांस भक्षण के प्रति बर्बरों की सी प्रवृत्ति से यह निश्चय होता है कि यह एक घृणित, कुरूप एवं विकृत जाति थी। ताम्रद्वीप निवासिनी राक्षसियाँ पाँच सौ वणिकों को खा जाती हैं और राक्षसी सिंहल-भार्या से वे कहती हैं कि हम लोगों ने अपने-अपने स्वामियों को खा लिया, तुम भी अपने स्वामी को ले आओ अन्यथा हम सब तुम्ही को खा जायगीं।[3] राक्षसियों द्वारा अन्तःपुर सहित सिंहकेसरी राजा के भी खा लिए जाने का उल्लेख हुआ है।[4]

राक्षस स्वेच्छानुसार अपने रूपों को बदलते रहते हैं। जब राक्षसियाँ राक्षसी सिंहलभार्या से अपने स्वामी को ले आने के लिए कहती हैं, तो वह परमभीषण रूप धारण कर धीरे-धीरे सार्थवाह सिंहल के आगे जाती है।[5] राक्षसियाँ विकृत हाथ, पैर तथा नखों वाले अत्यन्त भैरव रूप का निर्माण कर सिंहकल्पा राजधानी में अन्तःपुर सहित राजा सिंहकेसरी का भक्षण करने जाती हैं।[6]

इनका रूप मनुष्य से भिन्न होता था तथा ये मायाविनी होती थीं। राक्षसी सिंहलभार्या अतीव रूप यौवन संपन्न महासुन्दरी मानुषी स्त्री का रूप धारण कर एवं सिंहल के सदृश अत्यन्त सुन्दर पुत्र का निर्माण कर और उस पुत्र को लेकर सिंहकल्पा राजधानी में जाती है।[7]

[ङ] अपशकुन

धूमान्धकार, उल्कापात, दिशोदाह और अन्तरिक्ष में देव-दुन्दुभि-नाद आदि

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
४. वही, पृ० ४५४।
५. वही, पृ० ४५१।
६. वही, पृ० ४५४।
७. वही, पृ० ४५३।

किसी महापुरुष के विनाश सूचक माने जाते थे। रौद्राक्ष ब्राह्मण के राजा के शिरोयाचनार्थ गन्धमादन पर्वत से उतरने पर ऐसे ही अशिव निमित्तों का दर्शन होता है, जिससे विश्वामित्र ऋषि यह अनुमान करता है कि निश्चय ही किसी महापुरुष का विनाश होगा।[1]

अभद्र एवं भयावह स्वप्न भी अनिष्ट के कारण समझे जाते थे।[2]

[च] धार्मिक-अन्धविश्वास

समाज में धार्मिक अन्धविश्वास भी प्रचलित था। राजा धन एक भयानक स्वप्न का निवेदन अपने ब्राह्मण पुरोहित से करता है। वह स्वप्न को अनिष्टकारी बतलाकर राजा से तत्प्रशमनार्थ अनेक कार्यानुष्ठानों का निर्देश कर, अन्त में कहता है—"किन्नरवसया च धूपोदेयः"। जब राजा किन्नरमेद-प्राप्ति-दौर्लभ्य प्रकट करता है तो वह पुरोहित राजकुमार सुधन की एकमात्र प्रीतिकेन्द्र-भूता प्राणाधिक प्रिया किन्नरराजदुहिता मनोहरा को तद् सम्पादनार्थ समुचित बतलाता है। किन्तु राजा के द्वारा इसका निषेध किये जाने पर वह अनेक तर्कों द्वारा उनको अनुकूल करता है, जिससे राजा धन वैसा ही करने को तत्पर हो जाते हैं।[3]

समाज में ब्राह्मणों ने कितना आडम्बर फैला रखा था, यह उस समय ज्ञात होता है, जब ब्राह्मण पुरोहित राजा के अनिष्टकारक स्वप्न के प्रतिकारोपाय का एक विस्तृत वर्णन करता है—

"देव, उद्याने पुष्करिणी पुरुषप्रमाणिका कर्तव्या। ततः सुधया प्रलेप्तव्या। सुसंमृष्टां कृत्वा क्षुद्रमृगाणां रुधिरेण पूरयितव्या। ततो देवेन स्नानप्रयतेन तां पुष्करिणीमेकेन सोपानेनावतरितव्यम्, एकेनावतीर्य द्वितीयेनोत्तरितव्यम्, द्वितीयेनोत्तीर्य तृतीयेनावतरितव्यम् तृतीयेनावतीर्य चतुर्थेनोत्तरितव्यम्। ततश्चतुर्भिर्ब्राह्मणैर्वेदवेदाङ्गपारगैर्देवस्य पादयोर्जिह्वया निर्लेढव्यम्, किन्नरवसया च धूपो देयः। एवं देवो विधूतपापश्चिरं राज्यं पालयिष्यतीति।"[4]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९८।
२. कुणालावदान, पृ० २६४।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
४. वही, पृ० २९१।

एक स्थल पर अन्तर्वर्तिनी ब्राह्मणी को सदा अतृप्त देख ब्राह्मण सोचता है कि इसे कोई रोग तो नहीं हो गया अथवा भूतग्रहादि का आवेश तो नहीं हुआ कि वा मरणलिंग प्रत्युपस्थित हुआ है।[1] इस प्रकार उसकी शंका तथा भूततन्त्रविदों का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि लोगों का भूतप्रेतादि में भी विश्वास था।

[छ] प्रवाद

कल्पान्त में सप्त सूर्योदय की जनश्रुति लोगों में प्रसिद्ध थी। रत्नद्वीप से रत्नों का ग्रहण कर वणिक्जन जम्बुद्वीप की तरफ़ प्रत्यावर्तन करते समय तिमिंगिल मत्स्य के उभय नेत्रों को दो सूर्यों के सदृश देखते हैं तथा यानपात्र (जहाज) को अतिवेग से उसके द्वारा अपह्रियमाण देखकर सोचते हैं—

"किं भवन्तो यत् तच्छ्रूयते सप्तादित्याः कल्पसंवर्तन्यां समुदागमिष्यन्तीति, तदेवेदानीं प्रोदिता स्युः"।[2]

यह भी प्रचलित था, कि जेतवन में ५०० नीले वस्त्रधारी यक्ष निवास करते हैं। जब कोई गृहपति धर्मरुचि भिक्षु को अपने सर्व आहारों का भक्षण कर लेने पर भी अतृप्त देखता है, तो वह उसे उन्हीं ५०० यक्षों में से एक समझता है।[3]

उस समय यह प्रवाद प्रचलित था कि देव-याचन द्वारा पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति होती है।[4] सन्तानप्राप्त्यर्थ शिव, वरुण, कुबेर, वासवादि तथा अन्य भी कई अनेक देवताओं की उपासना की जाती थी, जैसे—आरामदेवता, वन-देवता, चत्वरदेवता, शृङ्गाटकदेवता और वलिप्रतिग्राहिक देवता। परन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि ऐसा होने पर तो चक्रवर्ती राजा के समान प्रत्येक को सहस्रों पुत्र होते। त्रिपुटी का संमुखीभाव ही गर्भावक्रान्ति में कारण होता है। तीन के संघ को त्रिपुटी कहते हैं। इनके अन्तर्गत निम्न त्रय[5] की गणना की गई है—

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४५।
२. वही, पृ० १४३।
३. वही, पृ० १४७।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० १।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८९।
५. वही, पृ० १।, वही, पृ० २८९।

[१] माता-पिता का परस्पर अनुरक्त एवं एकत्रित होना

[२] माता का कल्या (निरोग) एवं ऋतुमती होना

[३] गन्धर्व की प्रत्युपस्थिति

[ज] निमित्त

समाज में ऐसे व्यक्ति भी रहते थे, जो शुभाशुभ निमित्तों द्वारा तदनुरूप फलाफलों का विवेचन भी सम्यक् प्रकारेण करते थे। ऐसे व्यक्ति "नैमित्तिक" द्वारा अभिहित किये जाते थे। बोध गृहपति की पत्नी के आपन्नसत्त्वा होने पर अनेक अनर्थ प्रकट होने लगते हैं। बोध गृहपति नैमित्तिकों को बुलाकर अनर्थ का कारण पूछता है।[१]

"पांशुप्रदानावदान" में नैमित्तिक ब्राह्मण की कन्या के भविष्य के बारे में बताते हैं कि इस दारिका का पति कोई राजा होगा तथा यह दो पुत्र रत्नों को जन्म देगी, जिनमें से एक चक्रवर्ती राजा होगा और दूसरा प्रव्रजित होकर सिद्धव्रत संन्यासी।[२]

समाज में लक्षणज्ञ, नैमित्तिक, भूम्यन्तरिक्षमंत्र-कुशल ब्राह्मणों का भी अस्तित्व था। राजा कनकवर्ण के नक्षत्र विषम हो जाने पर ऐसे ही ब्राह्मण उनके पास आते हैं, जो यह सूचित करते हैं कि बारह वर्ष तक अनावृष्टि रहेगी।[३] इस प्रकार निमित्तों के सर्वातिशायी प्रभाव में तत्कालीन समाज की अटल आस्था थी।

स्वप्नों के फल में भी सार्वजनीन विश्वास था। इनसे भावी घटनाओं की पूर्व-सूचना प्राप्त होती थी। राजा अशोक स्वप्न में कुणाल के नेत्रों को निकालने के इच्छुक दो गीधों को देखते हैं; दीर्घ केश, नख, श्मश्रु धारण किए हुए कुणाल को नगर में प्रविष्ट होते देखते हैं तथा दाँतों का गिरना देखते है, जिससे वह भयत्रस्त हो रात्रि के समाप्त होते ही नैमित्तिकों को बुलाकर इन स्वप्नों के विपाक (फल) के बारे में पूछते हैं।[४]

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३२।
३. कनकवर्णावदान, पृ० १७१।
४. कुणालावदान, पृ० २६४।

राजा चन्द्रप्रभ के विनाश की सूचना देने वाले स्वप्नों को उनके अमात्य गण देखते हैं। महाचन्द्र अग्रामात्य यह स्वप्न देखता है कि धूमवर्ण पिशाच ने राजा चन्द्रप्रभ का सिर अलग कर दिया। महीधर नामक अग्रामात्य राजा चन्द्रप्रभ के सर्व रत्नमय पोत के शतशः विदीर्ण होने का स्वप्न देखता है, तथा उनके साढ़े छः हजार अमात्य भी अनिष्टकारी स्वप्न देखते हैं, जिससे वे सभी भयत्रस्त हो कहते हैं—

"मा हैव राज्ञश्चन्द्रप्रभस्य महापृथिवीपालस्य मैत्रात्मकस्य कारुणिकस्य सत्त्ववत्सलस्यानित्यताबलमागच्छेत्, मा हैव अस्माकं देवेन सार्धं नानाभावो भविष्यति विनाभावो विप्रयोगः, मा हैव अत्राणोऽपरित्राणो जम्बुद्वीपो भविष्यतीति।"[1]

राजा धन यह स्वप्न देखते हैं कि कोई गीध आकर, उनके पेट को विदीर्ण कर, उनकी आँतों को निकालकर और उन आँतों से उस नगर को वेष्टित कर देता है तथा घर में सात रत्नों को आते हुए देखते हैं।[2]

[झ] अनार्य कर्म

स्त्री-वध अनार्य कर्मों में परिगणित था। अशोक को तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल के नेत्र निकलवाये जाने की यथार्थ बात ज्ञात होने पर, जब वह उसको अनेक प्रकार के दण्ड देने की बात कहते हैं, तो उस समय कुणाल राजा अशोक से इसका निषेध करता है—

'अनार्यकर्मा यदि तिष्यरक्षिता
त्वमार्यकर्मा भव मा वध स्त्रियम्।"[3]

समाज में स्त्री-वध अति निकृष्ट समझा जाता था तथा स्त्री-घातक के साथ लोग अभाषणादि भी नहीं करते थे। एक स्थल पर मातुल गृहपति सुभद्र से कहता है कि यदि तुम ज्योतिष्क कुमार को राजकुल से ले आते हो, तभी कुशल है अन्यथा हम लोग सर्वत्र ऐसी घोषणा करेंगे कि—

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९७-१९८।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
३. कुणालावदान, पृ० २७०।

"अस्माकं भगिनी सुभद्रेण गृहपतिना प्रघातिता। स्त्रीघातकोऽयम्। न केनचिदाभाषितव्यमिति"।[1]

स्त्री-घातक को जाति से वहिष्कृत कर दिया जाता था तथा राजा भी उसको कुछ दण्डादि देते थे। इसी से मातुल गृहपति सुभद्र को जाति से निकाल देने तथा राजकुल अनर्थ कराने की धमकी देता है।[2]

"रामायण" में स्त्रियों को अवध्या घोषित किया गया है।[3] तथा यह भी कहा कहा गया है कि महात्मा लोग स्त्रियों के प्रति कोई क्रूर व्यवहार नहीं करते थे।[4]

अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्राणी गर्भस्थ सत्त्व की निर्मम हत्या [भ्रूण-हत्या] जैसा निन्दित कर्म भी करता था और और ऐसा करने में वह अपनी पत्नी तक का वध कर डालता था। भूरिक के यह कहने पर कि यह गर्भस्थ सत्त्व मन्दभाग्य है और उत्पन्न होते ही कुल को विनष्ट कर देगा गृहपति सुभद्र उसे सर्वथा त्याज्य समझता है। अतएव उसे नष्ट करने के लिए वह भैषज्य देना प्रारम्भ करता है। फिर वह अपनी पत्नी के वाम कुक्षि का मर्दन करता है, जिससे वह गर्भ दक्षिण कुक्षि में चला जाता है और दक्षिण कुक्षि का मर्दन करने पर वह पुनः वाम कुक्षि में चला जाता है। अन्त में, वह अपनी पत्नी को अरण्य में ले जा कर इतना मारता है कि उसकी मृत्यु हो जाती है।[5]

पाणिनि ने भी "अष्टाध्यायी" में भ्रौणहत्य आदि महापातकों का उल्लेख किया है।[6]

O

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६८।
२. वही, पृ० १६८।
३. रामायण, २,७८,३७।
४. रामायण—"न हि स्त्रीषु महात्मान: क्वचित् र्वन्तिदारुणम्" [४,३३,३६]
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२—१६३.।
६. अष्टाध्यायी—६,४,१७४।

परिच्छेद ११

उदात्त-भावनाएँ

[क] त्याग

मानव के लिए जीवन की प्रेरणा देने वाले सत्य का प्रयोजन न राज्य है, न स्वर्ग है, न भोग है, न इन्द्रपद है, न ब्रह्म और न चक्रवर्ती राजाओं का विजय; अपितु उसका एक मात्र लक्ष्य तो यही है कि मानव को सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हो, जिससे वह इन्द्रियासक्तों को आत्मनिग्रहार्थ प्रेरित करे, अशान्तों को शान्ति प्रदान करे, नानाविधदुःखसंवलित संसार-सागरानुविद्ध मनुष्यों का उद्धार करे, बन्धन-युक्त मनुष्यों को निर्मुक्त करे, अनाश्वस्तों को आश्वस्त करे और उद्विग्नों को सुखी करे। राजा चन्द्रप्रभ ने इन्हीं विचारों को व्यक्त किया है।[1]

दूसरों की प्राण-रक्षा के निमित्त स्वात्मत्याग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक नवप्रसूता क्षुत्क्षामपरीता स्त्री एवं उस के नवजात बालक की रक्षा के लिए कोई अन्य उपाय न देख रूपावती ने अपने दोनों स्तन शस्त्र द्वारा काट कर उस स्त्री को दे दिये।[2]

इसी अवदान में जब ब्रह्मप्रभ माणवक वन में जीव-कल्याणार्थ तप करता रहता है, एक गुर्विणी व्याघ्री उसकी कुटी के पास शरण लेती है और प्रसवोपरान्त वह अपने दोनों बच्चों को खाना चाहती है, तो ब्रह्मप्रभ स्वशरीरार्पण द्वारा उनकी रक्षा करता है।[3]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०८।

२. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

३. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।

ये त्याग के उदाहरण प्रयोजन निष्ठ न हो कर एक मात्र भूतदयाद्रवीभूत ही दिखलाई पड़ते हैं। इस रहस्य का उद्घाटन इन शब्दों में किया गया है—

"येनाहं सत्येन सत्यवचनेन परित्यजामि, न राज्यार्थं, न भोगार्थं न शक्रार्थं न राजचक्रवर्तिविषयार्थम्, अन्यत्र कथमहमनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुध्य अदान्तान् दमयेयम्, अतीर्णान् तारयेयम्, अमुक्तान् मोचयेयम्, अनाश्वस्तानाश्वासयेयम्, अपरिनिर्वृतान् परिनिर्वापयेयम्" ।[1]

ये परित्याग वास्तविक होते थे। त्याग-कर्ता के मन में, त्याग करते समय या त्याग करने के बाद किसी भी प्रकार का अन्यथाभाव या क्षोभ नहीं उत्पन्न होता था । रूपावती के त्याग के गौरव से आकृष्ट हो शक्र उसके पास त्याग-प्रयोजन की परीक्षा लेने आये । रूपावती कहती है कि मैंने केवल भूतदुःख निवारणार्थ ही अपने उभय स्तनों का परित्याग किया और यदि यह बात सत्य है तो मेरी स्त्रीन्द्रिय का अन्तर्धान होकर पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो जाय । ऐसा कहते ही वह एक पुरुष हो गई और उसका नाम रूपावती से रूपावत कुमार हो गया ।[2]

[ख] चारित्रिक बल

विमाता की आसक्ति पर कुणाल की प्रतिक्रिया उसके चरित्र की निर्मलता, मातृप्रेम सम्बन्धी उच्च-आदर्श एवं सम-दम-संयम के नैतिक पुष्टि की एक प्रशस्त परिचायिका है । इसकी उज्जवल ज्योति से ही तत्कालीन सामाजिक नैतिक जागरण का बोध होता है । प्रणय-तिरस्कृत तिष्यरक्षिता की—

"अभिकामामभिगतां यत्त्वं नेच्छसि मामिह ।
नचिरादेव दुर्बुद्धे सर्वथा न भविष्यसि ॥[3]

इस धमकी को सुनकर भी कुणाल दृढ़ रहता है और कहता है, मेरी मृत्यु भले ही हो जाय किन्तु मैं धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला न होऊँ । सज्जनों द्वारा धिक्कृत जीवन से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं ।

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० २१२ ।
२. वही, पृ० ३०९ ।
३. कुणालावदान, पृ० २६२ ।

मानव में दृश्यमान चर्म-चक्षुओं से सर्वथा पृथक् एक शमस्वरूपात्मक प्रज्ञा-चक्षु भी स्थित होता है। शम स्वरूपात्मक होने के कारण ही दो विभिन्न कार्य साथ ही साथ इसके द्वारा सम्पन्न होते हैं—एक तो अज्ञानान्धकार-शमन और दूसरा तद्ध्वंसोत्थित-कल्याण। इस प्रज्ञा-चक्षु [ज्ञान-दृष्टि] का उन्मीलन होते ही मानव की निबिड अज्ञानान्धकार-पुंज-रूपिणी भ्रामक असद्-दृष्टि का सर्वथा प्रणाश हो जाने से उसके चतुर्दिक एक शम-रूपिणी यथार्थभूता निर्मला ज्योति प्रवाहित होने लगती है।

दोनों चर्म चक्षुओं के उद्धृत हो जाने पर कुणाल का प्रज्ञा-चक्षु खुल जाता है और वह सोचता है कि यद्यपि मेरे नेत्र अपहृत कर लिए गए किन्तु मेरा प्रज्ञा-चक्षु विशुद्ध हो गया है।[1]

[ग] परदारान् न वीक्षेत

पराई स्त्री पर दृष्टिपात न करना, भारतीय-संस्कृति की मर्यादा रही है। राजा बिम्बिसार ज्योतिष्क कुमार के घर भोजन करने के लिए जाते समय बाह्य परिजन को देखकर नेत्रों को बन्द कर लेता है। कारण पूछने पर वह कहता है—

"वधूजनोऽयमिति कृत्वा"।[2]

"रामायण" में भी लक्ष्मण, तारा को देख अपना सिर नीचा कर लेते हैं।[3] पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात न करने का प्रतिपादन विष्णु-सूत्र[4] और अभिज्ञानशाकुन्तल[5] में भी किया गया है।

[घ] मातृदेवो भव

"मैत्रकन्यकावदान" में मानव को तैत्तिरीयोपनिषद् प्रतिपादित मातृ-भक्त

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
३. रामायण, ४, ३३, ३८
४. "परदारान् न वीक्षेत"
५. "अनिर्वर्ण्य खलु परकलत्रम्"

होने का पूत सन्देश[1] दिया गया है। माता की अवज्ञा करने वाले प्राणियों को अनेकविध कष्टों का भोग करना पड़ता है।

माता के निवारण करने पर भी मैत्रकन्यक उसकी बातों की अवहेलना कर समुद्रावतरण करने के लिए तत्पर होता है और माता के बार-बार रोकने पर वह क्रोधित हो, रुदन करती हुई पृथ्वी पर पड़ी माता के सिर पर पादप्रहार कर वणिग्-जनों के साथ जाता है। माता की इस अवज्ञा के कारण ही मैत्रकन्यक यानपात्र के टूट जाने से अनेक विपत्तियों का सामना करता है।[2]

एक पुरुष के सिर पर, आग से जलते हुये लोहे के चक्र को घूमता देख कर मैत्रकन्यक उससे कारण पूछता है। वह इसे माता के शिर पर पाद-प्रहार का परिणाम वतलाता है।[3]

मैत्रकन्यक भी यानपात्र के विदीर्ण हो जाने पर अपनी इन विपत्तियों को मातृतिरस्कार का ही परिणाम समझता है। वह सोचता है कि यह तो उस दारुण पाप का केवल पुष्प-मात्र है। वह अपने व्यवहार पर अति लज्जित होता है और उस त्रपा-भार से पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाना चाहता है।[4]

माता चिर वन्दनीया है। उसकी महिमा सर्वोपरि है। वह प्राणियों के लिए सर्व सुखों का प्रसव करने वाली है। वह परमक्षेत्र है—

"यां लोके प्रवदन्ति साधुमतयः क्षेत्रं परं प्राणिनाम्"।[5]

ऐसी पुण्य-प्रसवा माता का तिरस्कार करने से मानव अनेक कष्टों से अभिभूत हो जाता है। अतः यह उपदेश दिया गया है कि मातृ-शुश्रूषा प्रमुदित मन से निरन्तर करनी चाहिए—

---

१. "तैत्तिरीयोपनिषद्" एकादश अनुवाक्—"मातृदेवो भव"
२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९-५००।
३. वही, पृ० ५०९।
४. वही, पृ० ५०१।
५. वही, पृ० ५०९।

"मातर्यपकारिणः प्राणिन इहैव व्यसनप्रपातपातालावलम्बिनो भवन्तीति सततसमुपजायमानप्रेमप्रसादबहुमानमानसैः सत्पुरुषैर्मातरः शुश्रूषणीयाः" ।[1]

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि माता-पिता बालक के पालन-पोषण एवं संवर्धन करने में अनेक कष्टों का सहन करते हैं। वस्तुतः माता-पिता का इतना अधिक उपकार पुत्र पर रहता है कि जन्म पर्यन्त सेवा करने पर भी वह उन से उऋण नहीं होता।[2]

o

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९३-५१२।

२. पूर्णावदान, पृ० ३१।

परिच्छेद १२

अन्य तत्त्व

[क] प्रेम[1]

प्रणय-सरिता का प्रवाह मार्गाचलव्यतिकराकुलित-सिन्धु से सर्वथा विलक्षण है। उसमें बड़े से बड़ा भी अन्तराय बाधक नहीं हो सकता। यही कारण है कि सुधन कुमार जब कार्वटिक पर विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर लौटता है, तब वहाँ अपनी प्रणय-पात्री मनोहरा किन्नरी को न देख अति व्याकुल हो जाता है और माता-पिता तथा अन्य लोगों के भी यह कहने पर कि "सन्त्यस्मिन्नन्तःपुरे तद्विशिष्टतराः स्त्रियः। किमर्थं शोकः क्रियत इति?"[1]— वह किसी प्रकार शान्त नहीं होता। इतना ही नहीं ऋषि द्वारा मनोहरा-निर्दिष्ट विषम और दुर्गम मार्ग-श्रवण कर वह उसके समीप पहुँचने के लिये तत्पर भी हो जाता है तथा ऋषि के मना करने और यह कहने पर कि तुम एकाकी और असहाय हो, वह कहता है—

> "चन्द्रस्य खे विचरतः क्व सहायभावो दंष्ट्राबलेन बलिनश्च मृगाधिपस्य।
> अग्नेश्च दावदहने क्व सहायभावः अस्मद्विधस्य च सहायबलेन किं स्यात्॥
> किं भो महार्णवजलं न विगाहितव्यं किं सर्पदष्ट इति नैव चिकित्सनीयः।
> वीर्यं भजेत्सुमहदूर्जितसत्त्वदृष्टं यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः॥"[1]

—और यथोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर वह अपने इष्ट स्थल तक पहुँच जाता है।

मानव में, उत्साह एवं दृढ़ निश्चय एक ऐसी स्फूर्ति का संचार कर देता है, जिससे वह चट्टानों को विदीर्ण कर सकता है, नानाविध विकराल जन्तु संवलित दुर्लंघ्य सागर का उल्लंघन कर सकता है, दुर्दमनीयों को सर्वथा

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २९७-२९८।

दम्य बना सकता है, किं बहुना सर्वाशक्य कार्यों का सम्पादन कर सकता है। यहाँ महाकवि कालिदास के "कुमारसम्भव" की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है।[1] अथर्ववेद में भी पुरुषार्थ को सफलता की कुंजी बतलाया गया है।[2]

[ख] काम

"काम का प्रतिसेवन करने वाले व्यक्ति के लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नहीं होता—

"कामान् खलु प्रतिसेवतो न हि किंचित् पापकं कर्माकरणीयमिति वदामि"।[3]

काम-संसक्त चित होने के कारण ही दारक श्रेष्ठि-पुत्र तीन महापातकों का भागी होता है—पितृ-वध, मातृ-वध एवं अर्हत्-वध।[4]

इसी प्रकार शिखण्डी भी विषय-भोगों का सेवन करता हुआ दुष्ट अमात्यों के कहने से पितृ-वध की आज्ञा दे देता है।[5]

इतना ही नहीं काम—विषय-भोग—नमक-मिश्रित खारे जल के तुल्य है। जितना ही इनका सेवन किया जाता है, उतनी ही इन वैषयिक भोगों की तृष्णा में वृद्धि होती है।

"कामाश्च लवणोदक सदृशाः। यथा यथा सेव्यन्ति, तथा तथा तृष्णा वृद्धिमुपयाति"।[6]

वस्तुतः काम-तृष्णा-क्षय का साधन उसका भोग नहीं है, अपितु

---

१. "क ईप्सितार्थ स्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत।"

२. "कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः"—७, ५०, ८।

३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५९।

४. वही, पृ० १५९-१६१।

५. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।

६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १६०।

उसका सर्वथा प्रणाश ही है। यह एक चिरन्तन सत्य है। इसका अपवाद नहीं। इसी तथ्य का उन्मीलन "महाभारत" में भी किया गया है।[1]

[ग] मनोवैज्ञानिक तत्त्व

मानव की मानसिक प्रक्रिया का ज्ञान रखने में लोग विशेष पटु थे। किसी परिस्थिति विशेष में विशिष्ट प्रकृति के व्यक्ति की प्रवृत्ति किन आचरणों में हो सकती है, इस से वे सर्वथा अनभिज्ञ नहीं थे। जब अजातशत्रु अपने धार्मिक पिता बिम्बिसार का वध कर डालता है और स्वयं पट्टवद्ध हो कर राज्य पर प्रतिष्ठित होता है, तथा ज्योतिष्क कुमार घर बांटने की चर्चा करता है, तो वह सोचता है—

"येन पिता धार्मिको धर्मराजः प्रघातितः, स मां मर्षयतीति कुत एतत्" ?[2]

इसी प्रकार मणियों का अपहरण करने के लिए अजातशत्रु के द्वारा धूर्तपुरुषों के भेजे जाने पर ज्योतिष्ककुमार पुनः विचार करता है—

"येन नाम पिता जीवितादू व्यपरोपितः, स मां न प्रघातयिष्यतीति कुत एतत्" ?[3]

और यह सोच कर वह अपना सारा धन दीनों, कृपणों और अनाथों को दान दे कर प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेता है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो बात मना की जाती है, उसे मनुष्य अवश्य करता है। प्रतिषिद्ध विषय के प्रति गमन उस की एक सहज प्रवृत्ति है। यही कारण है कि अप्सराओं के द्वारा निवारित किये जाने पर भी मैत्रकन्यक दक्षिण दिशा की ओर जाता है।[4]

---

१. "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥"

२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७३।

३. वही, पृ० १७४।

४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६।

[घ] वेश्या-वृत्ति

समाज में वेश्या-वृत्ति का भी निदर्शन प्राप्त होता है। वेश्या होने के भाव को प्रकट करने के लिए "वेश्यं वाहयति" प्रयुक्त होता था।[1] मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक महार्घ गणिका का उल्लेख हुआ है, जो उन दिनों वहाँ की सर्व प्रधान वेश्या के रूप में विख्यात थी। वह अपने प्रेम का दान पाँच सौ मुद्राएँ (पुराण) ले कर करती थी।[2]

किन्तु इस के विपरीत लोग इसे पाप-कर्म और असद्धर्म भी समझते थे। प्रेतनगर से लौटने पर कोटिकर्ण वासवग्राम में रहने वाली एक वेश्या को उस पाप-कर्म से निवृत्त होने का, उस की माता द्वारा प्रेषित, सन्देश देता है।[3]

[ङ] दरिद्रता की निन्दा

समाज में दरिद्रता की निन्दा की जाती थी तथा उसे मरण-सम माना गया है। जब राजा कनकवर्ण के पास केवल एक मानिका-भक्त ही अवशेष रह जाता है, उस समय भगवान् प्रत्येकबुद्ध के भोजनार्थ-आगमन प्रकट करने पर राजा अपने को तदर्थ असमर्थ पा कर अति क्षोभ प्रकट करता है और उसी समय राजा के सम्मुख कनकावती राजधानी निवासिनी देवता इस गाथा का उच्चारण करती है—

"किं दुःखं दारिद्र्यं किं दुःखतरं तदेव दारिद्र्यम्।
मरणसमं दारिद्र्यम्॥"[4]

O

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८-२१६।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० १०।
४ कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
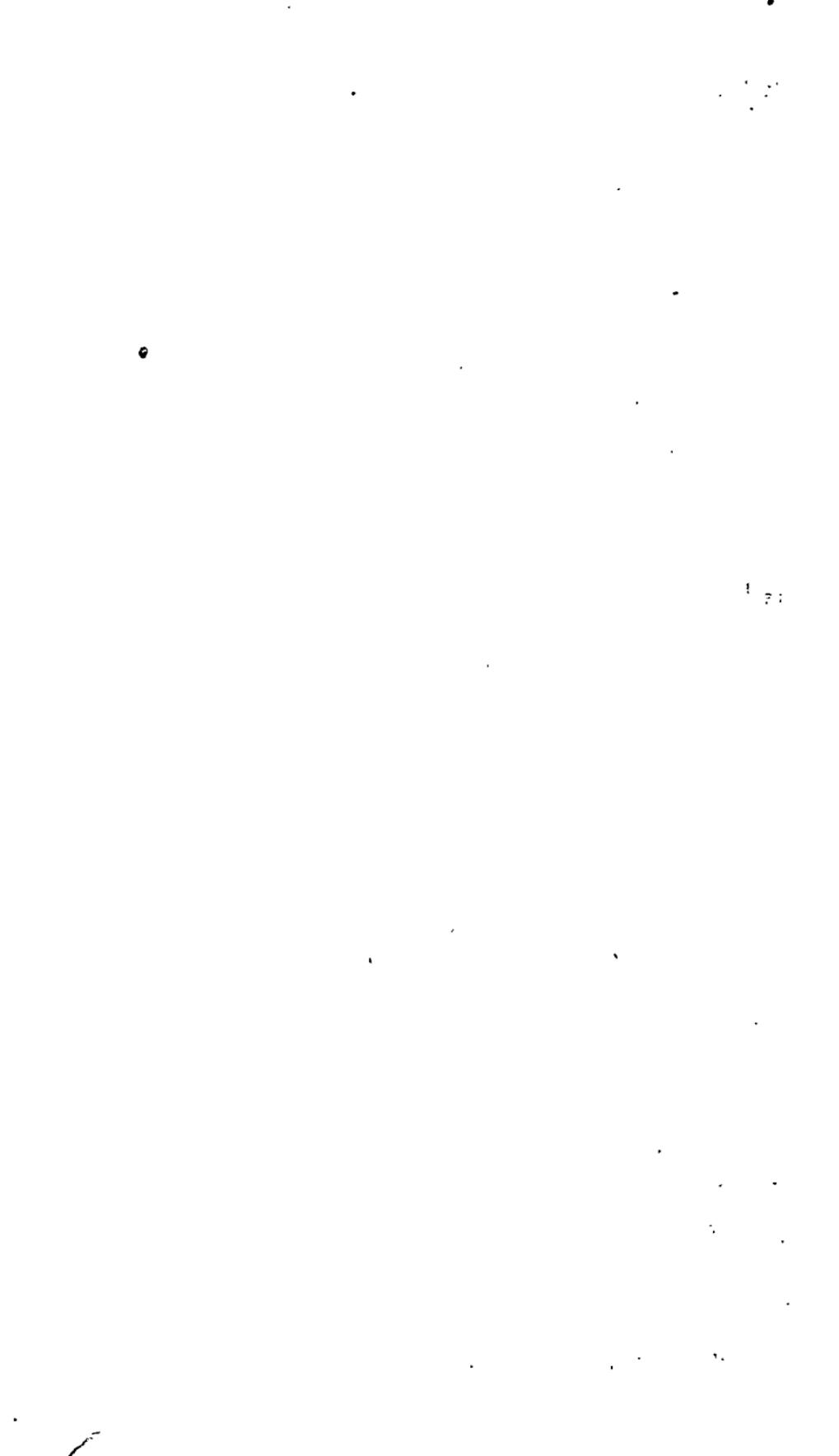
तीसरा अध्याय

आर्थिक जीवन

परिच्छेद १ — कृषि-उद्योग

परिच्छेद २ — पशु-पालन

परिच्छेद ३ — वाणिज्य-व्यापार

परिच्छेद ४ — अन्य-व्यवसाय

परिच्छेद ५ — जीविका के साधन

परिच्छेद ६ — मुद्रा

परिच्छेद १

कृषि-उद्योग

प्राचीन भारत में "वार्ता" शब्द वैश्यों के तीन प्रमुख धन्धों—कृषि, गोचारण और व्यापार—के लिए प्रयुक्त हुआ है। कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा ये तीन प्राचीन काल से ही जीविका के प्रमुख साधन के रूप में उपलब्ध होते हैं। श्रावस्ती और राजगृह के मध्य स्थित अटवी निवासी लुटेरे भगवान् बुद्ध से कहते है—

"नास्माकं कृषिर्न वाणिज्या न गौरक्ष्यम् । अनेनोपक्रमेण जीविकां कल्पयामः ।"[1]

कृषि उद्योग आजीविका का सर्वसामान्य साधन था। अनेक प्राणी कृषि कर्म में ही निरत रहकर, उसी से अपनी जीविका चलाते थे। गृहपति बलसेन नित्य प्रति कृषि-कर्म में संलग्न दिखाई पड़ता है।[2] जम्बुद्वीप निवासी मनुष्यों के द्वारा कृषि-कर्म के किये जाने का उल्लेख है।[3] इस प्रकार कृषि-कर्म में उद्यत मनुष्यों के अनेक अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।[4] खेती के लिए "कर्षणकर्म" प्रचलित था।[5] खेती करने वाले किसानों की संज्ञा "कर्षक" थी।[6] इन्हें "कार्षक" भी कहा गया है।[7] खेत को "क्षेत्र"[8] या "केदार"[9]

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ५६।

२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।

३. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।

४. मान्धातावदान, पृ० १३१। तोयिकामहावदान, पृ० ३०१, ३०२, ३०३।

५. वही, पृ० १३१।

६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२६।

७. तोयिकामहावदान, पृ० ३०२, ३०३।

८. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।

९. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४३।

कहते थे। "हल"[1] और "लाङ्गल"[2] का भी प्रयोग हुआ है। हल चलाते समय बैल को हाँकने के लिए जिस छड़ी का व्यवहार होता था, उसे "प्रतोदयष्टि" कहते थे।[3] खेत के एक किश्त को "हलसीर" या "सीर" कहते थे।[4]

राजा के धार्मिक होने एवं धर्म पूर्वक राज्य का संचालन करने से राज्य धन-धान्य गौ-आदि से पूर्ण होता था। हस्तिनापुर में उत्तरपांचाल महाधन नामक राजा के धार्मिक होने से उस का नगर सुसमृद्ध, सर्वक्षेमयुक्त, तस्कर-दुर्भिक्षादि से रहित और शालि, इक्षु, गौ, महिषी आदि से संपन्न था। उस के राज्य में समय-समय पर यथेष्ट वर्षा होती थी, जिस से प्रभूत शस्य-संपत्ति का प्रादुर्भाव हो गया था।[5]

सारी शस्य-संपत्ति का विनाश करने वाली अनावृष्टि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। राजा कनकवर्ण के राज्य में एक बार बारह वर्षों तक वर्षा न हुई।[6] इसी प्रकार वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य-काल में बारह वर्षों की अनावृष्टि के कारण तीन प्रकार के—चंचु, श्वेतास्थि और शलाकावृत्ति नामक भयंकर दुर्भिक्ष पड़े थे।[7]

उस काल में कृषि के द्वारा कई वस्तुएँ उत्पन्न की जाती थीं जैसे—यव, व्रीहि, तिल, तण्डुल, शालि, श्यामाक, गोधूम, मुद्ग, माषक, मसूर, इक्षु इत्यादि।[8] धान्य दो प्रकार के थे—ग्रैष्म और शारद। सभी शारद धान्य भाद्रपद में, ओर ग्रैष्म धान्य कार्तिक या मार्गशीर्ष में बोये

---

१. तोयिकामहावदान, पृ० ३०१।
२. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४७।, तोयिकामहावदान, पृ० ३०२,३०३।
३. वही, पृ० ४८।, वही, पृ० ३०२।
४. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७७।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८३।
६. कनकवर्णावदान, प० १८१।
७. मेण्ढकावदान, पृ० ८२।
८. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१५।

जाते थे।[1] व्रीहि धान्य बोने का उपयुक्त समय आषाढ़ का शुक्ल-पक्ष बताया गया है।[2]

फल-फूलों के बाग-बगीचों का लगाना एक सहायक उद्योग का कार्य करता है। उद्यानों को ऐसे वृक्षों से युक्त बनाया जाता था, जिनमें सभी ऋतुओं के फल-फूल लगे रहते थे। इस दृष्टि से ऋतुओं के अनुसार तीन प्रकार के उद्यान बनाये जाते थे—हैमन्तिक, ग्रैष्मिक और वार्षिक।[3]

तत्कालीन वृक्षों की तालिका का अध्ययन उस समय के वनस्पति-ज्ञान पर अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय के कुछ वृक्षों की ये श्रेणियाँ दी गई हैं—

[अ] फल्गु-वृक्ष[4]

(१) आम्रातक—आम
(२) जम्बु—जामुन
(३) खर्जूर—खजूर
(४) पनस—कटहल
(५) दाला—वृक्ष-विशेष
(६) वनतिन्दुक—तमालवृक्ष
(७) मृद्वीक—अंगूर
(८) बीजपूरक—एक प्रकार का बड़ा नीबू
(९) कपित्थ—कैथा
(१०) अक्षोट—अखरोट
(११) नारिकेल—नारियल
(१२) तिनिश—एक वृक्ष-विशेष

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१४, ४१५।
२. वही, पृ० ४१५।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५।

(१३) करञ्ज—कंजा वृक्ष, जिसका उपयोग औषध के रूप में किया जाता है।

[आ] स्थलज-वृक्ष[1]

(१) सार - साल-वृक्ष
(२) तमाल—वृक्ष विशेष, जिसकी पत्तियाँ काली-काली होती हैं।
(३) नक्तमाल—वृक्ष-विशेष
(४) कर्णिकार—एक पुष्पवृक्ष
(५) सप्तपर्ण—सप्त-पत्र
(६) शिरीष—सिरस वृक्ष
(७) कोविदार—कचनार
(८) स्यन्दन—वृक्ष-विशेष
(९) चन्दन—चन्दन का वृक्ष
(१०) शिंशप—अशोक
(११) एरण्ड—अरण्ड वृक्ष
(१२ खदिर—खैर का वृक्ष

[इ] क्षीर-वृक्ष[2]

(१) उदुम्बर—गूलर
(२) प्लक्ष—पाकर (पिलखन)
(३) अश्वत्थ—पीपल
(४) न्यग्रोध—वरगद
(५) वल्गुक—वृक्ष-विशेष

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५।
२. वही, पृ० ३२५।

[ई] फलभैषज्य-वृक्ष[1]

(१) आमलकी—आँवला

(२) हरीतकी—हर्रा (हैड़)

(३) विभीतकी—बहेड़ा

(४) फरसक—फ़ालसा

[उ] स्थलज पुष्प-वृक्ष[2]

(१) अतिमुक्तक

(२) चम्पक

(३) पाटल

(४) सुमना

(५) वार्पिका

(६) धनुष्कारिका

[ऊ] जलज पुष्प-वृक्ष[3]

(१) पद्म—कमल

(२) उत्पल—नील-कमल

(३) सौगन्धिक—एक प्रकार का सफेद कमल

(४) मृदुगन्धिक—एक प्रकार का कमल

वनों की उपज से भी आर्थिक लाभ उठाया जाता था। गोशीर्षचन्दन वन से लोग गोशीर्ष चन्दन ले आते थे।[4]

O

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५।

२. वही, पृ० ३२६।

३. वही, पृ० ३२६।

४. पूर्णावदान, पृ० २५।

परिच्छेद २

पशु-पालन

कृषि और पशु-पालन दोनों परस्पर पूरक धंधे हैं। आभीर पशु-पालन करते थे और पशु प्रधान बस्ती 'घोष' कहलाती थी।[1]

पशु-पालन में गो-पालन का महत्त्व अधिक था। इसी कारण पशुओं का पालन करने वाले के लिए "पशुपालक" के साथ ही साथ "गोपालक" शब्द भी प्रचलित था।[2] उस समय गायों की बहुलता थी। राजा चन्द्रप्रभ ने अन्न-पानादि अनेक वस्तुओं के साथ सुवर्ण शृङ्गों वाली गायों का भी दान दिया था।[3]

वैलों के लिए "बलीवर्द" संज्ञा थी। इन का उपयोग हल चलाने में होता था।[4] वैल, गाड़ी भी खींचते थे। "चतुर्गवयुक्तशकट" का उल्लेख प्राप्त होता है।[5]

घोड़े भी रथ खींचते थे। मातंगराज त्रिशंकु और पुष्करसारी ब्राह्मण के सर्वश्वेत "वडवारथ" पर चढ़ कर जाने का उल्लेख है।[6] इन घोड़ों का व्यापार भी खूब होता था। उत्तरापथ से पाँच सौ घोड़ों को ले कर एक सार्थवाह के मध्य देश आने का उदाहरण प्राप्त होता है।[7]

---

१. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४८५
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
४. तोयिकामहावदान, पृ० ३०२।
५. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
७. चूडापक्षावदान, पृ० ४४२।

गधों से भी रथ हँकवाया जाता था। श्रोण कोटिकर्ण गर्दभ-यान पर चढ़ कर जाता है।[1] गधे सामान भी ढोते थे।[2]

व्यापार की वस्तुओं को ढोने के लिए ऊँटों का भी उपयोग किया जाता था।[3]

O

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ४।
२. वही, पृ० ३।
३. वही, पृ० ३।

परिच्छेद ३

वाणिज्य-व्यापार

"दिव्यावदान" से ज्ञात होता है कि इस युग में भारत का व्यापार खूब बढ़ा-चढ़ा था। अन्तर्देशीय[1] तथा विदेशीय[2] दोनों प्रकार के व्यापार सुसमृद्ध थे। श्रावस्ती[3], वाराणसी[4], आदि नगरों में धनाढ्य व्यापारी रहते थे। वाराणसी[5] और मथुरा[6] घोड़ों के व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। इन व्यापारों के लिए दो प्रकार के मार्गों का उपयोग किया जाता था—स्थल-मार्ग[7] और जल-मार्ग[8]।

[क] व्यापार के साधन

स्थल-मार्ग द्वारा व्यापार करते समय व्यापार की वस्तुओं को विभिन्न प्रकार की गाड़ियों तथा ऊँट, बैल, गधे आदि की पीठ पर लादकर ले जाते थे। माल ढोने के काम में आने वाली गाड़ियाँ, "शकट" कहलाती थीं।[9]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।, पूर्णावदान, पृ० १६, २०।, सुप्रियावदान, पृ० ६३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३७।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९।

२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३९, ४४२।

३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, संघरक्षितावदान, पृ० २०४।, पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७।

४. सुप्रियावदान, पृ० ६२।

५. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३।

६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९।

७. वही, पृ० २१९।, चूडापक्षावदान, पृ० ४४२।

८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३९।

९. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।

मनुष्यों को ले जाने वाली सवारियों को "यान" कहते थे। ये कई प्रकार की होती थीं, जैसे—हस्तियान, अश्वयान, गर्दभयान।[1]

वाणिज्य का विस्तार विदेशों तक था, जहाँ व्यापारी जहाजों द्वारा पहुँचते थे। ये समुद्रयात्रा में जाने वाले माल को बैल गाड़ियों, मोटियों, बैलों, खच्चरों आदि पर लादकर बन्दरगाह तक आते थे तथा समुद्रयात्रा से लौटने के पश्चात् भी ये अपने भाण्डों को स्थल-वाहनों पर लादकर ले जाते थे। इन्हें "स्थलज-वहित्र" की संज्ञा दी गई है।[2]

विदेशों की यात्रा बड़े-बड़े जहाजों के द्वारा की जाती थी।[3] देशीय व्यापार करते समय भी मार्ग में पड़ने वाली नदियों को नाव द्वारा पार किया जाता था। "चूडापक्षावदान" में एक कर्पटक (ग्राम) का एक सौकरिक शूकरों का मांस वेचने के लिए उन्हें नाव द्वारा नदी के पार ले जाता है।[4] इस प्रकार लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर नाव द्वारा नदी पार कर पहुँचते थे। कभी-कभी नदी पार उतरने के लिए नावों का पुल (नौसंक्रम) भी होता था। "कुणालावदान" में राजा अशोक के द्वारा मथुरा से लेकर पाटलिपुत्र तक नौसंक्रम स्थापित किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] "मैत्रेयावदान" में भी श्रावस्ती जाने के मार्ग पर वैदेहीपुत्र अजातशत्रु द्वारा एक नाव का पुल (नौसंक्रम) बनवाये जाने की चर्चा है।[6]

मार्ग में पड़ने वाली नदियों को पार करने के लिये इन पर नाव के पुल बनाये जाने का उल्लेख हमें रामायण में भी प्राप्त होता है।[7]

[ए] सार्थ एवं सार्थवाह

व्यापार के लिए वणिकों का समूह मिलकर यात्रा करता था। इन में

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।
२. सुप्रियावदान, पृ० ६३।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।, इत्यादि।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६।
५. कुणालावदान, पृ० २४५।
६. मैत्रेयावदान, पृ० ३४।
७. २।८९।७-११

पाँच-पाँच सौ तक वणिक् साथ चलते थे ।[1] इस प्रकार अपना-अपना सामान लादकर व्यापार्थ साथ चलने वाले पथिकों के समूह को "सार्थ" कहते थे । सार्थ का नेता "सार्थवाह" कहलाता था । इसी की अध्यक्षता में व्यापारी अपनी यात्रा करते थे । अमरकोष के टीकाकार क्षीर स्वामी ने सार्थ एवं सार्थवाह शब्द की व्याख्या क्रमशः "यात्रा करने वाले पान्थों का समूह"[2] और "पूँजी द्वारा व्यापार करने वाले पान्थों का नेता"[3] किया है ।

सार्थ का नेता सार्थवाह ऐसे किसी भी कार्य को करने के लिए स्वतन्त्र नहीं था, जिसका विरोध सार्थ कर रहा हो । 'स्वागतावदान" में अपने साथ आते हुए स्वागत के विषय में सार्थवाह एवं सार्थ के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है कि सार्थवाह सार्थ का स्वामी होता था और वह उस कार्य का सम्पादन नहीं करता था, जिसका अनुमोदन सार्थ ने न किया हो ।[4]

सार्थ की रक्षा का उत्तरदायित्व सार्थवाह पर होता था । पाँच सौ सार्थ के साथ रत्नद्वीप से लौटे हुए सार्थवाह सुप्रिय से मार्ग में एक सहस्र चोर मिले, जिन्होंने कहा "तुम अकेले कुशलपूर्वक जाओ और अवशिष्ट सार्थ का हम लोग धन अपहरण करेंगे ।" परन्तु सार्थवाह इस पर सहमत नहीं होता और कहता है कि " ये सार्थ मेरे आश्रित हैं । अतः तुम लोग ऐसा नहीं कर सकते" ।[5] इस प्रकार वह सार्थवाह सार्थ को छोड़कर नहीं जाता और सार्थ के मूल्य की गणना करके चोरों को देता है तथा सार्थ की रक्षा करता है ।

[ग] सामुद्रिक यात्रा

भारत के व्यापारी महासमुद्र को पार कर दूर-दूर देशों में व्यापार के लिए जाया करते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय जहाज बनाने का व्यवसाय अत्यन्त उन्नत अवस्था में था । इतने विशालकाय जहाजों का निर्माण होता था कि उसमें पाँच-पाँच सौ तक व्यापारी एक साथ चढ़कर

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० २१ ।, संघरक्षितावदान पृ० २०५ । इत्यादि ।
२. अमरकोष, २, ६, ४२ ।
३. अमरकोष, ३, ६, ७८ ।
४. स्वागतावदान, पृ० १०७ ।
५. सुप्रियावदान, पृ० ६३ ।

यात्रा करते थे ।[1] फिर भी ये जहाज अधिक मजबूत नहीं बनते थे, क्योंकि अधिकतर इन जहाजों के समुद्र में टूट जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं । ये समुद्री तूफ़ानों तथा अन्य आघातों के सहन करने में कभी-कभी असमर्थ होते थे ।[2]

एक स्थल पर, यानपात्र (जहाज) के समुद्र-मध्य में वातावात से विदीर्ण हो जाने पर मैत्रकन्यक के महद्वीर्यपराक्रम द्वारा फलक को ग्रहण कर निराहार कई दिनों के अनन्तर किसी प्रकार महार्णव के दक्षिण तट पर पहुँचने का वर्णन है ।[3]

[घ] प्रस्थान-पूर्व-कृत्य

जब कोई धनी व्यापारी समुद्रावतरण के लिये अग्रसर होता है, तो प्रस्थान करने से पूर्व वह नगर में घण्टावघोष करवाता है; जिसके फलस्वरूप अनेक व्यापारी उसके साथ चलने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।[4] समुद्र-यात्रा के लिये चलने से पूर्व सार्थवाह का समुचित प्रकार से मंगल स्वस्त्ययन किया जाता था और इसके बाद वह माता के पास उससे विदा लेने के लिए जाता था ।[5] अपने-अपने माल को बैलों, गाड़ियों आदि पर लाद कर सार्थ बन्दरगाह तक आता था । जहाजों के चलाने वाले को "कर्णधार" कहते थे ।[6] इसकी कार्य कुशलता पर ही यात्राओं की सफलता निर्भर होती थी । इन्हें समुद्री-मछलियों, अनुकूल अथवा प्रतिकूल वायु आदि का ज्ञान होता था ।[7] अनुकूल वायु को देखकर ये पालें (वस्त्र या वस्त्र) खोल देते थे, जिससे

---

१. पूर्णावदान, पृ० २१ ।, सुप्रियावदान, पृ० ६३ ।, संघरक्षितावदान, पृ० २०५ ।

२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६ । मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९५, ५०० ।

३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०१ ।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० २० ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३७ इत्यादि ।

५. कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।

६. धर्मरुच्यावदान, पृ० १४२ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३६ ।

७. वही, पृ० १४३ ।

जहाज अभिलषित स्थल पर शीघ्र ही पहुँच जाते थे।[1] लंगर डालने के बाद जहाज को एक खूँटे (वेत्रपाश) से बाँध दिया जाता था।[2]

[ङ] शुल्क-तर्पण्य

किसी धनी व्यापारी की यह घोषणा कि उसके साथ चलने वाले व्यापारियों को किसी प्रकार का कर—शुल्क, तर्पण्य नहीं देना होगा;[3] इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उन्हें कुछ करों को चुकाना पड़ता था। अधिकतर व्यापारी शुल्क दे देते थे, पर कुछ ऐसे भी थे जो निःशुल्क माल ले जाना चाहते थे। राजगृह और चम्पा के मध्य एक शुल्क-शाला का उल्लेख है। यहाँ का घण्टा चोरी से माल ले जाने पर बजने लगता था।[4] फिर भी चम्पा का एक ब्राह्मण एक यमली (वस्त्रों का जोड़ा) अपने छाते की डण्डी में छिपा कर ले जाना चाहता है। सार्थ के साथ राजगृह जाते हुये जब वह शुल्क-शाला में पहुँचता है, तो शुल्काध्यक्ष सार्थ से माल का शुल्क ग्रहण कर लेता है। किन्तु सार्थ के आगे बढ़ते ही घण्टा बजने लगता है, जिससे शुल्काध्यक्ष को यह ज्ञात हो जाता है कि शुल्क अभी पूर्ण रूप से नहीं दिया गया है। शौल्किक फिर से सार्थ का निरीक्षण करते हैं। पर परिणाम कुछ न निकलने से वे सार्थ को दो वर्गों में विभाजित कर जाने देते हैं। जिस वर्ग के जाने पर पुनः घण्टा बजने लगता है, उसे फिर दो वर्गों में बाँट कर तथा इसी क्रम के द्वारा वे अन्त में ब्राह्मण को पकड़ लेते हैं। फिर भी छिपे माल का पता नहीं लगता। अन्त में, शुल्क न ग्रहण किये जाने का वचन देने पर वह ब्राह्मण डण्डी से यमली निकाल कर दिखला देता है।

वस्तुतः आज के युग में यह उपर्युक्त घटना—घण्टे का अपने आप बजने लगना और चोर को ढूँढ़ निकालना—सत्य नहीं प्रतीत होती, फिर भी उस युग की जैसी घटना का वर्णन यहाँ प्राप्त होता है, उसी का उल्लेख किया गया है।

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. सुप्रियावदान, पृ० ७०।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, पूर्णावदान, पृ० २०। इत्यादि।
४. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।

[च] समुद्र-यात्रा संबन्धी भय

समुद्र-यात्रा में अनेक भय थे। महासमुद्रावतरण करते समय लोगों को अधिकांशतः अपने माता-पिता, पुत्र, कलत्र, अन्य सम्बन्धि-जन एवं देश का परित्याग कर अपने जीवन से सर्वथा हाथ धोना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सामुद्रिक-यात्रा का करना महत् पराक्रम का कार्य था। वहाँ तिमि और तिर्मिगिल नाम के एक विशेष प्रकार के बड़े मगर होते थे और यत्र-तत्र कूर्मों का भी भय होता था। लहरों के ऊँची उठने के कारण किनारे गिर पड़ते हैं (स्थल-उत्सीदन-भय), जल में जहाज कभी-कभी बहुत दूर तक चले जाते हैं (जल-संसीदन-भय) और कभी-कभी जल के भीतर छिपी चट्टानों से टकरा कर विदीर्ण हो जाते हैं (उच्छेदन-भय)। बड़े-बड़े तूफानों (कालिकावात) का भी भय रहता है और साथ ही समुद्री डाकू नीले वस्त्र पहन कर जहाजों को लूटते रहते हैं (चौर-भय)। ऊँची-ऊँची लहरों से भी जहाज डूब जाते थे (आवर्त-भय) तथा कुम्भीर और शिशुमार का भय उन्हें बना रहता था।[1] समुद्र के बड़े-बड़े सर्प भी जहाजों पर आक्रमण करते थे।[2] ताम्रद्वीप निवासिनी राक्षसियां तो व्यापारियों को चट भी कर जाती थीं।[3]

[छ] अन्य असुविधाएं

रत्नद्वीप पहुंच कर कर्णधार वणिकों को सावधान करता हुआ वहाँ की कुछ अन्य असुविधाओं का वर्णन करता है। इस द्वीप में रत्न सदृश काच-मणियाँ प्राप्त होती हैं। अतः तुम लोग यथेष्ट-रूपेण परीक्षित मणियों का ही ग्रहण करो। इस द्वीप में क्रौंचकुमारिका नाम की राक्षसी स्त्रियाँ निवास करती हैं। वे पुरुषों को इतना पीटती हैं कि उनके प्राण-पखेरू वहीं उड़ जाते हैं। साथ ही इस रत्न द्वीप में नशीले फल भी प्राप्त होते हैं, जिसे खाने से सात दिनों तक मनुष्य सोता ही रहता है। इस द्वीप में ऐसे मानवेतर प्राणी निवास करते हैं, जो सात दिनों तक मनुष्यों को छोड़

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४८। पूर्णावदान, पृ० ४३८।
२. संघरक्षितावदान, पृ० २०५।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।

देते हैं, परन्तु सात दिनों के बाद वे ऐसी वायु छोड़ते हैं, जो जहाज को अपने मार्ग से हटा देती है।[1]

[ज] परिवार के सदस्यों की भय-जन्य विकलता

समुद्रावतरण के इन भयों को देखते हुये हम सामुद्रिक व्यापारियों के परिवार के सदस्यों की मनःस्थिति की कल्पना कर सकते हैं। सामुद्रिक कष्ट-स्मरण मात्र से ही सहज भीरु-प्रकृति नारी का कोमल और भावुक अन्तस्तल विक्षुब्ध हो उठता है; जिससे वह अपने पति या पुत्र की इस यात्रा का प्रतिषेध करती है। "चूडापक्षावदान" में पुत्र के यह पूछने पर कि "मेरे पिता ओर पितामह कौन सा कर्म करते थे?"—महासमुद्रावतरण-भय-त्रस्ता उसकी माँ सोचती है "यदि इस से यह कहूँ कि समुद्र द्वारा व्यापार करते थे, तो संभव है कि यह भी समुद्रावतरण करे और वहीं मृत्यु का भागी हो जाय"।[2] इसी प्रकार मैत्रकन्यक को समुद्रावतरण के लिये तत्पर सुन कर, अपने पति की समुद्र में मृत्यु हो जाने से पति-वियोग-संत्रस्ता उसकी माँ अपने उस अकेले पुत्र को इस महात्रास-जनक निश्चय से हटाने के लिये करुण क्रन्दन करती हुई, उसे समझाती है।[3]

समुद्रावतरण के लिये उद्यत श्रोण कोटिकर्ण मंगल स्वस्त्ययन किए जाने के पश्चात् माता के दर्शनार्थ जाता है। उसे जाने के लिए तत्पर देख माँ के नेत्रों से अश्रु-जल प्रवाहित होने लगता है। कोटिकर्ण द्वारा रोदन का कारण पूछे जाने पर वह कहती है, "कदाचित् मैं पुनः पुत्र को जीवित देख सकूँगी"।[4]

सामुद्रिक यात्रा के इतनी भयावह होने के कारण ही पूर्ण, प्रव्रजित होने से पूर्व अपने भाई भविल को समुद्रावतरण के लिये मना करता है।[5]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. वही, पृ० ४३६।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६६।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।
५. पूर्णावदान, पृ० २१।

[झ] व्यापारियों की दृढ़ता

उपर्युक्त इतनी असुविधाओं के होने पर भी अपने लक्ष्य के प्रति सुदृढ़ व्यापारी कभी विचलित नहीं होते थे।[1] वे पाँच-पाँच सौ के समूह में मिल कर एक साथ यात्रा करते थे। निश्चय ही ये व्यापारी अत्यन्त वीर, सहिष्णु एवं कर्मठ होते थे। कुछ ऐसे भी साहसिक यात्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्होंने अनेक बार समुद्र यात्राएँ कीं। पूर्ण ने सात बार सकुशल समुद्र-यात्रा की।[2] सार्थवाह सुप्रिय भी सात बार समुद्र-यात्रा करता है।[3] मृपिका हैरण्यिक के भी सात बार समुद्र-यात्रा करने की चर्चा है।[4] दृढ़ प्रतिज्ञ सार्थवाह सुप्रिय का देवता-निर्दिष्ट बदर द्वीप के कष्ट-साध्य दुर्गम मार्ग का श्रवण कर के भी महद् धैर्य, पराक्रम एवं अदम्य उत्साह के साथ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए बदर द्वीप की यात्रा करना अवितथरूपेण भारतीय व्यापारियों की वज्रमयी दृढ़ता का परिचायक है।[5]

[ञ] सपत्नीक सामुद्रिक यात्रा

समुद्र-यात्रा की नानाविध असुविधाओं को ध्यान में रख कर ही अधिकतर व्यापारी अपनी स्त्रियों को साथ नहीं ले जाते थे। परन्तु कभी-कभी वे अपनी स्त्रियों के साथ भी यात्रा करते थे। 'पांशुप्रदानावदान' में एक स्थल पर कहा गया है कि श्रावस्ती का एक सार्थवाह अपनी पत्नी के साथ महासमुद्रावतरण करता है। उसकी पत्नी समुद्र में ही एक पुत्र को जन्म देती है और समुद्र में उत्पन्न होने के कारण उसका नाम समुद्र रख दिया जाता है। वह सार्थवाह बारह वर्ष के बाद महासमुद्र से लौटता है।[6]

[ट] व्यापार की वस्तुएँ

इन जल और स्थल मार्गों से किन-किन वस्तुओं का व्यापार किया जाता

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२। चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. पूर्णावदान, पृ० २१।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६४।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
५. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७।

था ? प्रायः यह प्रश्न संदिग्ध ही रह जाता है। क्योंकि अधिकांशतः हमें केवल इतना ही लिखा मिलता है कि व्यापारियों ने नाना-विध वाहनों को बहुमूल्य भाण्डों (व्यापारी पदार्थों) से भरा और व्यापार के लिए चल पड़े।[१] इनमें कौन-कौन से बहुमूल्य पदार्थ होते थे ? यह अधिकतर विवादग्रस्त ही रह जाता है। परन्तु कतिपय स्थलों से व्यापार की वस्तुओं का अंशतः ज्ञान प्राप्त होता है।

महासमुद्र में अनेक प्रकार के रत्न होते थे। इन रत्नों की सूची इस प्रकार दी गई है[२]—

(१) मणि
(२) मुक्ता
(३) वैडूर्य
(४) शंख
(५) प्रवाल
(६) रजत
(७) जातरूप
(८) अश्मगर्भ
(९) मुसारगल्व
(१०) लोहितिक
(११) दक्षिणावर्त

समुद्रावतरण कर व्यापारी गोशीर्षचन्दन के वन में भी जाते थे और वहाँ से प्रचुर मात्रा में गोशीर्षचन्दन अपने साथ ले आते थे।[३]

[ठ] क्रय-नियम

वणिकों की श्रेणी सामूहिक रूप से सौदा खरीदती थी। श्रेणियाँ अपने नियम बना सकती थीं, परन्तु नियम की स्वीकृति के लिए यह आवश्यक था कि वह सर्व सम्मत हो। "पूर्णावदान" में वणिक्-समूह एकत्र हो कर यह नियम बनाते हैं कि हम लोगों में से कोई एक सदस्य माल खरीदने का

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६३। संघरक्षितावदान, पृ० २०५।, इत्यादि
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२। चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
३. पूर्णावदान, पृ० २५-२६।

अधिकारी नहीं हो सकता, अपितु गण (श्रेणी) ही मिल कर उस माल को खरीद सकता है।[1]

महासमुद्र से लौटे हुए पाँच सौ व्यापारियों के सूर्पारक नगर में आने का समाचार सुन कर पूर्ण उनके पास जाता है। उनसे उनके माल (द्रव्य) और मूल्य के विषय में पूछता है। वह उन्हें द्रव्य का मूल्य १८ लाख सुवर्ण के बयाने (अवद्रङ्ग) में ३ लाख सुवर्ण दे कर, यह शर्त कर लेता है कि शेष मूल्य वह माल ले जाने पर दे देगा। इस प्रकार सौदा तै हो जाने पर पूर्ण, माल पर अपनी मुहर लगा कर (स्वमुद्रालक्षितम्) चला जाता है। यह समाचार ज्ञात होने पर वह श्रेणी पूर्ण को बुला कर उसे श्रेणी द्वारा किये गए नियम को बतलाती है। परन्तु पूर्ण इस नियम को नहीं मानता क्योंकि इस नियम को बनाते समय वह अथवा उसके भाई नहीं बुलाए गए थे। इस पर क्रुद्ध होकर वणिग्-ग्राम उस पर ६० कार्षापण का दण्ड निर्धारित करता है। अन्त में, राजा के पास यह बात पहुँचने पर पूर्ण की ही विजय होती है।[2]

O

---

१. पूर्णावदान, पृ० १६।
२. वही, पृ० १६-२०।

परिच्छेद ४

अन्य व्यवसाय

वस्त्र-उद्योग काफी प्रगति कर चुका था। कपास से स्वच्छ सूत्र काता जाता था।[1] कई प्रकार के तन्तुओं से वस्त्र बनाये जाते थे। ऊनी कपड़े भी अधिक मात्रा में बनाये जाते थे। तत्कालीन कुछ प्रमुख वस्त्रों के नाम ये हैं—कौशेय[2], क्षौम[3], काशिक[4], सणशाटिका[5], कर्पास[6], ऊर्णादुकूल[7], कम्बल[8] इत्यादि।

कपड़े रंगे भी जाते थे। शुक्ल[9] या अवदात[10] वस्त्रों के अतिरिक्त नीले[11], पीले[12], लाल[13] और काषाय[14] वस्त्रों का भी उल्लेख हुआ है।

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०–१७१।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
३. वही, पृ० १९६।, वही, पृ० ४७४।
४. पूर्णावदान, पृ० १७।, चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
५. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
७. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९६।
८. वही, पृ० १९६।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
१०. पूर्णावदान, पृ० १७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।; चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
१२. पूर्णावदान, पृ० १७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
१३. वही, पृ० १७।, वही, पृ० १६३।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।

"कुणालावदान" में एक स्थान पर वस्त्र रंगने के लिए कटाहक (वस्त्र रंगने का पात्र) और रंग का उदाहरण प्राप्त होता है।[1] प्रकृति भिक्षुणी के द्वारा उस आसन पर बैठे ही बैठे, चार आर्य सत्यों के हृदयंगम करने की उपमा, ऐसे मल-रहित वस्त्र से दी गई है, जो रंगीन जल (रङ्गोदक) में डालते ही तत्काल रंग ग्रहण कर लेता है।[2]

उस काल में अधिक कीमती कपड़े भी होते थे, जिन्हें "महार्ह" कहते थे।[3] राजाओं के यहाँ रत्न-सुवर्ण जटित कपड़े होते थे।[4]

राजाओं के यहाँ सौ शलाकाओं वाले छत्रों (शतशलाकं छत्रम्) और सौवर्ण मणि व्यजनों का अस्तित्व तत्कालीन सिलाई के प्रचार का सूचक है।[5]

इस के अतिरिक्त कई अन्य उपयोगी उद्योग धन्धे प्रचलित थे। अनेक मंजिल वाले भवनों, प्रासादों एवं स्तूपों का निर्माण कुशल शिल्पियों का अस्तित्व प्रकट करता है।[6] चित्रकार प्रतिमाओं का चित्रण करता था।[7] कुंभकार मिट्टी के बर्तनों का निर्माण करते थे।[8]

दूकानें "आपण"[9] या "आवारी"[10] के नाम से संबोधित की जाती थीं। ये दूकानें कई तरह की होती थी। तैल आदि सुगन्धित पदार्थों वाली दूकानें "गान्धिकापण"[11], पाव रोटी बिस्कुट आदि की दूकाने "औदनिका-

---

१. कुणालावदान, पृ० २६० ।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७ ।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५ ।
४. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९६ ।
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७ ।, चूडापक्षावदान, पृ० [illegible] ।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, ज्योतिष्कावदान, पृ० [illegible] । रुद्रायणवदान, पृ० [illegible]
७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६ ।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।
९. मैत्रकन्यकावदान, पृ० [illegible] ।, धर्मरुच्यवदान, पृ० [illegible]
१०. पूर्णावदान, पृ० १९, [illegible] ।
११. पांशुप्रदाना०, पृ० [illegible] ।

(ओत्करिका, उक्करिका-) पण"[१] सोने-चाँदी आदि अलंकारों की दूकानें "हैरण्यिकापण"[२], शक्कर की दूकान "शर्करावारी"[३], फुट्टकवस्त्र की दूकान "फुट्टकवस्त्रावारी"[४] तथा काशिक वस्त्रों की दूकान "काशिकवस्त्रावारी"[५] कहलाती थी।

अनेक खनिज-पदार्थों की ओर भी संकेत है—

(१) अयस्[६]—फौलाद

(२) लोह[७]—लोहा

(३) कांस्य या कंस[८]—कांसा

(४) रजत,[९] रूप्य[१०]—चाँदी

(५) सुवर्ण,[११] कनक,[१२] जांबूनद,[१३] हेम,[१४] हिरण्य,[१५] शतपल[१६]—सोना

(६) ताम्र[१७]—ताँबा

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९६।
२. वही, पृ० ४९६।
३. पूर्णावदान, पृ० १८।
४. वही, पृ० १८।
५. वही, पृ० १८।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ४।
७. वही, पृ० ४।, अशोकावदान, पृ० २८०।
८. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
९. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
१०. अशोकावदान, पृ० २८०।
११. वही, पृ० २८०।
१२. वीतशोकावदान, पृ० २७३।
१३. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४९-५०। तोयिकामहावदान, पृ० ३०४-३०५।
१४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१५. वही, पृ० ५०६।
१६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
१७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।

(७) त्रपु[1]—टीन, रांगा

(८) अभ्र[2]—अबरक

सोने और चांदी का प्रयोग पात्र[3] और आभूषण[4] के लिए होता था। सोने को तपाकर उसे स्वच्छ किया जाता था। शरीर के आदर्श वर्ण का वर्णन तपाये सोने से किया गया है।[5]

O

१. पूर्णावदान, पृ० १६ ।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १८० ।
३. [illegible]ावदान, पृ० २८० ।
४. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९८ ।
५. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४ ।

परिच्छेद ५

जीविका के साधन

"दिव्यावदान" में ऐसे विभिन्न श्रमिकों का उल्लेख है, जो नाना-विध उपायों से अपनी जीविका का निर्वाह करते थे।

(१) कर्षक—खेती करने वाले किसानों को कर्षक की संज्ञा दी गई।[1] ये कृषि-कर्म में ही निरत रहकर, उसी से अपनी जीविका चलाते थे। गृहपति बलसेन नित्य प्रति कृषि-कर्म में ही संग्लन दिखाई पड़ता है।[2] "मैत्रेयावदान" में भी जम्बुद्वीप निवासी-मनुष्यों के द्वारा कृषि-कर्म किये जाने का उल्लेख है।[3]

(२) कुम्भकार—ये मिट्टी के घड़े आदि बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।[4]

(३) कुविन्द—इनका कार्य अनेक प्रकार के वस्त्रों को बुनकर निर्माण करना था। "ज्योतिष्कावदान" में एक कुविन्द के द्वारा सहस्र कार्षापण मूल्य वाली यमली के निर्माण किए जाने का उल्लेख है।[5]

(४) कर्णधार—ये नाव खेने वाले मल्लाह होते थे[6], जो सामुद्रिक अथवा नदियों द्वारा व्यापार करने वालों को उनके गन्तव्य स्थल पर पहुँचा कर उनसे तर्यण्य ग्रहण करते थे।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२६।

२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।

३. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।

४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४, ४४२।

५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।

६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।

(५) वणिक्—वाणिज्य द्वारा अपनी जीविका-यापन करने वालों को वणिक् कहा गया है।[1]

(६) गणिका—मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक गणिका का उल्लेख है, जिसका शुल्क (फीस) ५०० पुराण था[2]।

(७) चोर—श्रावस्ती और राजगृह के मध्यस्थित महाटवी में निवास करने वाले एक सहस्र चोरों का उल्लेख है, जिनके पास कृषि, वाणिज्य या जीविका के अन्य साधन न होने के कारण वे मार्ग मे जानेवाले पथिकों का धन लूट कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे।[3]

(८) पशुपालक और गोपालक[4]—कुछ लोग पशुपालन भी करते थे। इन पशुओं में गाय का प्रमुख स्थान ज्ञात होता है।

(९) नैमित्तिक और लक्षणज्ञ—शुभाशुभ निमित्तों और लक्षणों को जानने वाले भी थे।[5]

(१०) भूततन्त्रविद्—भूत-प्रेत-ग्रह आदि के आवेशों को जानने वालों का स्थान था।[6] लोग किसी अनिष्ट के उपस्थित होने पर इन्हें भी बुलाते थे।

(११) वैद्य—ये रोगों की चिकित्सा करते थे।[7]

(१२) वृद्ध-युवति (दाई)—इनका कार्य प्रसव-काल उपस्थित होने पर बच्चे को सुव्यवस्थित ढंग से उत्पन्न कराना होता था। बच्चे के जीवित रहने के लिए ये कुछ उपायों का भी निर्देश करती थीं।[8]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२९।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१६।
३. सुप्रियावदान, पृ० ५९।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४८५।
५. कुणालावदान, पृ० २६३।
६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४५।
७. पूर्णावदान, पृ० १५।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४२९।

(१३) धात्री—धात्रियों का कार्य सम्यक् रूपेण लालन-पालन करना था।[1]

(१४) भृतक[2]—ये मजदूरी करके अपनी जीविका चलाते थे।

(१५) अयस्कार—ये ऐसी सुइयों (सूचियों) का निर्माण करते थे, जो जल में तैरती थीं।[3]

(१६) चित्रकार—वस्त्रों पर भी ये प्रतिमाओं का चित्रण करते थे।[4]

(१७) अहितुण्डिक—जो सर्पों के द्वारा अपनी जीविका-यापन करते थे।[5]

(१८) लुब्धक—लुब्धक मछलियों[6] तथा मृगों[7] का शिकार कर अपना पेट पालते थे।

(१९) गोघातक—ये वृषभ के माँस द्वारा अपने परिवार का पोषण करते थे।[8]

(२०) सौकरिक—शूकरों के माँस-विक्रय द्वारा जीविका चलाने वालों को सौकरिक कहते थे।[9]

(२१) औरभ्रक—उरभ्रों को मार कर उनके माँस-विक्रय से जीविका चलाने वाले भी थे।[10]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
३. माकन्दिकावदान पृ० ४५०।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४, चूडापक्षावदान, पृ० ४३५। स्वागतावदान, पृ० ११६।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४।
७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
८. अशोकवर्णावदान, पृ० ८५।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३९।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।

(२२) गान्धिक—तेल आदि सुगन्धित पदार्थों को बेचने वाला।[1]

(२३) शस्त्रोपजीवी—शस्त्रों से आजीविका चलाने वाला।[2]

(२४) नापिनी—स्त्रियाँ भी केश श्मश्रु च्छेदन करती थीं।[3]

(२५) मालाकार—माली।[4]

(२६) शाकुनिक—शिकारी या बहेलिया।[5]

(२७) तंत्रवाय—बुनकर।[6]

(२८) स्थपति—शिल्पी।[7]

(२९) गणक—ज्योतिषी।[8]

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२३।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५३।
५. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।
७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७८।
८. कनकवर्णावदान पृ० १८१।

परिच्छेद ६

मुद्रा

पारिश्रमिक देने या अन्य व्यापार-क्रियाओं में मुद्राओं (सिक्कों) का प्रचलन था। सब से अधिक कार्षापण का उल्लेख हुआ है। मजदूरी कार्षापणों में दी जाती थी[१] या ऐसे भी मजदूर थे, जिन्हें कृषि-कर्म के लिए भक्त (भोजन) पर रखा खाता था।[२] उस समय गोशीर्ष चन्दन का मूल्य बहुत अधिक था। "पूर्णावदान" में पूर्ण नामक व्यक्ति गोशीर्षचन्दन का चूर्ण एक सहस्र कार्षापण में बेचता है।[३]

कार्षापण के बाद "दीनार" भी अधिक प्रचलित था। एक बार राजा अशोक यह घोषणा करते हैं कि जो मुझे निर्ग्रन्थक का शिर ला कर देगा, उसे मैं, "दीनार" दूँगा।[४] इसी प्रकार पुष्यमित्र ने एक बार श्रमण का शिर ले आने वाले को सौ "दीनार" देने की घोषणा की थी।[५]

"पुराण" नामक मुद्रा का भी उदाहरण प्राप्त होता है। मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक महार्घ गणिका की फ़ीस पाँच सौ "पुराण" थी।[६]

---

१. पूर्णावदान, पृ० २६।

२. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।

३. पूर्णावदान, पृ० १६।

४. वीतशोकावदान, पृ० २७७।

५. अशोकावदान, पृ० २८२।

६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१६।

इनके अतिरिक्त "निष्क"[1], "सुवर्ण"[2] और "माषक"[3] सिक्कों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

तत्कालीन प्रचलित मुद्राओं की तालिका—

(१) कार्षापण।
(२) माषक
(३) पुराण
(४) सुवर्ण
(५) दीनार
(६) निष्क

[१] कार्षापण

कार्षापण के विषय में यह उल्लेख मिलता है कि एक शिल्पी को ५०० कार्षापण प्रतिदिन देने की चर्चा हुई है।[4] एक दूसरे स्थल पर पूर्ण ५०० कार्षापण से गोशीर्षचन्दन के एक लट्ठे को खरीदता है।[5] इसी प्रकार जब भविल-पत्नी अपने बालकों के लिए कुछ खाद्य-पदार्थ ले आने के लिए कहती है तो पूर्ण उस से कार्षापण देने के लिए कहता है।[6] इन उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि कार्षापण दैनिक व्यवहार का कोई छोटा सिक्का था। इसके लिए "पूर्णावदान" मे "आरकूटाकार्षापणान्" यह प्रयोग भी प्राप्त होता है।[7] इससे कार्षापण किस धातु का सिक्का था, इस पर प्रकाश पड़ता है। मनुस्मृति के अनुशीलन से विदित होता है कि कार्षापण तांबे का सिक्का होता था।[8] अन्य पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों से भी इसी बात की पुष्टि होती है।[9]

---

१. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
२. पूर्णावदान, पृ० १६-२०। माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
३. वही, पृ० १८।
४. पूर्णावदान, पृ० २६।
५. वही, पृ० १६।
६. वही, पृ० १८।
७. वही, पृ० १८।
८. मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक १३६।
९. पुरातत्त्व निबन्धावली — राहुल सांकृत्यायन, पृ० २१६।

कहीं-कहीं चाँदी के कार्षापण का भी उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु इस अवदान में आरकूट शब्द का प्रयोग होने से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय पीतल (आरकूट) के कार्षापण का प्रचलन था, क्योंकि सभी प्रामाणिक कोशों में आरकूट शब्द का अर्थ पीतल ही किया गया है।[2]

[२] माषक

यह कार्षापण की अपेक्षा छोटा सिक्का रहा होगा[3], क्योंकि जब पूर्ण भाविल-पत्नी से कार्षापण माँगता है तो वह पहले उसे कार्षापण देने में आना-कानी करती है और बाद में एक माषक उसे देती है।[4] इसके लिए भी "आरकूटमाषक" शब्द का प्रयोग होने से यह भी पीतल का ही सिक्का प्रती होता है।

[३] पुराण

पुराण अवश्य ही कार्षापण की अपेक्षा बड़ा सिक्का रहा होगा। जैसा कि इस सन्दर्भ से प्रतीत होता है—मथुरा की वासवदत्ता नाम की महार्घ गणिका की फीस ५०० पुराण थी। वह उपगुप्त पर आसक्त हो गई और उसे बुलाने के लिए अपनी दासी को भेजा। जब वह नहीं आया तो वासवदत्ता ने सोचा कि वह वस्तुतः ५०० पुराण न दे सकने के कारण नहीं आ रहा है। अतः पुनः अपनी दूती को सन्देश देकर प्रेषित किया कि मुझे आपसे कार्षापण की भी अपेक्षा नहीं।[5]

यह सिक्का किस धातु का था, यह दिव्यावदान से ज्ञात नहीं होता। किन्तु मनुस्मृति से विदित होता है कि यह चाँदी का सिक्का होता था।[6]

---

१. पुरातत्त्व निबन्धावली, पृ० २५५।
२. A Sanskrit English Dictionary Sir M. Williams (page, 149), The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S Apte, page, 85), हलायुध कोश—सं० जय शंकर जोशी, पृ० १५३
३. पूर्णावदान, पृ० १८। और इसकी तुलना कीजिए—पुरातत्व निबन्धावली राहुल सांकृत्यायन, पृ० २५३।
४. पूर्णावदान, पृ० १८।
५. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८-२१९।
६. मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक १३६।

मोनिअर विलियम ने भी अपने कोश में इसे चाँदी का सिक्का माना है।[1] इसी प्रकार आप्टे ने भी इसे चाँदी का ही सिक्का कहा है जो ८० कौड़ी के बराबर होता था।[2]

[४] सुवर्ण

"पूर्णावदान" में "सुवर्णलक्षाः" शब्द का प्रयोग किया गया है[3] तथा "माकन्दिकावदान" में "सुवर्णलक्ष" तथा "सुवर्णस्य लक्षं" शब्दों का प्रयोग किया गया है।[4] इससे यह प्रतीत होता है कि सुवर्ण नामक मुद्रा का उस समय प्रचलन था। किन्तु इसका आपेक्षिक मूल्य क्या रहा होगा यह अवदान के सन्दर्भों से ज्ञात नहीं होता। मनुस्मृति के अनुशीलन से यह विदित होता है कि १६ माशे का परिमाण सुवर्ण कहलाता था। इस परिमाण वाला सिक्का भी सुवर्ण कहलाता था।[5] मनुस्मृति की कल्लूक की टीका में कहा है कि परिमाणवाची सुवर्ण शब्द पुंलिग है।[6] इससे ध्वनित होता है कि मुद्रा-वाचक सुवर्ण शब्द नपुंसक लिंग रहा होगा, किन्तु मृच्छकटिक के प्रयोग से यह विदित है कि मुद्रावाची सुवर्ण शब्द पुंलिग में भी प्रयुक्त होता था।[7]

'सुवर्ण' संज्ञा से ही प्रकट होता है कि यह सुवर्ण का सिक्का रहा होगा। वी० एस० आप्टे और मोनिअर विलियम ने इसे स्वर्ण का सिक्का कहा है।[8]

---

१. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams (page, 635)
२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte (page, 342)
३. पूर्णावदान, पृ० १६-२० ।
४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६ ।
५. मनुस्मृति। अध्याय ८, श्लोक १३४ ।
६. वही, अध्याय ८, श्लोक १३४ की कुल्लूक टीका।
७. "नन्वहं दशसुवर्णान् प्रयच्छामि", मृच्छकटिक २-३ ।
८. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte, (page, 609), A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams (page, 1236)

[५] दीनार

अवदान के ऊपर निर्दिष्ट सन्दर्भों में "दीनारः" तथा "दीनारशतं" शब्दों का प्रयोग किया गया है।[१] किन्तु दीनार किस धातु का और किस मूल्य का सिक्का था यह इन सन्दर्भों से ज्ञात नहीं होता। वी० एस० आप्टे[२] और मोनिअर विलियम के अनुसार यह एक विशेष प्रकार का सोने का सिक्का था। मोनिअर विलियम के अनुसार इसका मूल्य समय-समय पर बदलता रहा।[३]

[६] निष्क

"इन्द्रनामब्राह्मणावदान" और "तोयिकामहावदान" में "शतंसहस्राणि सुवर्णनिष्का" इस वाक्यांश का कई बार प्रयोग हुआ है[४], जिससे यह विदित होता है कि निष्क सोने का सिक्का रहा होगा। इसके परिमाण तथा मूल्य के विषय मे अवदान से कुछ ज्ञात नहीं होता। विविध ग्रन्थों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि निष्क का परिमाण तथा मूल्य समय-समय पर बदलता रहा होगा। मनुस्मृति के अनुसार निष्क का परिमाण चार सुवर्ण के बराबर था।[५] हलायुध कोश के अनुसार निष्क ४ सुवर्ण मुद्रा के बराबर था।[६] अमरकोश के अनुसार निष्क १०८ सुवर्ण के बराबर था।[७] अमरकोश के

---

१. वीतशोकावदान, पृ० २७७।, अशोकावदान, पृ० २८२।

२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte, (page, 252)

३. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams, (page, 481)

४. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४६।, तोयिकामहावदान, पृ० ३०४-३०५।

५. मनुस्मृति। अध्याय ८, श्लोक १३७।

६. हलायुधकोश—संपादक जयशंकर जोशी, पृ० ३१८।

७. अमरकोश, तृतीयकाण्ड, नानार्थवर्ग।

अनुसार निष्क और दीनार समानार्थक हैं।[1] वी० एस० आप्टे[2] और मोनिअर विलियम[3] के अनुसार भी यही प्रकट होता है कि निष्क एक सोने का सिक्का था, जिसका परिमाण तथा मूल्य समय-समय पर बदलता रहा।

o

१. अमरकोश, तृतीयकाण्ड, नानार्थवर्ग।

२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte (page, 298)

३. A Sanskrit English Dictionary— Sir M. Williams (page 562)

चौथा अध्याय

राजनीति

परिच्छेद १ राजा

परिच्छेद २ मंत्री

परिच्छेद ३ न्याय-तंत्र

परिच्छेद ४ युद्ध

परिच्छेद ५ दंड-व्यवस्था

परिच्छेद ६ कर

परिच्छेद ७ अधिकारी एवं सेवक-गण

परिच्छेद १

राजा

[क] धार्मिक और अधार्मिक राजा

> राजैवकर्ता भूतानां राजैव च विनाशकः ।
> धर्मात्मा यः स कर्ता स्यादधर्मात्मा विनाशकः ।[1]

श्वेतकेतु के इस कथनानुसार धार्मिक राजा ही प्रजा का रक्षक होता है । अपने धर्मानुष्ठानों के फलस्वरूप ही वह जन-मानस के मध्य एक [illegible] व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होता है । जहाँ कहीं भी प्रजा का [illegible] स्नेह एवं समादृत दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है, वह उसकी धार्मिक [illegible] त्यागमय जीवन, तपस्वी एवं सत्पथानुयायी होने के कारण ही है । राजा के लिए शील ही परम धर्म है । अस्तु, एक मात्र शील-सम्पन्न राजा ही [illegible] का हितचिन्तक एवं विश्वासार्ह होता ।

भद्रशिला नामक राजधानी में चन्द्रप्रभ नाम का एक धार्मिक राजा [illegible] करता था । वह सर्वपरित्यागी था । उसने इतना दान दिया कि समस्त [illegible] वासी महाधनी हो गए । हस्ति, अश्व, रथ और छत्र का इतना अधिक दान [illegible] कि जम्बुद्वीप के प्रत्येक मनुष्य हाथी, घोड़ो और रथो पर चलने लगे, [illegible] समस्त जम्बुद्वीप निवासियों को नानाविध आभूषण और मौलि-मुकुट प्रदान किये, जिससे सभी मौलिधर और पट्टधर हो गए । उसने समस्त [illegible] मनुष्यों को यह अनुमति दे दी कि यावज्जीवनपर्यन्त मैं जीवित हूँ तब तक सभी राजक्रीड़ा करें । उसके त्याग की चरमावस्था [illegible] रौद्राक्ष ब्राह्मण के द्वारा अपने सिर की याचना किए [illegible] शिरोच्छेदन की अनुमति प्रदान कर देता है ।[2]

---

१. महाभारत-शान्ति पर्व, अध्याय [illegible], श्लोक [illegible] ।

२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान पृ० [illegible] ।

ऐसे मैत्रात्मक, कारुणिक, सत्त्ववत्सल, निरुपमगुणाधार एवं सर्वजनमनोरथ-परिपूरक राजा के प्रति समस्त जनता ही अत्यधिक अनुरक्त है । अपने इन उदात्त गुणों के कारण ही राजा चन्द्रप्रभ सारी प्रजा का प्रिय, इष्ट एवं दर्शनीय बना । वे इसकी छवि-पान करते हुए कभी तृप्त न होते थे ।

धर्म-पूर्वक राज्य करने के कारण ही राजा रुद्रायण के अपने पुत्र शिखण्डी को राज्य सौंप कर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए जाते समय अन्तः पुर, अमात्य पुरवासी, जनपद तथा अन्य नाना-देशों से आगत जनकाय सभी उनके पीछे-पीछे जाते हैं । अतः रुद्रायण शिखण्डी को सम्बोधित कर कहता है—"पुत्र, मया धर्मेण राज्यं कारितम्, येन मे इयन्ति प्राणिशतसहस्राणि पृष्ठतोऽनुबद्धानि त वयापि धर्मेण राज्यं कारयितव्यमिति" तथा उसे यह भी आदेश देता है—'पुत्र, त्वया राज्यं कारयता कस्यचिदपराध्यं न क्षन्तव्यमिति" ।[1]

राज्य की श्री-वृद्धि राजा के कर्मों पर निर्भर होती है । राजा चन्द्रप्रभ के धार्मिक होने का ही यह परिणाम था कि उस की राजधानी भद्रशिला नगरी "ऋद्धा", "स्फीता" "क्षेमा", "सुभिक्षा" एवं "आकीर्णबहुजनमनुष्या" थी । उसमें चतुर्दिक् चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुरभित समीर का प्रसार हो रहा था । एक ओर प्रस्फुटित पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल पुष्प मण्डित स्वादु, स्वच्छ एवं शीतल जल परिपूर्ण तडाग, कूप और प्रस्रवण का नयनाभिराम दर्शन होता है तो दूसरी ओर ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पुंनाग, नागकेसर, चँम्पक, वकुल, पाटलादि पुष्पों से आच्छादित एवं कलविंक, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवंजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण निकूजित वनषण्डोद्यान हमारे चित्त को वरबस आकृष्ट कर लेता है । तत्रस्थ मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम दृश्य भी अवलोकनीय है । इस प्रकार भद्रशिला नगरी अमरालय-सदृश विराजमान थी ।[2]

हस्तिनापुर में उत्तर-पांचाल महाधन नामक एक धार्मिक राजा राज्य करता था । उसका नगर सुसमृद्ध, सर्वक्षेमयुक्त, तस्कर, दुर्भिक्ष और रोगादि से रहित था । उसके राज्य में समय-समय पर यथेष्ट वर्षा होती थी, जिससे

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२ ।

२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५ ।

प्रभूत सस्य-सम्पत्ति का प्रादुर्भाव हो गया था। वह राजा श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और याचकों को दान देता था तथा उनका सत्कार भी करता था।[1]

महाधनी एवं महाभोगी राजा कनकवर्ण धर्मानुसारेण राज-कार्य का प्रतिपादन करता था। उसके धार्मिक होने से सर्वत्र सुभिक्ष का ही अवलोकन होता है। उसकी राजधानी कनकावती पूर्व और पश्चिम में १२ योजन लम्बी एवं उत्तर दक्षिण से ७ योजन विस्तृत थी। राजा कनकवर्ण के राज्य में ८० हजार नगर, १८ कुलकोटी, ५७ ग्रामकोटी एवं ६० हजार कर्वट (ग्राम) थे। सभी ऋद्ध, स्फीत, क्षेम-युक्त, सुभिक्ष और आकीर्ण-बहुजन मनुष्य थे।[2]

कुछ राजा ऐसे थे, जो अपने राज्य का पालन [illegible] के समान करते थे। वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अपने राज्य का पालन [illegible] से करता था।[3]

दूसरी ओर राजा के अधर्म ए
सद्धर्मपरायण राजा का आश्रय लेती थ
महाचण्ड, क्रोधी एवं कर्कश स्वभाव व
को घातन, धारण, बन्धन, हति, निग
था, जिससे समस्त जनकाय देश का परि
चित्त वाले उत्तरपांचाल राजा के राज्य

महाप्रणाद राजा के भी अधर्म
अधर्मपूर्वक राज्य करने से राजा
इसीलिए देवेन्द्र शक्र महाप्रणाद के
करते हैं।[5]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० [illegible]
२. कनकवर्णावदान, पृ० [illegible]।
३. मैत्रकावदान, पृ० [illegible]।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० [illegible]।
५. [illegible]ावदान, पृ० [illegible]।

[ख] पंच-ककुद

राजा के पाँच राजकीय चिन्ह माने गये हैं—

(१) उष्णीष
(२) छत्र
(३) खड्गमणि
(४) वाल-व्यजन
(५) उपानह ।

इनकी "पंच-ककुद" संज्ञा है । राजा बिम्बिसार भगवान् बुद्ध से मिलने के लिए उनके पास जाते समय अपने इन पंच-ककुदों को रख देते हैं ।[1]

[ग] राज्याभिषेक

राजा की हत्या कर, पुत्र द्वारा स्वयं राज्य पर प्रतिष्ठित हो जाने का उदाहरण प्राप्त होता है । अजातशत्रु अपने पिता की हत्या कर स्वयं ही पट्ट बांधकर राज्य पर अधिकार कर लेता है ।[2]

इसके विपरीत राज्य-भार सहर्ष सौंपे जाने पर भी कुछ लोग उसे स्वीकार करने के लिए राजगृह नहीं जाते थे । उपोषध राजा की मृत्यु हो जाने पर अमात्यगण, उसके पुत्र मान्धात के पास राज्याभिषेक का सन्देश भेजते हैं । किन्तु वह कहता है—

"यदि मम धर्मेण राज्यं प्राप्स्यते, इहैव राज्याभिषेक आगच्छतु" ।[3]

ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक-कर्म अधिष्ठान के मध्य रत्नशिला पर स्थित श्रीपर्यंक (राज-सिंहासन) पर किया जाता था । क्योंकि ये सभी वस्तुएँ अमात्यों के निर्देश करने पर दिवौकस नामक यक्ष के द्वारा शीघ्र ही उपस्थित की जाती हैं । इतनी तैयारी हो जाने पर मान्धात फिर कहता है—

---

१. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ९१ ।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७३ ।
३. मान्धातावदान, पृ० १३० ।

"यदि धर्मेण राज्यं प्राप्स्यते, अमनुष्याः पट्टं बध्नन्तु"।[1]

अशोक भी राज्याभिषेक के पूर्व, अपने पिता बिन्दुसार के रुष्ट होने पर कहते हैं—

"यदि मम धर्मेण राज्यं भवति, देवता मम पट्टं बध्नन्तु"।[2]

[घ] राजा का चुनाव

राजा की अपुत्र मृत्यु हो जाने पर ही राजा के चुनाव का प्रश्न उठता था। समाज में श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर होता था। लोग चरित्रवान् व्यक्ति को एक मत हो राजा चुन लेते थे। उत्पलावती राजधानी में राजा की बिना किसी सन्तान के ही मृत्यु हो जाने पर महामात्यगण सोचते हैं—"कस्मात् रूपावतकुमारात्कृतपुण्यात्कृतकुशलात्" और वे रूपावत कुमार को राज-पद पर प्रतिष्ठित कर देते है।[3]

एक अन्य स्थल पर भी राजा की अपुत्र मृत्यु हो जाने पर [illegible] सात्विक एवं प्राज्ञ व्यक्ति को राज-पद पर अभिषिक्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। राक्षसियों द्वारा अन्तःपुर सहित सिंहकेसरी राजा को खा लिये जाने पर समस्त पौर, अमात्य एवं जनपद-निवासी सार्थवाह सिंहल को, सात्विक एवं प्राज्ञ देख कर उसे राज्य पर अभिषिक्त कर देते हैं।[4]

[ङ] प्रजावत्सलता

कनकवर्णावदान में राजा का अपने राज्य एवं प्रजा के प्रति अगाध स्नेह देखने को मिलता है। नैमित्तिकों के द्वारा किये गए निर्णय को सुन कर राजा कनकवर्ण अश्रु-प्रवाह करता हुआ कहता है—

"अहो बत मे जाम्बुद्वीपका मनुष्याः, अहो बत मे जम्बुद्वीपः ऋद्धः स्फीतः, क्षेमः सुभिक्षो रमणीयो बहुजनाकीर्णमनुष्यो नचिरादेव शून्यो भविष्यति रहितमनुष्यः।"

---

१. मान्धातावदान, पृ० १३०-३१।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३४।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३०६।
४. सार्थवाहावदान पृ० ४२८।

राजा को दरिद्र, अल्पधन और अल्प अन्न-पान-भोग वाले मनुष्यों के जीवन-यापन की चिन्ता होती है और एतदर्थ वह गणक, महामात्रामात्य, दौवारिक एवं पारिषद्यों को बुला कर समस्त जम्बुद्वीप से अन्नादि को एकत्र करने, उन खाद्यान्नों का माप करने तथा सभी ग्राम, नगर, निगम, कर्वट और राजधानी में एक कोष्ठागार की स्थापना करने का आदेश देता है। उन लोगों के द्वारा ऐसा कर लिये जाने पर वह संख्या-गणक और लिपिकों से सभी मनुष्यों की गणना कर उन में सम-वितरण करने के लिये कहता है।[1]

[च] धर्म-कार्य में सहायता

भगवान् क्षेमंकर बुद्ध क्षेमावती राजधानी में विहार करते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर राजा क्षेम एक चैत्य की स्थापना करता है। साथ ही स्तूप चैत्यादि के निर्माण-कार्य में अन्य लोगों को स्वीकृति एवं उचित सहायता भी प्रदान करता है। किसी वणिक् श्रेष्ठी द्वारा भगवान् बुद्ध के चैत्य को महेशाख्यतर करने का विचार प्रकट करने पर राजा क्षेम उस से कहता है—"यथाभिप्रेतं कुरु।" किन्तु ब्राह्मणों द्वारा इस कार्य में बाधा उपस्थित किये जाने पर जब वह श्रेष्ठी पुनः राजा के पास जाता है तो वह अपने सहस्रयोधी पुरुष को उस की सहायतार्थ देता है और उसे यह आदेश देता है कि "यद्यस्य महाश्रेष्ठिनः स्तूपमभिसंस्कुर्वतः कश्चिदपनयं करोति, स त्वया महता दण्डेन शासयितव्यः"।[2]

[छ] सौहार्दपूर्ण-संबन्ध

"रुद्रायणावदान" में एक राजा का अन्य राजा के साथ सौहार्द्र-पूर्ण संबन्ध देखने को मिलता है। एक दूसरे से सर्वथा अदृष्ट (अपरिचित) होने पर भी वे आपस में सख्य-भाव रखते थे। उनके हृदय पारस्परिक मैत्र्यात्मक बुद्ध्यनुप्राणित होते थे। एक राजा अपने लिये सुलभ वस्तुओं को अन्य राजा के पास प्राभृत (उपहार) रूप में भेजता था, जो उस राजा के लिये दुर्लभ होती थीं। यह ज्ञात होने पर कि राजा बिम्बिसार को रत्न दुर्लभ हैं, रुद्रायण उस के लिए प्राभृत-रूप में रत्नों को भेजता है और साथ ही दूतों के द्वारा एक लेख (पत्र) भी देता है, जिसमें लिखता है—"प्रियवयस्य, त्वं

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८१।

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५०।

ममादृष्टसखा। यदि तव किञ्चिद् रोरुके नगरे करणीयं भवति, मम लेखो दातव्यः। सर्वं तत् परिप्रापयिष्यामि"। बदले मे बिम्बिसार, अमात्यों के यह कहने पर कि रुद्रायण को वस्त्र दुर्लभ हैं, उस के लिए उत्तम वस्त्रों को प्राभृत-रूप में भेजता है और यह लेख भी देता है—"प्रियवयस्य, त्वं ममादृष्टसखा। यत्किंचित्तव राजगृहे प्रयोजनभवति, मम लेखो दातव्यः। तत्सर्वं परिप्रापयि-ष्यामि"।[1] इस प्रकार उन में पारस्परिक सहयोग का एक उज्ज्वल एवं समुन्नत दृष्टिकोण उपलब्ध होता है।

राजाओं की अनेक स्त्रियाँ होती थीं। राजा उदयन की दो स्त्रियाँ—श्यामावती और अनुपमा, थी। इसके अतिरिक्त उसके अन्तःपुर में ५०० अन्य स्त्रियों के होने की भी चर्चा है।[2] महाधनी एवं महाभोगी राजा कनकवर्ण के अन्तःपुर में बीस हज़ार स्त्रियाँ थीं।[3]

अन्तःपुर तीन श्रेणियों में विभक्त थे[4]—

(१) ज्येष्ठक

(२) मध्यम

(३) कनीयस

राजा प्रायः स्त्री के वश मे हुआ करते थे। अनुपमा के द्वारा श्यामावती को मारने के लिये कहे जाने पर माकन्दिक [illegible] सोचता है—"स्त्रीवशगा राजानः" और शीघ्र ही श्यामावती को मारने का उपाय करने के लिये उद्यत हो जाता है।[5]

एक स्थान पर राज-पद को प्रमाद का स्थान कहा गया है। किसी च्यवनधर्मा देवपुत्र के पंच पूर्वनिमित्त प्रकट होने पर देवेन्द्र शक्र उस से अमुक राजा की अग्रमहिषी के कुक्षि में प्रतिसंक्रान्त (प्रतिसन्धि-ग्रहण) के लिये कहते है, तो वह कहता है—"प्रमादस्थानं कौशिक। बहुनि...

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५।

२. माकन्दिकावदान पृ० ४५५-४५६।

३. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० [illegible]। माकन्दिकावदान, पृ० [illegible]।

५. माकन्दिकावदान, पृ० [illegible]।

हि कौशिक राजानः । मा अधर्मेण राज्यं कृत्वा नरकपरायणो भविष्यामीति" ।[1]

[ज] चक्रवर्ती-राजा

चतुरन्तविजेता राजाओं को चक्रवर्ती की संज्ञा दी जाती थी। चक्रवर्ती धार्मिक राजा के पास-सप्त रत्न होते थे। ये रत्न इस प्रकार थे[2]—

(१) चक्र-रत्न
(२) हस्ति-रत्न
(३) अश्व-रत्न
(४) मणि-रत्न
(५) स्त्री-रत्न
(६) गृहपति-रत्न
(७) परिणायक-रत्न

O

---

१. "मैत्रेयावदान, पृ० ३५।

२. वही, पृ० ३६ ।, अशोकवर्णावदान, पृ० ८७ ।, मान्धातावदान, पृ० १३२।

परिच्छेद २

मंत्री

राज्य-शासन का मंत्री भी एक अंग होता है। अनेक, [illegible], स्थिर-धी, प्रभावशाली, शीलवान्, मैत्र्यादि सद्गुण-युक्त मंत्री ही राजा के लिए वरेण्य है। ऐसे मंत्री का सुयोग राज्य के श्री-[illegible] का [illegible]। उस का राज्य सदैव फलता-फूलता रहता है। राजा [illegible] के [illegible] ६ हजार मन्त्री थे। इन में से दो अग्रामात्य थे, जो अन्य [illegible] पण्डित, मेधावी तथा विशिष्ट गुण वाले थे।[1] राजा कनकवर्ण के [illegible] १८ हजार अमात्यों के होने का उल्लेख है।[2]

अग्रामात्य महाचन्द्र, राजा को सत्कर्मप्रवृत्यर्थ प्रेरित करने के अतिरिक्त समस्त प्रजा-जन को भी हितकर कर्मों के अनुष्ठान का आदेश देता है। वह निरन्तर ही जम्बुद्वीप वासी मनुष्यों को दस कुशल कर्मों के लिये प्रेरित करता है—"इमान् भवन्तो जम्बुद्वीपका मनुष्या दश कुशलान् कर्मपथान् समादाय वर्तयेति"।[3]

मंत्री, राजा अथवा राज्य के अनिष्ट को नहीं सहन कर सकते थे। इससे उन्हें असह्य पीड़ा होती थी। राजा चन्द्रप्रभ और उन के राज्य के [illegible]-सूचक स्वप्न को देख कर समस्त मन्त्रिगण कितने [illegible], [illegible] दुःखी दिखाई पड़ते हैं। वे सभी शिवेतर-क्षय के लिए एक स्वर से [illegible] करते हैं—

---

1. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।
2. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
3. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।

"मा हैव राज्ञश्चन्द्रप्रभस्य महापृथिवीपालस्य मैत्रात्मकस्य कारुणिकस्य सत्त्ववत्सलस्यानित्यताबलमागच्छेत्, मा हैव अस्माकं देवेन सार्धं नानाभावो भविष्यति विनाभावो विप्रयोगः, मा हैव आत्राणोऽपरित्राणो जम्बुद्वीपो भविष्यतीति"।

महाचन्द्र अग्रामात्य ने तो इस संकट से बचने का उपाय भी ढूँढ निकाला कि यदि कोई राजा का शिरोयाचनक आया तो उसे एक रत्नमय शिर के द्वारा प्रलुब्ध किया जायगा; और तदर्थ एक रत्नमय शिर बनवा कर कोशकोष्ठागार में रख लिया। इतना ही नहीं महाचन्द्र और महीधर दोनों अग्रामात्य राजा चन्द्रप्रभ का विनाश देखने में असमर्थ हो पहले ही अपने ऐहिक शरीर का परित्याग कर देते हैं।[1]

राजा शिखण्डी के धर्मपूर्वक राज्य करने पर हिरु और भिरुक नाम के उस के शुभचिन्तक मन्त्री जनपद की उपमा पुष्प-फल वाले वृक्ष से देते हैं—

"पुष्पफलवृक्षसदृशा देव जनपदाः। तद्यथा देव पुष्पवृक्षाः फलवृक्षाश्च कालेन कालं सम्यक् परिपाल्यमाना अनुपरतप्रयोगेण यथाकालं पुष्पाणि फलानि चानुप्रयच्छन्ति, एवमेव जनपदाः प्रतिपाल्यमाना अनुपरतप्रयोगेण यथाकालं करप्रत्यायाननुप्रयच्छन्तीति"।[2]

परन्तु इस के विपरीत दूसरी ओर दो दुष्ट अमात्य उससे कहते हैं—

"देव नाक्रन्दिता नालुञ्चिता नातप्ता नोत्पीडितास्तिलास्तैलं प्रयच्छन्ति, तद्वन्नरपते जनपदा इति"।[3]

एक ओर भद्र एवं सदमात्यों का योग, राजा की श्री-वृद्धि तथा पुण्य-प्रसव में एक सुदृढ़ कारण होता था तो दूसरी ओर इस के विपरीत, दुष्टामात्य राजा के कल्मष-गर्त-पतन में कारण होते थे।

मन्त्रियों के द्वारा किये गए प्रजा-पीड़न के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। अशोक के राज्य काल में तक्षशिला के नगरवासियों ने विद्रोह प्रारंभ कर

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०१।

२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७७।

३. वही, पृ० ४७७।

दिया। अशोक ने तत्प्रशमनार्थ अपने पुत्र कुणाल को भेजा। कुणाल के पहुँचने पर वहाँ के नागरिकों ने उनका उचित सत्कार कर कहा—"न तो हमलोग राजकुमार के विरुद्ध हैं और न राजा अशोक के ही, अपितु उन दुष्टामात्यों के विरोधी हैं, जो हमारा अपमान करते हैं"।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर बिन्दुसार के समय में तक्षशिला के लोगों द्वारा मन्त्रियों के प्रजापीड़क शासन के विरुद्ध विद्रोह करने का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा बिन्दुसार अशोक को चतुरंगिणी सेना के साथ तक्षशिला भेजते है। यहाँ भी अशोक को नगरवासियों से वैसा ही उत्तर प्राप्त होता है—

"न वयं कुमारस्य विरुद्धाः, नापि राज्ञो बिन्दुसारस्य, अपितु दुष्टामात्या अस्माकं परिभवं कुर्वन्ति"।[2]

○

---

१. कुणालावदान, पृ० २६३।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३४।

परिच्छेद ३

न्याय-तन्त्र

तत्कालीन न्याय-पद्धति, तात्कालिक और निष्पक्ष थी। वादी और प्रतिवादी दोनों राजा के समक्ष पहुँचते थे और राजा उनका न्याय करता था। किसी वकील और अदालती खर्च की आवश्यकता न थी। एक बार वणिग्-ग्राम अपने बनाये हुए नियम के भंग किये जाने के अभियोग में क्रुद्ध होकर पूर्ण पर ६० कार्षापणों का जुर्माना (आतप) घोषित करता है। यह बात राजा को ज्ञात होने पर वह पूर्ण और वणिग्-ग्राम को अपने पास बुलवाते हैं। राजा वणिग्-ग्राम से, पूर्ण पर किये गये जुर्माने का कारण पूछते हैं। वे कहते हैं—"देव ! वणिग् ग्राम ने यह क्रियाकार (समझौता, नियम) किया था, कि कोई भी व्यक्ति अकेला पण्य को नहीं खरीदेगा। किन्तु पूर्ण ने अकेले ही खरीद लिया है"। पूर्ण कहता है—"देव ! क्या इन लोगों ने क्रियाकार करते समय मुझे या मेरे भाई को बुलाया था ?" इस पर वे कहते हैं—"देव ! नहीं।" इस प्रकार दोनों पक्षों की बात सुनकर राजा यह अन्तिम न्याय करते हैं—

"भवन्तः, शोभनं पूर्णः कथयति"।[1]

कितनी सरल, सुगम एवं सुन्दर यह न्याय-विधि थी ! दोनों पक्षों के यथार्थ बातों की जानकारी और फिर तत्काल निर्णय। न वकीलों की झक-झक, न धन का अपव्यय और न दस-पन्द्रह वर्ष की लम्बी अवधि।

O

---

१. पूर्णावदान, पृ० २०।

परिच्छेद ४

युद्ध

अमर्ष के कारण राष्ट्रापमर्दन किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। धनसंमत राजा यह सोचता था कि केवल मेरा ही राज्य समृद्ध, स्फीत, क्षेम, सुभिक्ष एवं आकीर्णबहुजन-मनुष्य है। किन्तु मध्यदेश से आए वणिकों के द्वारा यह ज्ञात होने पर कि मध्यदेश के शासक राजा का भी राज्य वैसा ही है, उसे अमर्ष उत्पन्न होता है और वह चतुरंगिणी सेना का सन्नाह कर मध्य-देश के राज्य को विनष्ट करने के लिए जाता है।[1]

[क] सेना

सेना के लिए "बलकाय"[2] या "बलौघ"[3] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। राजा के यहां उचित सैन्य-शक्ति रहती थी। किसी कार्वटिक (कर्वट के अधिपति) आदि के विरुद्ध होने पर, वह उनके विनाश के लिए सेना भेजता था।[4]

राजा के यहां चतुरंगिणी सेना रहती थी। चतुरंग बलकाय के चार अंग थे[5]—

(१) हस्तिकाय
(२) अश्वकाय
(३) रथकाय
(४) पत्तिकाय (पदाति)

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।
२. वही, पृ० ३८।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८९।
४. वही, पृ० २८९।
५. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।

राजपदाभिषिक्त सार्थवाह सिंहल चतुरंग बलकाय का संनाह कर ताम्रद्वीप से राक्षसियों को निर्वासित करने जाता है।[1]

किसी कार्वटिक के विरुद्ध होने पर राजा तत्प्रशमनार्थ दण्डस्थान (सैन्य-समूह) भेजता था। दो-तीन बार भेजने पर भी जब अपने सैन्य समूह की पराजय होती थी, तो राजा स्वयं जाता था और जो भी शस्त्रोपजीवी वहाँ रहते थे, उन सबको साथ चलने का आदेश देता था।[2]

[ख] प्रहरण-उपकरण

नाना-विधि प्रहरण-उपकरणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) खड्ग[3] या असि[4]—तलवार
(२) मुशल[5]
(३) तोमर[6]—अस्त्र विशेष "गंड़ासा"
(४) पाश[7]—बाँधने का उपकरण "रस्सी"
(५) चक्र[8]
(६) शर[9]—तीर
(७) धनुष[10]
(८) अंकुश[11]
(९) यष्टि[12]—लाठी

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।
२. वही, पृ० ४५६-५७।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २९०।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २९०।
६. वही, पृ० २९०।
७. वही, पृ० २६०।
८. वही, पृ० २९०।
९. वही, पृ० २९०।, रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
११. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४९।
१२. वही, पृ० ३५।

(१०) परश्वध[1]—कुल्हाड़ी
(११) क्रकच[2]—आरा
(१२) परशु[3]—फरसा
(१३) क्षुर[4]—छुरा

एक ऐसे मणिवर्म (मणियुक्त कवच) का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसकी पांच विशेषताएं थीं[5]—

(१) शीतकाल में उष्ण संस्पर्श और उष्ण काल में शीत संस्पर्श गुण,
(२) दुश्छेद्यता
(३) दुर्भेद्यता
(४) विषघ्नता, और
(५) अवभासात्मकता ।

०

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८० ।
२. कुणालावदान, पृ० २७० ।
३. वही, पृ० २७० ।
४. वही, पृ० २७० ।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५ ।

परिच्छेद ५

दण्ड-व्यवस्था

तत्कालीन दण्ड-विधान अत्यन्त कठोर था। दण्ड-स्वरूप हाथ, पैर, नाक, कान काट लिए जाते थे। मथुरा निवासिनी गणिका वासवदत्ता का हाथ, पैर, कान और नाक काट कर श्मशान में छोड़ दिया गया था।[1]

राजा अशोक तिष्यरक्षिता को दण्ड देने के लिए अनेक प्रकार के वध-प्रयोगों का उल्लेख करते हैं[2]—

(१) परशु-प्रहार से उसके शिर को काट डालना चाहते हैं।
(२) अथवा सुतीक्ष्ण नखों से, उसके दोनों नेत्र निकाल कर, उसके शरीर को ऐसे ही डलवा देना चाहते हैं।
(३) अथवा जीवन्तिशूला।
(४) अथवा क्रकच से उसकी नाक काट डालना चाहते हैं।
(५) अथवा क्षुर (चाकू) से उसकी जीभ कतर देना चाहते हैं।
(६) अथवा विष द्वारा उसे मार डालना चाहते हैं।

एक अन्य स्थल पर अयोद्रोणि में रखकर मुशल-प्रहार द्वारा हड्डियों को चूर कर देने का भयानक दण्ड दिखलाई पड़ता है।[3]

राजा के आदेशानुसार दण्ड देने के लिये, राज्य में जिन लोगों की नियुक्ति रहती थी, उन्हें "वध्यघातकपुरुष"[4] या "वधकपुरुष"[5] कहते थे।

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९।
२. कुणालावदान, पृ० २७०।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७।
४. वही, पृ० २३५।, वीतशोकावदान, पृ० २७२, २७३।
५. रुद्रायणावदान पृ० ४७९।

ऐसे यातना-गृहों (टॉर्चर-चैम्बर) का भी वर्णन है, जिसमें अपराधियों को दण्डस्वरूप डाल दिया जाता था। वत्सराज उदयन श्यामावती प्रमुख पाँच सौ स्त्रियों के दग्ध होने का सर्व वृतान्त जानकर क्रुद्ध हो यौगन्धरायण को यह आज्ञा देता है कि वह अनुपमा सहित मकान्दिक को यन्त्रगृह में डाल कर जला दे।[1] राजा अशोक तिष्यरक्षिता को जंतुगृह में डाल कर जला देते हैं।[2] "चारक" कारागृह को कहते थे।[3]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४६०।
२. कुणालावदान, पृ० २६०।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।

परिच्छेद ६

कर

कृषकों से, राजा कर वसूल करता था। एक बार महाप्रणाद राजा के राज्य में कृषक-गण तत्रस्थ यूप का दर्शन करने में ही दत्तचित्त रहने लगे और अपना कार्य नहीं करते थे। फलतः कृषिकर्म के समुच्छिन्न हो जाने से बहुत थोड़ी मात्रा में कर इकट्ठा हो पाता था।[1]

व्यापार की वस्तुओं पर शुल्क लगता था। ऐसा स्थल जहाँ पर शुल्क-ग्रहण किया जाता था, "शुल्क-शाला" के नाम से प्रसिद्ध था।[2] शुल्क-ग्रहण करने वाले अधिकारी की "शौल्किक" संज्ञा थी।[3]

महासमुद्रावतरण करने वाले व्यापारियों से कुछ तर्पण्य-शुल्क भी वसूल किया जाता था।[4]

राज्य में चार प्रमुख नगरद्वार होते थे। इन चारों नगरद्वारों से पृथक्-पृथक् कर आते थे। राजा कृकि ने पूर्व नगरद्वार से प्राप्त होने वाले कर को, चतूरत्नमय चैत्य एवं स्तूप के टूटने-फूटने पर उसकी मरम्मत कराने के लिए (खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय) दे दिया था।[5]

o

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
३. वही, पृ० १७०।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, पूर्णावदान, पृ० २०।
५. वही, पृ० १३।

सभी भोज्य-पदार्थों के समाप्त हो जाने पर अवशिष्ट एक मानिका (एक तौल विशेष) भक्त भी प्रत्येक बुद्ध को देकर राजा कनकवर्ण अपने गणक, दौवारिक आदि सभी सेवकों से अपने-अपने घर जाने के लिए कहता है। इस पर वे कहते हैं—

"यदा देवस्य श्रीसौभाग्यसंपदासीत्, तदा वयं देवेन सार्धं क्रीडता रमता कथं पुनर्वयमिदानीं देवं पश्चिमे काले पश्चिमे समये परित्यक्षाम इति"।[1]

किन्तु राजा के पुनः कहने पर वे जाते समय राजा कनकवर्ण को प्रणाम कर कहते हैं—

"क्षन्तव्यं ते यदस्माभिः किंचिदपराद्धम्। अद्यास्माकं देवस्यापश्चिमं दर्शनम्"।[2]

इससे उनकी राजा के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का परिचय प्राप्त होता है, जो विनीत एवं स्वामिभक्त सेवकों की अस्तिता को प्रकट करता है।

पराधीनता की बेड़ी वस्तुतः बड़ी विकराल होती है। इसमें मनुष्य को सभी कार्यों को करना पड़ता है, चाहे वे भले हों या बुरे। उसे आज्ञा का अविलम्ब पालन करना पड़ता है, हाँ या ना करने का उसे यत्किंचित् भी अधिकार नहीं। इस त्रासजनक दंष्ट्रा से अवनद्ध मानव अनिष्ट कर्म का ज्ञान होने पर भी विवश हो उस के संपादन में तत्पर होता है, किन्तु एक मर्म भरी मूक-वेदना की टीस उसके अन्तर्मानस को सदैव विलोडित करती रहती है।

दुष्ट अमात्यों द्वारा हिरण्य, सुवर्ण, ग्राम तथा भोगादि प्रदान का प्रलोभन देने पर भी वधक पुरुष, पौर एवं जनपदों के अनुरक्त रुद्रायण के वध के लिए तत्पर नहीं होते। किन्तु उन दुष्ट अमात्यों के चारपालों को यह आज्ञा देने पर कि इन्हें पुत्र, कलत्र, सुहृत्, संबन्धी, बन्धुवर्ग सहित चारक में बाँध दो; वे भयभीत हो कहते हैं—

"देव, अलं क्रोधेन। भृत्या वयमाज्ञाकराः। गच्छाम इति।"[3]

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
२. वही, पृ० १८३।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।

इस प्रकार वे स्वीकार कर चल देते हैं। परन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति का ज्ञान हमें उस समय होता है, जब वे रुद्रायण के समीप पहुँच कर कहते हैं—

"वयं ह्यधन्या नृपसंप्रयुक्ता
इहाभ्युपेतास्तव घातनाय ॥"[1]

"दिव्यावदान" में प्राप्त तत्कालीन अधिकारी एवं सेवकगण निम्नलिखित थे—

(१) अग्रामात्य[2]—प्रधान मंत्री
(२) अमात्य[3]—मंत्री
(३) भाण्डागारिक[4]—भाण्डागार का स्वामी
(४) कोष्ठागारिक[5]—कोष्ठागार का रक्षक
(५) गणक[6]—गणना करने का अधिकारी।
(६) यन्त्रकराचार्य[7]—शस्त्रों को सुधारने वाला।
(७) शौल्किक[8]—शुल्क ग्रहण करने वाला। [illegible]
(८) घाण्टिक[9]—घण्टा बजाने वाला।
(९) दौवारिक[10]—द्वारपाल
(१०) प्रेष्यदारिका[11]—नौकरानी
(११) प्रियाख्यायी[12]—प्रिय (शुभ) समाचार देने वाला सेवक

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४८० ।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६७ ।
३. वही, पृ० १६७ ।
४. अशोकावदान, पृ० २७६ ।
५. मेण्ढकावदान, पृ० ८३ ।, माकन्दिकावदान, पृ० ४६३ ।
६. कनकवर्णावदान, पृ० १८१ ।
७. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।
८. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६० ।
९. कुणालावदान, पृ० २४५ ।
१०. कनकवर्णावदान पृ० १८१ । रूपावत्यवदान, पृ० ४३६ ।
११. माकन्दिकावदान, पृ० ४६१ ।
१२. वही, पृ० ४५५ ।, कुणालावदान पृ० २६३

(१२) अप्रियाख्यायी[१]—अप्रिय (अशुभ) समाचार देने वाला सेवक
(१३) चारपाल[२]—गुप्तचर
(१४) दूत[३]—चर
(१५) वध्यघातक[४] या वधक पुरुष[५]—वध करने वाला (जल्लाद)
(१६) उपस्थायक[६] या उपस्थायिका[७]—सदैव साथ रहने वाला नौकर या नौकरानी।

o

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५, ४५६।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।
३. वही, पृ० ४६५।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।, वीतशोकावदान, पृ० २७२।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
७. वही, पृ० २७७।

पाँचवाँ अध्याय

धर्म और दर्शन

परिच्छेद १

परिषद् और संघ

चार प्रकार की परिषदें दृष्टिगोचर होती हैं[1]—

(१) भिक्षु परिषत्
(२) भिक्षुणी परिषत्
(३) उपासक परिषत्
(४) उपासिका परिषत्

दो भिक्षु-कर्म कहे गये हैं—(१) ध्यान, और (२) [illegible]। प्रव्रजित होने के बाद यह पूछे जाने पर कि वह कौन सा कर्म करेगा, [illegible] दोनों कर्मों को करने के लिए कहता है और दोनों कर्मों का अनुष्ठान करते हुए सर्व क्लेश-प्रहाण हो जाने पर अर्हत्व का साक्षात्कार करता है।[2]

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को मद्य पीने एवं किसी अन्य को देने का निषेध किया था। भगवान् ने भिक्षुओं से कहा था—

"मा भो भिक्षवः शास्तारमुद्दिश्य भवद्भिर्[illegible] कुशाग्रेणापि"।[3]

भिक्षुओं को चार वस्तुओं की आवश्यकता रहती थी।[4]

(१) चीवर
(२ पिण्डपात

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८६।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४८६।
३. स्वागतावदान, पृ० [illegible]
४. [illegible], पृ० [illegible]

(३) शयनासन

(४) ग्लानप्रत्ययभैषज्य

बौद्धभिक्षु एवं अर्हत् आदि के भिक्षार्थ नगर में प्रविष्ट होने पर समस्त जनकाय उन का दर्शन करने के लिए निकल पड़ता था । शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन के भिक्षुओं के पंचशत परिवार सहित कोसल में चारिका-चरण करते हुए श्रावस्ती पहुँचने का समाचार प्राप्त कर सभी नगर निवासी उन के दर्शनार्थ बाहर निकल आते हैं ।[१] ऐसे ही भिक्षुओं के पंचशत परिवार सहित महापन्थक के चारिकाचरण करते हुए श्रावस्ती पहुँचने पर पुनः महाजनकाय दिदृक्षावश निकल पड़ता है ।[२]

भिक्षु, पुरुषों को तथा भिक्षुणियाँ स्त्रियों को धर्म-देशना देती थीं । भगवान् ने अन्तःपुर में भिक्षुओं के प्रवेश का निषेध किया था । अन्तःपुर को धर्मदेशना भिक्षुणियाँ ही देती थीं । रुद्रायण के महाकात्यायन से यह कहने पर कि—"मम आर्य सान्तःपुरमिच्छति श्रोतुम्" वह कहते हैं—"महाराज न भिक्षवोऽन्तःपुरं प्रविश्य धर्मं देशयन्ति । प्रतिक्षिप्तो भगवता अन्तःपुरप्रवेशः" । रुद्रायण के पुनः प्रश्न करने पर—"आर्य, अत्र कोऽन्तःपुरस्य धर्मं देशयति" ? वह उत्तर देते हैं—"महाराज, भिक्षुण्यः" ।[३]

जो बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को भोजन कराता था, उसे सहसा ही भोगों की प्राप्ति होती थी । एक गृहपति ऐसा ही श्रवण कर पाँच सौ भिक्षुओं के लिए आहार ले कर जेतवन विहार में जाता है ।[४]

भिक्षुसंघ को भोजन कराने वाले को देव-गति की प्राप्ति होती थी । तदर्थ अनुरक्त चित्त गृहपति पुत्र, बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ के भोजनार्थ अपनी माता के पास पाँच सौ कार्षापण न प्राप्त कर, भृतिक-कर्म करने को उद्यत होता है ।[५]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८ ।
२. वही, पृ० ४२६ ।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६ ।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७ ।
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८७—८८ ।

बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ के भोजन कराने को एक पर्व की संज्ञा दी जाती थी। ज्ञात होता है कि ऐसा पर्व प्रत्युपस्थित होने पर सभी वस्तुएँ उस भोजन कराने वाले के यहाँ चली जाती थीं, जिस से मूल्य देने पर भी कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती थी। राजगृह में ऐसे ही पर्व के प्रत्युपस्थित होने पर जब पाँच सौ वणिक् महासमुद्र से लौट कर राजगृह पहुँचते हैं तो उन को कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं होती और वे श्रवण-परम्परया अन्वेषण करते हुए गृहपति पुत्र के पास जा उस से उत्सदनधर्मक (भुक्तावशिष्ट) की याचना करते हैं।[1]

गृहस्थ शिष्य उपासक और उपासिका कहलाते थे। उपासकों के लिए चार भद्र आचरणों (शील) का विधान था। वे आचरण इस प्रकार थे :[2]

(१) प्राणातिपात-विरति

(२) अदत्तादान-विरति

(३) काममिथ्याचार-विरति

(४) सुरा-मैरेय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति

उपासक होने के लिए त्रिशरण-गमन का विधान था। जो उपासक होना चाहते थे, वे बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाते थे। [illegible] भी भगवान् की चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्म-देशना का श्रवण कर अपनी कृतार्थता प्रकट करते हुए कहता है—

"........एषोऽहं बुद्धं भगवन्तं शरणं गच्छामि धर्मं च भिक्षुसंघं च। उपासकं च मां धारय अद्याग्रेण यावज्जीवं प्राणोपेतमभिप्रसन्नम्।"[3]

बुद्ध-शरण-गमन, धर्म-शरण-गमन एवं संघ-शरण-गमन ही त्रिशरण कहलाते हैं।

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १९०।

२. वही, पृ० १८९।

३. वही, पृ० १९८।

परिच्छेद २

चारिका, वर्षावास और प्रवारणा

भगवान् बुद्ध धर्म-प्रचार के लिए भिक्षुओं के साथ चारिका (भ्रमण) करते थे। भिक्षुओं के सन्देहों का निराकरण करते थे।[1] सन्देह के लिए दो शब्द प्रयुक्त होते थे—"काङ्क्षा" और 'विमति"।[2] इनमें "काङ्क्षा" वह सन्देह था, जिसमें भिक्षु किसी एक बात का निर्णय नहीं कर पाता था और "विमति" उस सन्देह को कहते थे, जिसमें भिक्षु की बुद्धि बिलकुल न काम करती थी। चारिकाचरण करते हुए बुद्ध गृहस्थों को धर्म का उपदेश भी देते थे।[3]

ये चारिकाएँ कहाँ-कहाँ पर की जाती थीं? इनका कुछ उल्लेख प्राप्त होता है।[4] जैसे—

(१) अरण्यचारिका
(२) नदीचारिका
(३) पर्वतचारिका
(४) श्मशानचारिका
(५) जनपदचारिका

चारिकाचरण करने से पहले भगवान् बुद्ध आनन्द के द्वारा भिक्षुओं को

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५८।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०-८१।
४. सुप्रियावदान, पृ० ५६।

सूचित कर देते थे कि अमुक दिन अमुक स्थान पर मैं चारिकाचरण करूँगा। तुम में से जो मेरे साथ जाने का इच्छुक हो, वह चीवरादि ग्रहण कर ले।[1]

बुद्ध-चारिका के अठारह लाभ (अनुशंसा) बताये गये हैं[2]—

(१) अग्निभय का अभाव
(२) उदकभय का अभाव
(३) सिंहभय का अभाव
(४) व्याघ्रभय का अभाव
(५) द्वीपिभय का अभाव
(६) तरक्षु-भय का अभाव
(७) परचक्र भय का अभाव
(८) चौरभय का अभाव
(९) गुल्म-भय का अभाव
(१०) तरपण्य-भय का अभाव
(११) अतियात्रा-भय का अभाव
(१२) मनुष्य-भय का अभाव
(१३) मानवेतरप्राणि-भय का अभाव
(१४) समय-समय पर दिव्य रूप-दर्शन
(१५) दिव्य-शब्द-श्रवण
(१६) उदार-प्रकाश-ज्ञान
(१७) आत्म-व्याकरण-श्रवण
(१८) धर्मसंभोग, आमिषसंभोग, अल्पाबाधा

वर्षा-ऋतु में ये चारिकायें स्थगित कर दी जाती थीं। भिक्षुओं को वर्षावास का निमंत्रण मिलता था। भिक्षु वर्षावास के लिए आमन्त्रित करने वाले को धर्मोपदेश देते थे।[3]

वर्षा के अन्त में होने वाले उत्सव को प्रवारणा कहते थे।[4] [illegible]

---

१. दिव्यावदान, पृ० ५६ ।
२. वही, पृ० ५८ ।
३. वही, पृ० ५८ ।
४. वही, पृ० ५८-५९ ।

प्रवारणा का उत्सव विशेष समारोह के साथ मनाया जाता था, इसे "पंचवार्षिक" की संज्ञा देते थे। इसमें सर्वस्व-दान तक कर देने का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा अशोक पंचवार्षिक करते हैं। इसमें वह ४००,००० का दान देते हैं, ३००,००० भिक्षुओं, एक अर्हत् एवं दो शैक्षों को भोजन कराते हैं। महापृथिवी, अन्तःपुर, अमात्यगण, स्वयं तथा कुणाल को आर्य संघ के लिए प्रत्यर्पित कर देते हैं।[1]

O

---

१. अशोकावदान, पृ० २७९।

भक्षण की बात तो दूर रही, वह उन सब के रक्षार्थ स्व-विवृत-वदन का संकोचन मन्द-मन्द गति से करता है, इस भय से कि कहीं सहसा मुख बन्द करने से सलिल-वेग द्वारा प्रत्याहृत हो उनका यान न विनष्ट हो जाय।[1]

बुद्ध-प्रतिमा को देखकर मध्यदेश से आये हुए वणिकों द्वारा मुक्त "नमो बुद्धाय" इस अश्रुत-पूर्व घोष का श्रवण कर राजा रुद्रायण का प्रत्येक रोम प्रफुल्लित हो उठा।[2]

मरण-समय में बुद्ध नामोच्चारण एक मात्र सर्व मंगल का आधान करता था। वणिकों को विपत्तिग्रस्त देखकर उपासक उन से कहता है—

"भवन्तः, नास्माकमस्मान्मरणभयान्मोक्षः कश्चित्। सर्वैरेवास्माभिर्मर्तव्यम्। किं तु सर्व एवैकरवेण नमो बुद्धायेति वदामः। सति मरणे बुद्धावलम्बनया स्मृत्या कालं करिष्यामः। सुगतिगमनं भविष्यति।"

फलस्वरूप वे सब एक स्वर से "नमो बुद्धाय" का उच्चारण करते हैं।[3]

अन्य देवताओं की अपेक्षा बुद्ध की प्रमुखता थी। बुद्धों के दर्शनार्थ अन्य देवता उनके पास आते थे। एक बार शक्र, ब्रह्मादि देवता गण रत्नशिखी सम्यक् संबुद्ध के दर्शनार्थ उनके पास गये और उनके चरणों की शिरसा वन्दना कर बैठ गये।[4]

[ग] त्रिशरण-गमन

किसी भी प्रकार की विपत्ति से, प्राणी त्रिशरण-गमन द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विधि का अनुष्ठान जीवों के भवितव्य को भी विनष्ट कर देता है। किसी च्यवनधर्मा देवपुत्र के 'आज से सातवें दिन मैं दिव्य-सुख का अनुभव कर राजगृह नामक नगर में एक सूकरी की कुक्षि में प्रवेश करूँगा और वहाँ मुझे अनेक वर्षों तक उच्चार-प्रस्राव [मल-मूत्र] का

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४४।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४६७।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३।
४. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।

परिभोग करना पड़ेगा', यह सोचकर अत्यधिक दुःखित हो विलाप करने पर देवेन्द्र शक्र उससे बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण जाने के लिए कहते हैं। तदनन्तर,

"एषोऽहं कौशिक बुद्धं शरणं गच्छामि द्विपदानामग्र्यम्, धर्मं शरणं गच्छामि विरागाणामग्र्यम्, संघं शरणं गच्छामि गणानामग्र्यम्'।

ऐसा कहने पर वह मृत्यु को प्राप्त हो तुषित नामक देवनिकाय में उत्पन्न होता है। तुषित नाम के देव गण सर्व काम समृद्ध होते हैं।

त्रिशरण-गमन के माहात्म्य को देवेन्द्र शक्र [illegible] करते हैं –

"ये बुद्धं शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् [illegible]।
ये धर्मं शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् [illegible]।
ये संघं शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्,
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् [illegible]

---

१. सूकरिकावदान, पृ० १९०।
२. सूकरिकावदान, पृ० १९१।
३. सूकरिकावदान, पृ० १९३।

थे। लोगों द्वारा सन्तानार्थ देवाराधन किए जाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। निःसन्तान व्यक्ति के चिन्तातुर होने पर उसके सुहृद्-संबन्धी एवं बान्धव-गण उसे "देवताराधनं कुरु। पुत्रस्ते भविष्यतीति।" का आश्वासन पूर्ण सन्देश देते थे।[1] सन्तान-प्राप्त्यर्थं उस समय शिव, वरुण, कुबेर, वासवादि तथा अन्य भी कई अनेक देवताओं की उपासना की जाती थी, जैसे आराम-देवता, वन-देवता, चत्वर-देवता, शृंगाटक-देवता और बलिप्रतिग्राहिक-देवता।[2]

धनद-समान रत्नाश्रय होने पर भी मित्र, पुत्र-शोक से व्यथित था। वह प्रचलित लोक-प्रवादानुसार धनद, वरुण, कुबेर, शंकर, जनार्दन, पिता-महादि देवता विशेष से पुत्र याचना करता है। रुद्र, चक्रायुध [विष्णु], वज्रधर [इन्द्र], स्रष्टा [ब्रह्मा], मकरध्वज, मयूरासन गिरिसुतापुत्र [षण्मुख], शंखदलावदात-सलिला गंगा आदि की शरण ग्रहण करता है तथा साथ ही ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान देता है।[3]

शिवेतर-क्षय के लिए भी देवाराधन प्रचलित था। विपत्ति से आक्रान्त होने पर जिस मनुष्य की जिस देव में भक्ति होती थी, वह उससे तत्प्रशमनार्थ याचना करता था। जम्बु-द्वीप लौटते समय तिमिंगि-लोत्पन्न मरण-भय प्रत्युपस्थित होने पर जीवन का कोई अन्य उपाय न देख वणिग्जन शिव, वरुण, कुबेर, महेन्द्र, उपेन्द्रादि देवों से परित्राणार्थ याचना करते हैं।[4]

एक अन्य स्थल पर, महासमुद्रावतरण करने पर वहाँ उपस्थित महा-कालिकावात के भय से त्रस्त, दारुकर्णी के साथ गये हुए वणिग्-जन अपनी रक्षा के लिए इस प्रकार देवता याचन करते हैं—

"शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्माद्या
सुरमनुजोरगयक्षदानवेन्द्राः।

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
२. वही, पृ० २८६।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६२-४६३।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३।

ब्रह्मन् येन सत्येन मया दारकस्यार्थायोभौ स्तनौ परित्यक्तौ, न राज्यार्थं न भोगार्थं न स्वगार्थं न शक्रार्थं न राज्ञां चक्रवर्तिनां विषयार्थं नान्यत्राहमनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुध्य अदान्तान् दमयेयम् अमुक्तान्, मोचयेयम्, अनाश्वस्तानाश्वासयेयम्, अपरिनिर्वृतान् परिनिर्वापयेयम्, तेन सत्येन सत्यवचनेन स्त्रीन्द्रियमन्तर्धाय पुरुषेन्द्रियं प्रादुर्भवेत् ।"[1]

और ऐसा कहते ही वह एक पुरुष हो जाती है और उसका नाम रूपावती से रूपावत कुमार हो जाता है ।

"नगरावलम्बिकावदान" में देवेन्द्र शक्र यह सोचते हैं कि पुण्य और अपुण्य के अप्रत्यक्षदर्शी होने पर भी मनुष्य दान देते हैं और पुण्य करते हैं, फिर मैं पुण्यों का प्रत्यक्षदर्शी और अपने पुण्य-फल में स्थित हुआ भी क्यों न दान दूँ और पुण्य करूँ ? और ऐसा विचार कर वह कृपणवीथी में जा निवास के लिए अपना घर बनाता है । स्वयं कुविन्द का वेश और शची, कुविन्द-स्त्री का वेश धारण कर निवास करती हैं । भिक्षाचरण करते हुए आयुष्मान् महाकाश्यप के पात्र को वह दिव्य सुधा से भर देता था ।[2]

तत्कालीन देवताओं में निम्नलिखित की गणना की गई है—

(१) शिव[3]
(२) वरुण[4]
(३) कुवेर[5]
(४) वासव[6]
(५) धनद[7]
(६) शंकर[8]

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०६ ।
२. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२-५३ ।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, पूर्णावदान, पृ० २५ ।
४. वही, पृ० १ ।, वही, पृ० २५ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३ ।
५. वही, पृ० १ ।, वही, पृ० २५ ।, वही, पृ० ४६३ ।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६ ।
७. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३ ।
८. पूर्णावदान, पृ० २५ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३ ।

(७) जनार्दन[1]
(८) पितामह[2]
(९) रुद्र[3]
(१०) चक्रायुध[4]
(११) वज्रधर[5]
(१२) स्रष्टा[6]
(१३) मकरध्वज[7]
(१४) गिरिसुतापुत्र[8]
(१५) गंगा[9]
(१६) महेन्द्र[10]
(१७) उपेन्द्र[11]
(१८) यक्ष[12]
(१९) आराम-देवता[13]
(२०) वन-देवता[14]
(२१) चत्वर-देवता[15]

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९३।
२. वही, पृ० ४९३।
३. वही, पृ० ४९४।
४. वही, पृ० ४९४।
५. वही, पृ० ४९४।
६. वही, पृ० ४९४।
७. वही, पृ० ४९४।
८. वही पृ० ४९४।
९. वही, पृ० ४९४।
१०. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३।
११. वही, पृ० १४३।
१२. कोटिकर्णावदान, पृ० १।, पूर्णावदान, पृ० २२।
१३. वही, पृ० १।
१४ वही, पृ० १।
१५ [illegible]वदान, पृ० [illegible]।

(२२) शृंगाटक-देवता[1]
(२३) बलिप्रतिग्राहिक-देवता[2]
(२४) ब्रह्मा[3]
(२५) उरग[4]
(२६) यक्ष[5]
(२७) दानवेन्द्र[6]
(२८) वात[7]
(२९) पिशाच[8]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १।
२. वही, पृ० १।
३. वही, पृ० १।, पूर्णावदान, पृ० २५।
४. पूर्णावदान, पृ० २५।
५. वही, पृ० २५।
६. वही, पृ० २५।
७. वही, पृ० २५।
८. वही, पृ० २५।

को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए आया हुआ देख कर राजा बिम्बिसार भी ऐसा ही विचार प्रकट करते हैं।[1]

भगवान् बुद्ध शिष्य के उपहार से बढ़ कर और कोई उपहार नहीं समझते थे। वह भिक्षुओं से कहते हैं—"**नास्ति तथागतस्यैवंविधः प्राभृतो यथा विनेयप्राभृतः**"।[2]

[ख] **प्रव्रजित होने के नियम**

प्रव्रज्या के सर्व साधारणार्थ सुलभ होने पर भी कुछ ऐसे नियम थे, जिन की उपस्थिति, प्रव्रज्या-ग्रहण करने वाले के लिए, अपेक्षित थी। इन नियमों के अभाव में वह प्रव्रज्या-ग्रहण का अधिकारी नहीं होता था। ये नियम थे—

(१) संचित कुशल-कर्म
(२) शील संपन्नता
(३) माता-पिता की अनुज्ञा

(१) संचित कुशल-कर्म—पूर्व-जन्म में संचित यत्किंचित् कुशल-कर्म के होने के फलस्वरूप ही कोई व्यक्ति प्रव्रजित हो सकता था। महापन्थक के, पन्थक से प्रव्रज्या-ग्रहण करने के लिए, कहने पर वह कहता है—"अहं चूडः परमचूडो धन्वः परमधन्वः। को मां प्रव्राजयिष्यतीति"। तदनन्तर महापन्थक उस के संचित कुशल-मूलों को देख कर उसे प्रव्रजित करते हैं। उस को उपसंपदा ग्रहण कराते हैं और यह आदेश देते हैं—

> **"पापं न कुर्यान्मनसा न वाचा**
> **कायेन वा किंचन सर्वलोके।**
> **रिक्तः कामैः स्मृतिमान् संप्रजानन्**
> **दुःखं न स विद्यादनर्थोपसंहितम्॥"**[3]

(२) शील-संपन्नता—बुद्ध-शासन—संघ—में शील-संपन्न व्यक्ति ही प्रव्रज्या-ग्रहण का अधिकारी होता था। शील का सर्वोच्च स्थान था। शील-

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
२. वही, पृ० ४७३।
३. चूडापक्षावदान, पृ० ४३०।

[घ] प्रव्रज्याकालीन अनुष्ठेय कृत्य

प्रव्रज्या में ब्रह्मचर्य का प्रमुख स्थान है। प्रव्रज्या में कैसा आचरण करना चाहिए ? गृहपति-पुत्र के द्वारा यह प्रश्न करने पर भिक्षु कहता है—"भद्रमुख, यावज्जीवं ब्रह्मचर्यं चर्यते"।[१]

भगवान् के शासन में प्रव्रजित हो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से देव-मध्य में स्थिति प्राप्त होती है। चातुर्महाराजिक-देवोपपन्ना चन्द्रप्रभा अपने वहाँ पर स्थित होने के कारण का विचार करती है—"भगवतः शासने ब्रह्मचर्यं चरित्वेति"।[२]

[ङ] प्रव्रज्या-ग्रहण का फल

प्रव्रज्या-ग्रहण करने से मनुष्य कुशल-धर्मों का संचय करता है तथा इस जन्म में उपार्जित अकुशल-धर्मों का तनूकरण भी होता है एवं गुण-गणों की अधिगति होने पर वह संसरण-चक्र से सर्वथा विनिर्मुक्त हो जाता है।[३]

यदि मनुष्य इस जन्म में प्रव्रज्या-ग्रहण कर सर्वक्लेश-प्रहाण होने के फल-स्वरूप अर्हत्त्व का साक्षात्कार करता है, तो वही उसके दुःख का सर्वथा अन्त समझा जाता है। इसी तथ्य का उद्घाटन रुद्रायण करता है—

"यदि तावत्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करोषि, एष एव ते दुःखान्तः"।[४] चन्द्रप्रभा भी कहती है—"···भगवतोऽन्तिके प्रव्रज। यदि तावद् दृष्टधर्मा सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यसे, स एव तेऽन्तो दुःखस्य"।[५]

[च] प्रव्रज्या के कष्ट

वीतशोक द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण का प्रस्ताव सुनकर अति स्नेहवश राजा अशोक प्रव्रज्या के सामान्य कष्टों का वर्णन करता है—

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८७।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।
५. वही, पृ० ४७१।

"प्रव्रज्या खलु वैवर्णिकाभ्युपगतावासः, पांसुकूलं प्रावरणं परिभोगेऽभिहितं, आहारो भैक्ष्यं परकुले, शयनासनं वृक्षमूले तृणसंस्तरः पर्णसंस्तरः, ग्लाने सत्यपि भैषज्यमसुलभं पूतिमूत्रं च भोजनम्"[1] ।

---

1. दिव्यावदान, पृ० ३३३ ।

परिच्छेद ५

मैत्री

मैत्री-भावना चार ब्रह्म-विहारों में से एक है। अन्य ब्रह्म-विहार मुदिता, करुणा, उपेक्षा हैं, जिनका उल्लेख योग-सूत्र में है।[1] चित्त-विशुद्धि के ये उत्तम साधन हैं। योग के अन्य परिकर्मों की अपेक्षा इनकी यह विशेषता है कि ये परहित के भी साधन हैं।

जीवों के प्रति स्नेह एवं सुहृद्भाव प्रवर्तन मैत्री है। द्वेषाग्नि के उपशम के लिए मैत्री-भावना है, जिससे शान्ति का अधिगम होता है। मैत्री-भावना की सम्यक्-निष्पत्ति का परिणाम है—द्वेष (व्यापाद) का प्रतिघात।

अनुपमा राजा उदयन को श्यामावती के विरुद्ध उत्तेजित करती है। फलतः राजा उदयन धनुष चढ़ा कर क्रोधपूर्वक श्यामावती के पास जाते हैं। जब कोई स्त्री श्यामावती से कहती है कि राजा पर्यवस्थित हो धनुष लेकर आ रहे हैं, तो श्यामावती उन सबसे कहती है—"भगिन्यः, सर्वा यूयं मैत्रीं समापद्यध्वमिति"। श्यामावती प्रमुख पाँच सौ स्त्रियों के मैत्री-समापन्न होने के परिणाम स्वरूप ही राजा उदयन के द्वारा छोड़े गये दो बाण व्यर्थ हो जाते हैं। अन्ततः राजा उदयन श्यामावती पर प्रसन्न होते हैं और उसे यथेच्छ वर प्रदान करते हैं।[2]

कुणाल को जब यह ज्ञात होता है कि नेत्र-निष्कासन-कार्य उसकी विमाता तिष्यरक्षिता द्वारा प्रेरित था, तो उसकी किंचिदपि द्वेष-वुद्धि उसके प्रति जागृत नहीं होती, प्रत्युत् वह उसकी मनोरथ-सिद्धि से प्रसन्न होता है—

---

१ "मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम्", समाधिपाद ३३।

२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।

परिच्छेद ६

दान

दान देने की प्रवृत्ति लौकिक और पारलौकिक कल्याण का साधन मानी जाती थी। याचक को मुँहमाँगी वस्तु-प्रदान कर, उसका मनोरथ पूरा करना, दान का सर्वोच्च आदर्श था। नगरनिवासिनी देवता के द्वारा रौद्राक्ष ब्राह्मण को शिर न प्रदान करने की प्रार्थना किए जाने पर, सर्व परित्यागी एवं सर्वजन-मनोरथ-परिपूरक राजा चन्द्रप्रभ कहते हैं—'गच्छ देवते, यद्यागमिष्यति, अहमस्य दीर्घकालाभिलषितं मनोरथं परिपूरयिष्यामीति"। राजा चन्द्रप्रभ के दान की चरमावस्था वहाँ निखर उठती है, जब रौद्राक्ष ब्राह्मण उनसे शिर की याचना करता है और वे प्रसन्न हो कहते हैं—"हन्तेदं ब्राह्मण शिरोऽविघ्नतः साधु प्रगृह्यतामुत्तमाङ्गमिति"।[1]

राजा चन्द्रप्रभ के द्वारा रौद्राक्ष ब्राह्मण का मनोरथ पूरा किया जाना, महाभारत में सूर्यदेव के समझाने पर भी महादानी कर्ण के द्वारा ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को कवच-कुण्डल प्रदान करने की कथा का स्मरण दिलाता है।[2]

सार्थवाह मित्र अपने जीवन को "प्रहतार्णवोर्मिचपल" मानता है तथा अर्थ (धन) के प्रति उसकी मान्यता "वाताघातप्रनृत्तप्रवरनरवधूनेत्रपक्ष्माग्रलोल" है। अतः, वह कारुण्यवश अनाथ, कृपण, क्लीव एवं आतुरों को प्रभूत मात्रा में धन प्रदान करता है।[3]

राजा अपनी सर्व सम्पत्ति का दान धर्म एवं संघ के लिए कर अर्धामलकेश्वर हो जाता था। राजा अशोक ८४००० धर्म-राजिका की

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०१।

२. वनपर्व

३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३।

"दानाधिकरणमहायानसूत्र"[1] में भगवान् ने भिक्षुओं से ३७ प्रकार के दान का वर्णन किया है, जिसका आश्रयण श्रावक किसी स्थिति-विशेष की प्राप्ति के लिए करता है।

चाहे जितनी उर्वरा भूमि क्यों न हो, किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि जिस दिन व्यक्ति बीज-वपन करे, उसी दिन उस को फल की प्राप्ति भी हो जाय। प्रत्येक वस्तु के फलीभूत होने में समय की अपेक्षा होती है। किन्तु प्रत्येक बुद्ध को पिण्डपात देने का फल इतनी शीघ्र प्रादुर्भूत हो जाता है कि गृहपति-परिवार का सर्व मनोरथ उसी दिन पूर्ण हो गया। यह समाचार ज्ञात होने पर राजा ब्रह्मदत्त इस की महत्ता प्रकट करता है—

"अहो गुणमयं क्षेत्रं सर्वदोषविवर्जितम्।
यत्रोप्तं बीजमद्यैव अद्यैव फलदायकम्॥"[2]

दान का पुण्य दो प्रकार का है—वह पुण्य जो त्याग-मात्र से ही प्रसूत होता है (त्यागान्वय-पुण्य) और वह पुण्य जो प्रतिग्रहीता द्वारा दान-वस्तु के परिभोग से संभूत होता है (परिभोगान्वय-पुण्य)[3]। ब्राह्मणदारिका के सक्तु-भिक्षा प्रदान करने पर भगवान् बुद्ध इस कुशल-मूल से उस का तेरह कल्पों तक विनिपात न होने तथा अन्त में प्रत्येक-बोधि का व्याकरण करते हैं।[4] यह त्यागान्वय-पुण्य का उदाहरण है।

एक मानिका मात्र भक्त शेष रह जाने पर भोजनार्थ आगत प्रत्येक बुद्ध को देख राजा कनकवर्ण उस अवशिष्ट मानिका भक्त को सहर्ष उन को समर्पित कर देते हैं। भगवान् प्रत्येक-बुद्ध उस पिण्ड-पात को खाते हैं और उसी क्षण विविध प्रकार के खादनीय भोजनीय पदार्थों तथा रत्नों की वृष्टि होने लगती है।[5] यह परिभोगान्वय पुण्य का उदाहरण है।

दान देते समय दाता के मन में जैसी भी भावना होती है, तदनुरूप ही वह तदुत्थित फल का अधिगम करता है।[6]

---

१. दानाधिकरणमहायानसूत्र, पृ० ४२६।
२. मेण्ढकावदान, पृ० ८४।
३. "बौद्ध धर्म दर्शन"—आचार्य नरेन्द्र देव, पृ० २५५।
४. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४३।
५. कनकवर्णावदान, पृ० १८३-१८४।
६. मेण्ढकावदान, पृ० ८३।, कनकवर्णावदान, पृ० १८३।

कुशल धर्म के अनुष्ठान में किंचिदपि प्रमाद अपेक्षित नहीं । रौद्राक्ष ब्राह्मण को शिर प्रदान करने के लिए मणिरत्नगर्भ उद्यान में जाते समय सहस्रों प्राणी राजा चन्द्रप्रभ के पीछे-पीछे जाते हैं। किन्तु वह अपने प्रजा-जनों को "अप्रमादः करणीयः कुशलेषु धर्मेष्विति" इस सन्देश द्वारा ही आश्वासन देता है।[1] वस्तुतः यही मानव के लिए चिरन्तन आर्य-सन्देश है, जिस की अक्षय ज्योति वैदिक-काल मे प्रारम्भ हो कर रामायण, महाभारत काल से होते हुए बौद्ध-काल तक आई और अपने अक्षुण्ण पावन प्रकाश से समस्त मानव-जगत के कर्म-पथ को प्रदीप्त करती रही।

()

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान पृ० [illegible] ।

परिच्छेद ७

सत्य-क्रिया

सत्य-क्रिया में अत्यधिक विश्वास था। इस के द्वारा विशुद्ध पुरुष अपनी विशुद्धि का प्रख्यापन करता था। "त्याग करते समय या त्याग करने के बाद किसी भी प्रकार का अन्यथाभाव मेरे चित्त में नहीं हुआ," इस सत्यता का प्रमाण रूपावती देवेन्द्र शक्र को देती हुई कहती है, "हे ब्रह्मन्, मैंने केवल दारक के रक्षार्थ अपने दोनों स्तनों का परित्याग किया है, न कि राज्यार्थ, भोगार्थ, स्वर्गार्थ, शक्रार्थ या चक्रवर्ती राजाओं के विषयार्थ। इस का एक मात्र प्रयोजन तो यह है कि मैं अनुत्तर-सम्यक्-सम्बोधि प्राप्त कर अदान्तों को आत्म-निग्रहार्थ प्रेरित करूँ, बन्धन-युक्त मनुष्यों को निर्मुक्त करूँ, अनाश्वस्तों को आश्वस्त करूँ एवं उद्विग्नों को सुखी करूँ। इस सत्य-क्रिया (सत्य-वचन) से मेरी स्त्रीन्द्रिय का अन्तर्धान हो कर पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो जाय"। यह कहते ही उस की स्त्रीन्द्रिय अन्तर्हित हो कर पुरुषेन्द्रिय प्रादुर्भूत हो जाती है।[1]

कुणाल राजा अशोक से कहता है कि माता के प्रति उस का कभी दुष्ट चित्त नहीं हुआ। तीव्र अपकार करने पर भी उस को क्रोध नहीं और न दुःख का लेश।

> राजन्न मे दुःखमलोऽस्ति कश्चि—
> तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः।
> मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
> येनोद्धृते मे नयने स्वयं हि।
> तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव—
> न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः॥"[2]

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०६।

२. कुणालावदान, पृ० २७०।

इस सत्य-क्रिया से उसे पूर्वाधिक सुन्दर नेत्र-युग्म प्रादुर्भूत हो जाते हैं। अपने स्वामी के द्वारा किये गये सत्य-वचन के प्रभाव से ही रूपावती के दोनों स्तन पूर्ववत् प्रादुर्भूत हो जाते हैं।[1]

ये सब बातें आज के युग में भले ही निरी कल्पना सी प्रतीत हों, परन्तु इन से उस समय के लोगों की इस में अटूट आस्था प्रकट होती है।

O

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

परिच्छेद ८

षट् पारमिता

महायान के अनुसार बुद्धत्व के साधक को षट्-पारमिताओं का ग्रहण करना चाहिए। पारमिता का अर्थ है – पूर्णता। दानादि गुणों में पूर्णता प्राप्त योगी को, दानादि पारमिता पारंगत कहते हैं। षट्-पारमिताओं में इन की गणना की गई है[1]—

(१) दान-पारमिता
(२) शील-पारमिता
(३) क्षान्ति-पारमिता
(४) वीर्य-पारमिता
(५) ध्यान-पारमिता
(६) प्रज्ञा-पारमिता

यही बोधिसत्त्व-शिक्षा है और इसी को बोधिचर्या कहते हैं।

(१) **दान-पारमिता** – सर्व वस्तुओं का सब जीवों के लिए दान कर अन्त में दान-फल का भी परित्याग कर देना "दानपारमिता" है। इस में बोधिसत्त्व आत्मभाव का भी त्याग कर देता है। राजा चन्द्रप्रभ सर्वपरित्यागी था। रौद्राक्ष ब्राह्मण के द्वारा शिर की याचना किये जाने पर वह सहर्ष उस से कहता है—

"हन्तेदं ब्राह्मण शिरोऽविघ्नतः साधु प्रगृह्यतामुत्तमाङ्गमिति।[2]

(२) **शील-पारमिता**—विरति-चित्तता की गणना शील में की गई है। अतः प्राणातिपातादि सर्व गर्हित कार्यों से चित्त का विरमण ही शील-पारमिता है।

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २००-२०१।

(३) क्षान्ति-पारमिता—परापकार की अवस्था में भी चित्त का शान्त रहना—दौर्मनस्य का अनुद्भव या चित्त की अकोपनता का ही नाम क्षान्ति-पारमिता है। अत्यन्त अनिष्ट का आगमन होने पर भी दौर्मनस्य की प्रतिपक्ष-भूता मुदिता का सयत्न आश्रयण ही इस के अधिगम का एकमात्र उपाय है। इस संबन्ध में हमें पूर्ण की कथा प्राप्त होती है। भगवान् बुद्ध ने संक्षिप्त अववाद की देशना के अनन्तर पूर्ण से पूछा कि तुम कहाँ विहार करना चाहते हो? पूर्ण ने उत्तर दिया—श्रोणापरान्तक जनपद में। भगवान् ने कहा—किन्तु वहाँ के लोग चण्ड स्वभाव के और परुषवाची हैं। यदि वे लोग तुम पर आक्रोश करें, तुम्हारा अपवाद करें, तो तुम क्या सोचोगे? पूर्ण ने कहा—मैं सोचूँगा कि वे लोग भद्र हैं, जो मुझे हाथ से या ढेले से नहीं मारते, केवल परुष वचन कहते हैं। बुद्ध ने पुनः प्रश्न किया—यदि वे हाथ से या ढेले से मारें, तो क्या सोचोगे? पूर्ण ने कहा—मैं सोचूँगा कि वे लोग भद्र हैं, जो मुझे हाथ से या ढेले से ही मारते हैं, दंड या किसी शस्त्र से नहीं मारते। बुद्ध ने फिर पूछा—यदि वे दण्ड या शस्त्र से मारें? पूर्ण ने कहा—तब मैं सोचूँगा कि वे भद्र पुरुष और स्नेही हैं, जो मेरे प्राण नहीं हर लेते। बुद्ध ने पुनः जानना चाहा और यदि वे प्राण हर लें? पूर्ण ने कहा—तब मैं सोचूँगा, वे भद्र एवं स्नेही पुरुष हैं, जो मुझे इस दुर्गन्धपूर्ण शरीर (पूतिकाय) से अनायास ही मुक्त कर रहे हैं। पूर्ण से यह सुन कर भगवान् ने कहा—

"साधु साधु पूर्ण, शक्यस्त्वं पूर्ण अनेन क्षान्तिसौरत्येन समन्वागतः श्रोणापरान्तकेषु जनपदेषु वस्तुं श्रोणापरान्तकेषु वासं कल्पयितुम्। गच्छ त्वं पूर्ण, मुक्तो मोचय, तीर्णस्तारय, आश्वस्त आश्वासय, परिनिर्वृतः परिनिर्वापयेति"।[1]

इसी प्रकार कुणाल भी दूसरे के द्वारा किये गये अपकार का शान्तभाव से सहन करते हैं, और उसके प्रति कोई प्रत्यपकार-बुद्धि नहीं उत्पन्न होने देते। जब उनको नेत्र-निष्कासन कार्य तिष्यरक्षिता-प्रयुक्त होने का ज्ञान होता है, तब वह प्रमुदित चित्त हो कहते हैं—

"चिरं सुखं जीव त्वं तिष्यरक्षिते
आयुर्बलं पालयते च देवी।

---

१. पूर्णावदान, पृ० [illegible]।

संप्रेषितोऽयं हि यया प्रयोगो
यस्यानुभावेन कृतः स्वकार्यः ॥"[१]

राजा अशोक जब तिष्यरक्षिता को अनेक प्रकार के दंड देने की बात सोचते हैं, तब भी कुणाल तिष्यरक्षिता के प्रति अपने चित्त में किंचिदपि दौर्मनस्य का लेश तक न होने का प्रमाण देता है—

"राजन्न मे दुःखमलोऽस्ति कश्चि—
त्तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः ।
मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
येनोद्धृते मे नयने स्वयं हि ।
तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव-
न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः ॥"[२]

(४) वीर्य-पारमिता

कुशल कर्म में उत्साह का होना, वीर्य-पारमिता है। संसार-दुःख का तीव्र अनुभव होने पर ही कुशल कर्म में प्रवृत्ति होती है। रत्नशिखी जीर्ण, आतुर (रुग्ण) और मृत व्यक्ति को देख, संसार की अनित्यता समझ कर वन का आश्रयण करता है। और जिस दिन वन का आश्रयण करता है उसी दिन अनुत्तर ज्ञान का अधिगम कर लेता है।[३] उपगुप्त जब वासवदत्ता गणिका को इस अशुचि शरीर का ज्ञान कराते हैं, तब उसे कामधातु में वैराग्य उत्पन्न होता है और वह बुद्ध, धर्म और संघ का शरण ग्रहण करती है।[४]

रूपावती स्थाम, बल और वीर्य का आश्रय कर अपने दोनों स्तनों को शस्त्र द्वारा काट कर दारक के रक्षार्थ स्त्री को अर्पित कर देती है।[५]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६।
२. वही, पृ० २७०।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२०-२२१।
५. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

(५) ध्यान-पारमिता

चित्त की अत्यन्त एकाग्रता का अधिगम ध्यान-पारमिता है। मनुष्य को एकान्तवास प्रिय होना चाहिए और तदर्थ उसे वन का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

> "त्यक्त्वा कामनिमित्तमुक्तमनसः शान्ते वने निर्गताः
> पारं यान्ति भवार्णवस्य महतः संश्रित्य मार्गप्लवम् ॥"[1]

(६) प्रज्ञा-पारमिता

भूत-तथता का नाम प्रज्ञा-पारमिता है अर्थात् यथार्थ ज्ञान को प्रज्ञा-पारमिता कहते हैं।

सर्व धर्मों का अनुपलम्भ प्रज्ञा-पारमिता है।

> **"योऽनुपलम्भः सर्वधर्माणां सा प्रज्ञापारमितेत्युच्यते"[2]**

समाहित चित्त में ही प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है। इन षट्पारमिताओं में प्रज्ञा-पारमिता की ही प्रधानता पाई जाती है। प्रज्ञा का अधिगम होने पर दानादि अन्य पांच पारमिताओं का अन्तर्भाव इसी में हो जाता है।

O

---

१. पांशुप्रदानावदान. पृ० [illegible]।
२. अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता

परिच्छेद ९

रूपकाय और धर्मकाय

महायान के त्रिकाय—धर्म-काय, रूप-काय या निर्माण-काय, और संभोग-काय-में से रूप या निर्माण-काय और धर्म-काय "दिव्यावदान" में पाये जाते हैं। "पांशुप्रदानावदान" में उपगुप्त मार से कहते हैं—"मैने भगवान् का धर्मकाय देखा है। उनका रूप-काय नहीं।" फलतः मार उपगुप्त को भगवान् के उस रूप को दिखाने के लिए तत्पर हो जाता है, जो उसने प्राचीन-काल में शूर को वंचित करने के लिए धारण किया था।[1] धर्मकाय प्रवचन-काय है। यह बुद्ध का स्वाभाविक काय है। सर्वास्तिवाद की परिभाषा के अनुसार बुद्ध में नैर्माणिकी ऋद्धि थी। वह अपने सदृश अन्य रूप का निर्माण कर सकते थे। एक बार राजा प्रसेनजित ने बुद्ध से ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलाकर तीर्थिकों की निर्भर्त्सना करने के लिए कहा। बुद्ध ने कहा—"आज से सातवें दिन तथागत सबके समक्ष महाप्रातिहार्य दिखलायेंगे। जेतवन में मण्डप बनाया गया। तीर्थिक एकत्र हुए और सातवें दिन भगवान् मण्डप में आये। भगवान् के काय से रश्मियाँ निकलीं और उन्होंने समस्त मण्डप को सुवर्ण-कान्ति से अवभासित किया। भगवान् ने अनेक प्रातिहार्य दिखलाकर महाप्रातिहार्य दिखलाया। ब्रह्मादि देवता भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा कर उनके दक्षिण ओर, शक्रादि देवता बायीं ओर बैठ गये। नन्द, उपनन्द नाग राजाओं ने शकट-चक्र के परिमाण का सहस्रदल रत्नदण्ड वाला सुवर्ण-कमल निर्मित किया। भगवान् पद्मकर्णिका में पर्यंक-बद्ध हो बैठ गये। पद्म के ऊपर दूसरा पद्म निर्मित किया। उस पर भी भगवान् पर्यंक-बद्ध हो बैठे दिखाई पड़े। इस प्रकार भगवान् ने बुद्ध-पिंडी अकनिष्ठ-भवन पर्यन्त निर्मित की। कुछ बुद्ध-निर्माण खड़े

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२५-२२६।

थे, कुछ बैठे थे, कुछ ज्वलन, तपन, वर्षण, विद्योतन प्रातिहार्य दिखला रहे थे। कुछ प्रश्न पूछ रहे थे।'[1]

इस कथा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बुद्ध प्रातिहार्य द्वारा अनेक बुद्धों की सृष्टि कर लेते थे। इन को बुद्ध-निर्माण कहा गया है।

---

१ प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ९२-१००।

परिच्छेद १०

सांप्रदायिक झगड़े

तत्कालीन अन्य समसामयिक साम्प्रदायिक-संस्थाओं का बौद्धों से विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। एक समय भगवान् राजगृह में विहार कर रहे थे। उस समय पूर्ण-काश्यप, मस्करी गोशालीपुत्र, संजयी वैरट्टीपुत्र, अजित केशकम्बल, ककुद कात्यायन और निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र—ये ६ तीर्थिक राजगृह की कुतूहलशाला में एकत्र हो कहने लगे कि जब श्रमण गौतम का लोक में उत्पाद नहीं हुआ था तब राजा, ब्राह्मण, गृहपति, नैगम, जानपद, श्रेष्ठी एवं सार्थवाह सभी हम लोगों का आदर-सत्कार करते थे। किन्तु जबसे श्रमण गौतम का लोक में उत्पाद हुआ है तबसे हम लोगों का लाभ-सत्कार सर्वथा समुच्छिन्न हो गया है। हम लोग ऋद्धिमान् और ज्ञानवादी हैं। श्रमण गौतम भी अपने को ऐसा समझते हैं। उनको चाहिए कि हमारे साथ ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलावें। जितने ऋद्धि-प्रातिहार्य वह दिखलायेंगे, उसके दुगुने हम दिखलायेंगे।[1]

श्रावस्ती में, भगवान् के महाप्रातिहार्य दिखलाने से भग्न-मनोरथ तीर्थिकों में से कुछ भद्रंकर नगर में जाकर रहने लगे थे। भगवान् के उस नगर में आने का समाचार सुनकर वे पुनः व्यथित हो परस्पर कहते हैं—पहले हम लोग श्रमण गौतम के द्वारा मध्यदेश से निकाले गये और अब यदि वह यहाँ आयेंगे, तो निश्चय ही यहाँ से भी निकाल दिये जाँयगे। इसलिये कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर वे कुलोपकरणशाला में जाकर "धर्मलाभ हो" "धर्मलाभ हो" चिल्लाते हैं और कहते हैं कि हम लोगों ने तुम सबकी संपत्ति देखी है, विपत्ति नहीं देख सकते। श्रमण गौतम वज्र गिराता हुआ और बहुतों को बिना पुत्र और बिना पति का करता हुआ आ रहा है। यह सुन जब वे उन तीर्थिकों से वहाँ रहने के लिए कहते हैं, तो वे कहते हैं—

---

१. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८६।

"भद्रंकरसामन्तकेन सर्वजनकायमुद्वास्य भद्रंकरं नगरं प्रवासयत। शाद्वलानि कृषत। स्थण्डिलानि पातयत। पुष्पफलवृक्षं छेदयत। पानीयानि विषेण दूषयत"।

तीर्थिक इस शर्त पर वहाँ रहने को तैयार होते हैं—

"न केनचिच्छ्रमणं गौतमं दर्शनायोपसंक्रमितव्यम्। य उपसंक्रामति, स षष्टिकार्षापणो दण्ड्य इति"।[1]

तीर्थिकों का कहना था कि श्रमण शाक्यपुत्रीयों को मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। उनकी मान्यता थी—

"भुक्त्वान्नं सघृतं प्रभूतपिशितं दध्युत्तमालंकृतं
शाक्येष्विन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यः प्लवेत्सागरे।"[2]

एक समय जब भगवान् बुद्ध राजगृह में भिक्षाचरण करते रहते हैं, तब सुभद्र गृहपति उनको देख अपनी आपन्नसत्त्वा पत्नी को लेकर भगवान् के पास पहुँचता है और उनसे पूछता है—"भगवन् इयं मे पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। किं जनयिष्यतीति?" भगवान् उत्तर देते हैं—"गृहपते, पुत्र जनयिष्यति, कुलमुद्योतयिष्यति, दिव्यमानुषीं श्रियं प्रत्यनुभविष्यति, मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यति।"

यह समाचार ज्ञात होने पर भूरिक सोचता है कि हम लोगों का एक ही भिक्षा-कुल है, उसको भी श्रमण गौतम अपने अनुकूल करना चाहते हैं। वह गौतमोक्त बातों की गणना करने पर जब उन्हें यथार्थ पाता है तो सोचता है कि यदि मैं गौतमोक्त बातों का अनुमोदन करता हूँ तो गृहपति की गौतम के प्रति श्रद्धा हो जायगी। अतः वह हाथों को परिवर्तित कर एवं मुख का निरीक्षण कर कहता है; "गृहपति, इसमें कुछ सत्य है और कुछ झूठ।" गृहपति के यह पूछने पर कि इसमें क्या सत्य और क्या मृषा है, वह कहता है—"गृहपति, यह जो बतलाया कि पुत्र को उत्पन्न करेगी। यह सत्य है। कुल को उद्योतित करेगा, यह भी सत्य है। इसे अग्निज्योति कहते हैं। क्योंकि यह सत्त्व मन्दभाग्य है, जो उत्पन्न होते ही अग्नि से कुल को जला देगा। वह

१. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७८-७९।
२. वीतशोकावदान, पृ० २७२।

कहना कि दिव्यमानुषी श्री का अनुभव करेगा, यह मृषा है। गृहपति, क्या तुमने किसी मनुष्य को दिव्य-मानुषी श्री का अनुभव करते देखा है? यह जो बतलाया कि मेरे शासन में प्रव्रजित होगा, यह सत्य है। भला जब 'इसके पास न भोजन होगा और न वस्त्र तो निश्चय ही श्रमण गौतम के पास प्रव्रज्या-ग्रहण करेगा। सर्व क्लेश-प्रहाण हो जाने से अर्हत्त्व का साक्षात्कार करेगा, यह मृषा है। जब श्रमण गौतम को ही सर्व क्लेश-प्रहाण होने से अर्हत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई, तो भला इसको कहाँ से होगी" ?[1]

उक्त वाक्यों में, जिन बातों की अयथार्थता प्रकट की गयी है, उनके समर्थन में उपस्थित किए गये तर्क गौतम के प्रति स्पष्ट रूप से द्वेष-बुद्धि के परिचायक हैं। इतना ही नहीं भूरिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर जब सुभद्र अपनी पत्नी को मार डालता है, तब यह ज्ञात होने पर निर्ग्रन्थक हृष्ट-पुष्ट प्रमुदित हो राजगृह की रथ्या, वीथी, चत्वर, शृंगाटकादिकों में चारों तरफ़ घूम-घूम कर कहते हैं—

"शृण्वन्तु भवन्तः। श्रमणेन गौतमेन सुभद्रस्य गृहपतेः पत्नी व्याकृता—पुत्रं जनयिष्यति, कुलमुद्योतयिष्यति, दिव्यमानुषीश्रियं प्रत्यनुभविष्यति, मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यति। सा च कालगता शीतवनश्मशानमभिनिर्हृता। यस्य तावद्वृक्षमूलमेव नास्ति, कुतस्तस्य शाखापत्रफलं भविष्यतीति" ?[2]

O

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२।
२. वही, पृ० १६३।

परिच्छेद ११

नरक

निम्न प्रकार के नरकों का उल्लेख किया गया है[1]—

(१) संजीव

(२) कालासूत्र

(३) संघात

(४) रौरव

(५) महारौरव

(६) तपन

(७) प्रतापन

(८) अवीचि

(९) अर्बुद

(१०) निरर्बुद

(११) अटट

(१२) हहव

(१३) हुहुव

(१४) उत्पल

(१५) पद्म

(१६) महापद्म

---

१. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१। अशोकवर्णावदान, पृ० ८६। रुद्रायणावदान, पृ० ४८१।

ये नरक दो प्रकार के हैं—

(१) उष्ण-नरक

(२) शीत-नरक

इनमें संजीव, कालसूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन और अवीचि ये आठ उष्ण-नरक तथा अर्बुद, निरर्बुद, अटट, हहव, हुहुव, उत्पल, पद्म और महापद्म ये आठ शीत-नरक हैं।

o

परिच्छेद १२

तीन यान

"दिव्यावदान" में मुमुक्षुओं के तीन यान प्रधान रूप से प्रचलित थे।

(१) श्रावक- यान

(२) प्रत्येक बुद्ध-यान

(३) अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि या बोधिसत्त्व-यान

(१) श्रावक-यान

श्रावकों में ज्ञानोदय बुद्धादि की देशना के अनन्तर होता था। अतः उन के ज्ञान को औपदेशिक कहते थे। श्रावक पृथग्जन से उत्कृष्ट होते थे; क्योंकि पृथग्जन त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की सिद्धि में संलग्न रहते थे, जबकि श्रावक इन से सर्वथा विमुख। श्रावक केवल अपने ही मोक्ष के उपाय-चिन्तन में रत रहता है, परहित साधन उस का लक्ष्य नहीं।

(२) प्रत्येक बुद्ध-यान

इन का ज्ञान अनौपदेशिक या प्रातिभ होता है। ये पूर्व संस्कारों के परिणाम स्वरूप स्वतः ही बोधि-लाभ करते हैं। प्रत्येक-बुद्ध भी केवल अपने ही बुद्धत्व प्राप्ति की चेष्टा करते है और उसे वे वस्तुतः प्राप्त भी करते हैं, किन्तु सर्व प्राणियों के बुद्धत्व-प्राप्ति में उन का भी कोई प्रयास नहीं। जिस समय बुद्ध का उत्पाद नहीं हुआ रहता, उस समय संसार के हीन-दीनों पर अनुकम्पा करने वाले प्रत्येक-बुद्ध का प्रादुर्भाव लोक में होता है। प्रत्येक-बुद्ध की धर्म-देशना कायिकी होती है, वाचिकी नहीं। वे अपने अधिगत ज्ञान-बल से, बिना शब्दोच्चारण के ही प्राणियों को कुशलानुष्ठान के प्रति प्रेरित करते हैं। इन की ऋद्धि शीघ्र ही "पृथग्जना-वर्जनकरी" होती है।[1]

---

१. मेण्ढकावदान, पृ० ८७, ८३ ।, सहसोद्गतावदान, पृ० १८३ ।

(३) अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि या बोधिसत्त्व-यान

बोधिसत्त्व का आदर्श, स्वदुःख-निवृत्ति न हो कर निरन्तर पर-सेवा-निरत रहना है। वह सब जीवों को दुःख से विमुक्त करना चाहता है। बोधिसत्त्व संसार के प्राणियों के निस्तार के लिए अपने निर्वाण तक की कामना नहीं करता। वह सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति केवल अपने लिए नहीं करता, अपितु अनेक प्राणियों को क्लेश-बन्धनों से निर्मुक्त करने के लिए। ऐसी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिन में पारमिताओं की साधना के लिए उपासक अपने जीवन का भी उत्सर्ग कर देता है। उस का प्रयोजन ऐहिक या पारलौकिक सुख न हो कर, अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि का अधिगम होता है; जिस में वह अदान्तों को आत्म-निग्रहार्थ प्रेरित कर सके, बन्धन युक्त मनुष्यों को निर्मुक्त कर सके, अनाश्वस्तों को आश्वस्त कर सके एवं उद्विग्नों को सुखी कर सके।[१]

पूर्ण के रूप में हमें एक ऐसे भिक्षु का साक्षात्कार होता है जो धर्म-प्रचार को सब से अधिक महत्व देता है। पूर्ण का आदर्श बोधिसत्त्व है। वह क्षान्ति-पारमिता से समन्वागत है। जब वह श्रोणापरान्तक में उपदेश के लिए जाता है, तब एक लुब्धक जो मृगया के लिए जा रहा था, इस मुण्डित भिक्षु को देख कर, उसे अपशकुन समझता है और उसे धनुष चढ़ा कर मारने दौड़ता है। पूर्ण ने उस से कहा, तुम मुझे मारो, मृग का वध मत करो।[२]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०२।, रूपावत्यवदान, पृ० ३०६, ३१२।

२. पूर्णावदान, पृ० २४।

परिच्छेद १३

धर्म-देशना

धर्म-देशना मूलतः दो प्रकार की थी--

(१) दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, विषयस्य - दोषों की कथा (कामेष्वादीनव), काम-विषयों से निःसरण, विष्य-भय एवं संक्लेशव्यवदान की कथा द्वारा धर्म-देशना ।

(२) सामुत्कर्षिकी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्म-देशना ।

दूसरी सामुत्कर्षिकी धर्म-देशना, जिस में चतुरार्य-सत्य का उपदेश रहता है, वह भिक्षु होने योग्य व्यक्ति को ही दी जाती थी, जिन की शेमुपी, प्रथम कोटि की धर्म-कथाओं की देशना द्वारा प्राञ्जल, विदग्ध एवं निर्मल हो चुकती थी । भगवान् बुद्ध प्रकृति को पहले प्रथम कोटि की देशना द्वारा समुत्तेजित, संप्रहर्षित, विनीवरण चित्त एवं ऋजु चित्त वाली कर लेते हैं ! तदनन्तर जब वह सर्व-प्रकारेण योग्य हो जाती है, तब उन सामुत्कर्षिकी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्म-देशना करते हैं ।[1]

चार आर्य-सत्य हैं—

(१) दुःख

(२) दुःख-हेतु (समुदय)

(३) दुःख-निरोध

(४) दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)

पातंजल योग-सूत्र में मोक्ष-शास्त्र को चिकित्सा-शास्त्र के समान चतुर्व्यूह बतलाया गया है । जिस प्रकार रोग, रोग का कारण, आरोग्य

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९ ।

और औषध ये चार चिकित्सा-शास्त्र के प्रतिपाद्य हैं उसी प्रकार हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय ये चार मोक्ष-शास्त्र के प्रतिपाद्य हैं।[1]

भगवान् की देशना में प्रतीत्य-समुत्पाद का भी ऊँचा स्थान है। प्रतीत्य-समुत्पाद का अर्थ है, हेतु-फल परम्परा। अर्थात् इस के होने पर (इस हेतु या प्रत्यय से) यह होता है; इस की उत्पत्ति से, उस की उत्पत्ति होती है। इसके न होने पर, वह नहीं होता; इसके निरोध से, उस का निरोध होता है। इस प्रतीत्य-समुत्पाद के बारह अंग हैं—

(१) अविद्या
(२) संस्कार
(३) विज्ञान
(४) नाम-रूप
(५) षडायतन
(६) स्पर्श
(७) वेदना
(८) तृष्णा
(९) उपादान
(१०) जाति
(११) भव
(१२) जरा-मरण,दुःख-दौर्मनस्य-उपायास

भगवान् अनुलोम-प्रतिलोम देशना द्वारा प्रतीत्यसमुत्याद के द्वादशांगों का उपदेश देते हैं। अनुलोम-देशना द्वारा भगवान् उत्पत्ति-क्रम को समझाते हैं अर्थात् किस-किस कारण से किस-किस की उत्पत्ति होती है। प्रतिलोम-देशना द्वारा वह यह दिखलाते हैं कि जरा-मरणादि दुःखों का क्या कारण है ?

o

---

१. पातंजल योग-सूत्र, साधनपाद, सूत्र १६

परिच्छेद १४

कर्म-पथ

पाँच प्रकार की गतियों का उल्लेख हुआ है[1]—

(१) नरक
(२) तिर्यक्
(३) प्रेत
(४) देव
(५) मनुष्य

इनमें प्रथम तीन गतियाँ—नरक, तिर्यक् और प्रेत—निम्न कोटि की हैं और अन्तिम दो—देव और मनुष्य—उच्च कोटि की हैं।

कर्म-पथ दो प्रकार के कहे गये हैं—अकुशल और कुशल।[2]

अकुशल कर्म-पथ—

(१) प्राणातिपात
(२) अदत्तादान
(३) काममिथ्याचार
(४) मृषावाद
(५) पैशुन्य
(६) पारुष्य
(७) संभिन्नप्रलाप
(८) अभिध्या
(९) व्यापन्नचित्तता
(१०) मिथ्यादृष्टि

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८५-१८६।
२. वही, पृ० १८६-१८७।

कुशल कर्म-पथ--

(१) प्राणातिपात-विरति
(२) अदत्तादान-विरति
(३) काममिथ्याचार-विरति
(४) मृषावाद-विरति
(५) पैशुन्य-विरति
(६) पारुष्य-विरति
(७) संभिन्नप्रलाप-विरति
(८) अनभिध्या
(९) अव्यापन्नचित्तता
(१०) सम्यक्-दृष्टि

उपर्युक्त दस अकुशल कर्म-पथों के अत्यधिक आसेवन के कारण ही नारक (नरक-गति वाले) उत्पाट, अनुपाट, छेदन, भेदनादि दुःखों का अनुभव करते हैं। इन्हीं दस अकुशल कर्म-पथों के आसेवन के परिणाम स्वरूप ही तिर्यक्-गति वाले अन्योन्यभक्षणादि दुःखों का अनुभव करते हैं और मात्सर्य युक्त एवं कंजूस होने से प्रेत-गति वाले क्षुत्तृपादि दुःखों का अनुभव करते हैं।[1]

उपर्युक्त दस कुशल कर्म-पथों के अत्यधिक आसेवन से देव-गति वाले दिव्य स्त्री, ललित विमान, उद्यानादि सुखों का अनुभव करते हैं तथा इन्हीं दस कुशल कर्म-पथों का तनुतर एवं मृदुतर रूप से आसेवन कर मनुष्य-गति वाले हस्ति, अश्व, रथ, अन्न, पान, शयन, आसन, स्त्री एवं ललितोद्यान-सुख का अनुभव करते हैं।[2]

O

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८६।
२. वही, पृ० १८७।

परिच्छेद १५

कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त

[क] पूर्व स्वकृत कर्मों पर विश्वास

अपने पूर्व जन्मों में किए गये कर्मों पर लोगो का दृढ़ विश्वास था। जीव स्व-अनुष्ठित कर्मों के अनुसार ही फल का भोग करता है। भिक्षाटन करते हुए प्राप्त आहारों से तृप्ति का अनुभव न करता हुआ, धर्मरुचि सोचता है—

"किं मया कर्म कृतं यस्य कर्मणो विपाकेन न कदाचित् वितृप्यमान आहारमारागयामि"[1] ?

कांचनमाला को जब अपने पति कुणाल के नेत्रोद्धरण का समाचार ज्ञात होता है, तो वह मूर्छित हो जाती है एवं अश्रु-मोचन करती हुई नाना प्रकार से विलाप करती है। उसको इस प्रकार से विकल होते देख कुणाल कहते हैं कि यह तो अपने ही कृत-कर्मो का फल है। अतः शोक करना उचित नहीं। वह उसे सान्त्वना प्रदान करने के निमित्त इस सत्य का उद्घाटन करते हैं—

"कर्मात्मकं लोकमिदं विदित्वा
दुःखात्मकं चापि जनं हि मत्वा।
मत्वा च लोकं प्रियविप्रयोगं
कर्तुं प्रिये नार्हसि वाष्पमोक्षम् ॥"[2]

पिता अशोक के द्वारा इस दुष्कर्म को करने वाले व्यक्ति का नाम पूछे जाने पर भी कुणाल कहता है—

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
२. कुणालावदान, पृ० २६७।

"स्वयंकृतानामिह कर्मणां फलं
कथं तु वक्ष्यामि परैरिदं कृतम् ॥"[१]

वीतशोक आभीर को अपनी ओर तलवार लिए हुए आते देख सोचता है कि "स्वयं-कृत कर्मों का ही यह फल उपस्थित हुआ है"।[२]

भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् बुद्ध कहते हैं कि पूर्व-जन्म में जब यह वीतशोक लुब्धक था, तब इसने प्रत्येक-बुद्ध को मृग-वध करने में बाधक जान, तलवार द्वारा उसका वध कर दिया था। इसी कारण यह शस्त्र द्वारा मारा गया।[३]

[ख] कर्मों का फल अवश्यंभावी

मनुष्य जैसे कर्मों का अनुष्ठान करता है, तदनुरूप फलों का ही वह भोक्ता भी होता है। किसी एक व्यक्ति द्वारा कृत कर्मों के फल की प्राप्ति तदितर प्राणी को नहीं हो सकती। अन्तःपुर के अग्नि से जलने पर श्यामावती ऋद्धि द्वारा आकाश में जा कर कहती है—

"भगिन्यः, अस्माभिरेवैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययान्योघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । अस्माभिरेव कृत्यान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ?"[४]

भगवान् बुद्ध का कहना है कि प्राणी को किसी भी किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। अन्तरिक्ष, समुद्रमध्य और पर्वत-गह्वर में ऐसा कहीं भी कोई स्थल नहीं है, जहाँ स्थित होने पर प्राणी को कर्मों का फल न भोगना पड़े।

"नैवान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स पृथिवीप्रदेशो
यत्र स्थितं न प्रसहेत कर्म ॥"[५]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६९।
२. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
३. वही, पृ० २७८।
४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।
५. वही, पृ० ४५७। रुद्रायणावदान, पृ० ४७५।

राजा अशोक, जब कुणाल से नेत्र-निष्कासन कर्म करने वाले का नाम पूछते हैं, तो वह कहता है —

"राजन्नतीतं खलु नैव शोच्यं
किं न श्रुतं ते मुनिवाक्यमेतत् ।
यत्कर्मभिस्तेऽपि जिना न मुक्ताः
प्रत्येकबुद्धाः सुदृढैस्तथैव ॥"[1]

भगवान् बुद्ध ने बार-बार कहा है कि उपचित-कर्मों का विपाक न बाह्य पृथिवी-धातु में, न अप-धातु में, न तेज-धातु में और न वायु-धातु में होता है; अपितु वे शुभाशुभ कृत-कर्म तो उपात्त स्कन्ध-धातु-आयतन के पुंज-भूत स्थूल देह में ही फलीभूत होते हैं।

'न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥"[2]

[ग] कर्म-विपाक

"दिव्यावदान" की सभी कथाओं से यह सुष्ठुरूपेण परिज्ञात होता है कि कर्म बीज के सदृश है, जो अपने फल का उत्पाद अवश्य करता है। कर्म का विप्रणाश नहीं। जब समय आता है और प्रत्यय-सामग्री उपस्थित होती है, तब कर्मों का विपाक होता है।

एकान्त कृष्ण-कर्मों का विपाक एकान्त कृष्ण, एकान्त शुक्ल-कर्मों का विपाक एकान्त शुक्ल तथा व्यतिमिश्र-कर्मों का विपाक व्यतिमिश्र होता है। अतएव भगवान् बुद्ध एकान्त कृष्ण एवं व्यतिमिश्र कर्मों का त्याग कर केवल एकान्त शुक्ल-कर्मों के अनुष्ठान का आदेश भिक्षुओं को सदा देते हैं—

"..........इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्" ।[3]

१. कुणालावदान, पृ० २६६ ।

२. अशोकवर्णावदान, पृ० ८८ ।, सहसोद्गतावदान, पृ० १८४ ।

३. सहसोद्गतावदान, पृ० १८४ ।

परिच्छेद १९

चिरन्तन सत्य

[क] शरीर की अपावनता

उपगुप्त वासवदत्ता गणिका को उपदेश देते हैं कि नाना-विध कामोत्पादक वस्त्राभरणों से आच्छादित इस प्राकृत कुणप में रति रखने वाला निश्चय ही अपंडित, अज्ञानी एवं विगर्हणीय है। वस्तुतः यह शरीर त्वचा, रुधिर, माँस, चर्म, एवं सहस्रों शिराओं से युक्त है। इस शरीर के दौर्गन्ध्य का निवारण करने के लिए अनेक प्रकार की सुगन्धियों का प्रयोग किया जाता है। इस शरीर के वैकृत्य (विकलता) को विविध वस्त्राभूषणों से छिपाया जाता है। इस शरीर से निर्गत स्वेद, मलादि अशुचियों का निर्हरण जल से किया जाता है। इस अमेध्य एवं अशुभ शरीर का सेवन केवल कामीजन ही करते हैं। पंडित लोग इस के प्रति संरक्त चित्त वाले नहीं होते।

'वहिर्भद्राणि रूपाणि दृष्ट्वा बालोऽभिरज्यते।
अभ्यंतरविदुष्टानि ज्ञात्वा धीरो विरज्यते॥'[1]

प्राज्ञधी इस शरीर का पैर से भी स्पर्श नहीं करता। वस्तुतः यह लोक मोह-संवर्धन करने वाला है, केवल देखने में भव्य-रूप है। इस प्रकार की असद्-वस्तु में सद्-दृष्टि का होना ही अविद्या है, जो सर्वक्लेशप्रसवा मूलरूपा है। अतः भगवान् भिक्षुओं को उपदेश करते हैं—

"..........तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं, यद्दग्धस्थूणायामपि चित्तं न प्रदूषयिष्यामः प्रागेव सविज्ञानके काये। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्"।[2]

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२०।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।

[ख]जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु :

"सर्व क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥"[१]

मिलन के बाद विछोह संसार का एक शाश्वत् सिद्धान्त है । इस का अपवाद कहीं नहीं मिलता। मैत्रकन्यक ब्रह्मोत्तर नगर में ३२ अप्सराओं के द्वारा प्रभूत सत्कार एवं विषय-सुख का भोग प्राप्त कर उन से कहता है—

"इच्छामि गन्तुं तदहं भवन्त्यो
मा मत्कृते शोकह्रदे शयीध्वम् ।
संपातभद्राणि हि कस्य नाम
विश्लेषदुःखानि न सन्ति लोके ॥"

और जो इस विश्लेष-दुःख से दुःखित होते हैं, वे मूढ़-मति हैं । वह इस उपनिषद् सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है—

वाताहताम्भोधितरंगलोले
ये जीवलोके वहुदुःखभीमे ।
विश्लेषदुःखाय रतिं प्रयान्ति
तेषां परो नास्ति विमूढचेताः ॥"[२]

संयोग का वियोग में परिणत होना एक स्वाभाविक नियम है । अतः संसार की अनित्यता को ज्ञात कर धीर पंडित जन उन में विकृत नहीं होते । प्रव्रज्या-ग्रहण के लिए वीतशोक का अचल निश्चय जान कर राजा अशोक स्नेह-वश रोने लगते हैं । इस पर वीतशोक इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं—

"संसारदोलामभिरुह्य लोलां
यदा निपातो नियतः प्रजानाम् ।
किमर्थमागच्छति विक्रिया ते
सर्वेण सर्वस्य यदा वियोगः ॥"[३]

---

१. पूर्णावदान, पृ० १७ ।
२. "मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०८—५०९ ।
३. वीतशोकावदान, पृ० २७५ ।

रुद्रायण कहते हैं— न भैषज्य, न धन, न ज्ञाति-जन, न विद्या, न बल और न शौर्य ही प्राणी को इस विकराल मृत्यु से बचा सकते हैं। वह फिर कहते हैं—

"देवापि सन्तीह महानुभावाः
स्थानेष्विहोच्चेषु चिरायुषोऽपि ।
आयुःक्षयान्तेऽपि ततश्च्यवन्ते
मुच्येत को नेह शरीरभेदात् ॥
राज्यानि कृत्वापि महानुभावा
वृष्ण्यन्धकाः कुरवश्च पाण्डवाश्च ।
संपन्नचित्ता यशसा ज्वलन्तः
ते न शक्ता मरणं नोपगन्तुम् ॥
न संयमेन तपसा न राजन्
न कर्मणा वीर्यपराक्रमेण वा ।
न वित्तपूर्णैर्न धनैरुदारैः
शक्यं कदाचिन्मरणाद्विमोक्तुम् ॥
नैवान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स पृथिवीप्रदेशो
यत्र स्थितं न प्रसहेत मृत्युः ॥"[1]

तत्त्ववादियों की, नेत्र-निष्कासन के कठोर आदेश का श्रवण कर भी, कुणाल— "पश्यानित्यमिदं सर्वं नास्ति कश्चिद् ध्रुवे स्थितः"—इस उक्ति का स्मरण करता हुआ निरपराधी होने पर भी प्रसन्नता-पूर्वक अपने दोनों नेत्र निकलवा डालता है।[2]

मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही दुःखों का भोग करता है। इस संसरण-क्रम में उसका कोई साथी नहीं होता—

"एको ह्ययं जायते जायमान—
स्तथा म्रियते म्रियमाणोऽयमेक ।

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७५ ।
२. कुणालावदान, पृ० २६५ ।

एको दुःखाननुभवतीह जन्तु—
न विद्यते संसरतः सहायः ॥"[1]

इस सत्यता का ज्ञान प्राप्त कर, जो सर्व संग-परित्याग कर प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेते हैं, वे पुनः जन्म-ग्रहण नहीं करते—

"एतच्च दृष्ट्वेह परिव्रजन्ति
कुलायकास्ते न भवन्ति सन्तः।
ते सर्वसंगानभिसंप्रहाय
न गर्भशय्यां पुनरावसन्ति ॥"[2]

इस प्रकार संसार की अनित्यता एवं भयावह और दुःख उत्पन्न करने वाले दृश्यों के द्वारा लोक की निःसारता को समझ कर पण्डित-जन वन का आश्रयण करते थे। वासवराजा का पुत्र रत्नशिखी जीर्ण, आतुर (रुग्ण) एवं मृत दृश्यों को देख वन में चला जाता है और जिस दिन वह वन में जाता है, उसी दिन अनुत्तर ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह रत्नशिखी सम्यक् संबुद्ध के नाम से सुप्रसिद्ध हो जाता है।[3]

वस्तुतः जो काम से विमुख होकर शान्त वन में निकल जाते हैं, वे ही संसार-सागर को पार करते हैं—

"त्यक्त्वा कामनिमित्तमुक्तमनसः शान्ते वने निर्गताः
पारं यान्ति भवार्णवस्य महतः संश्रित्य मार्गप्लवम् ॥"[4]

O

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।
२. वही, पृ० ४७६।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२१।

छठा अध्याय

शिक्षा

परिच्छेद १ शिक्षार्थी

परिच्छेद २ शिक्षक

परिच्छेद ३ शिक्षा के विषय

परिच्छेद ४ शिक्षा-प्रणाली

परिच्छेद ५ स्त्री-शिक्षा

परिच्छेद १

शिक्षार्थी

शिक्षार्थी को "माणवक"[1] की संज्ञा दी जाती थी। छात्रों का कर्त्तव्य गुरु के प्रति भक्ति-भाव रखना तथा उनकी सेवा-शुश्रूषा करना होता था।

छात्र-जीवन में आत्म-अनुशासन, इन्द्रियों के संयम पर विशेष बल दिया जाता था। विद्या का अर्जन एक तपस्वी की भाँति करना पड़ता था। अध्ययन-काल तक शिष्य पूर्ण-रूपेण ब्रह्मचर्य का पालन करता था। राजा वासव के द्वारा पंच महाप्रदान अर्पित किये जाने पर माणवक सुमति उनमें से चार को ग्रहण करता है, किन्तु एक सर्वालंकरण विभूषिता कन्या का परित्याग कर देता है और कहता है—"अहं ब्रह्मचारी"।[2]

अध्ययन को समाप्त कर लेने पर ही विवाह का प्रश्न उठता था, तब वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर "चीर्णव्रत" हो जाता था।[3]

O

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३७।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६,४२२।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।
३. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।

परिच्छेद २

शिक्षक

शिक्षकों में आचार्य[१], उपाध्याय[२] और अध्यापक[३] की गणना हुई है। ये वेद, शास्त्र, इतिहास, लिपि आदि अनेक विषयों की शिक्षा देते थे। इनके अतिरिक्त "परिव्राजक" भी थे, जो घूम-घूमकर निर्वेद और वैराग्य का प्रचार करते थे।[४] भिक्षु[५] और भिक्षुणियाँ[६] भी उपदेश देने का कार्य करती थीं। मंत्रों को धारण करने वाले की "मंत्रधर" संज्ञा थी।[७] शिक्षकों की एक संज्ञा "विद्यावादिक" भी थी।[८]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२६।
३. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
४. पूर्णावदान, पृ० २४।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।
६. वही, पृ० ४७०।
७. शार्दूलकर्णावदान पृ० ३१६।
८. माकन्दिकावदान पृ० ४५४।

परिच्छेद ३

शिक्षा के विषय

उस समय अध्ययन के कई विषय प्रचलित थे, जिन में लोग शिक्षा प्राप्त कर पूर्ण निष्णात होते थे। तत्कालीन शिक्षा-विषयों को चतुर्धा विभाजित किया जा सकता है—

(१) बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विषय

लिपि[१], संख्या[२], गणना[३], मुद्रा[४], उद्धार[५], न्यास[६], निक्षेप[७], वस्तु परीक्षा[८], दारुपरीक्षा[९], रत्नपरीक्षा[१०], हस्तिपरीक्षा[११], अश्वपरीक्षा[१२], कुमारपरीक्षा[१३],

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ । कुणालावदान, पृ० २४६ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७ ।
२. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७ ।
३. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, वही, पृ० ४२७ ।
४. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, वही, पृ० ४२७ ।
५. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
६. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
७. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
८. वही, पृ० २ । वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
९. पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ ।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान पृ० ३५ ।
११. पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ ।
१२. वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
१३. वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।

कुमारी या कुमारिका परीक्षा[१], वेद[२] (१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद), वेद[३], (सांगोपांग), वेद[४] (सरहस्य), वेद[५] (सनिघण्टकैटभान्), वेद[६] (साक्षरप्रभेदान्), इतिहास[७], पदको (शो ?)[८], व्याकरण[९], कल्पाध्याय[१०], यज्ञमंत्र[११], लोकायत[१२], आयुर्वेद[१३], अध्यात्म[१४], भाष्यप्रवचन[१५], ब्राह्मणिक[१६], न्याय[१७]।

(२) शारीरिक शिक्षा एवं युद्ध-शिक्षण सम्बन्धी विषय

हस्तिशिक्षा[१८] या हस्तिग्रीवा[१९], अश्वपृष्ठ[२०], रथ[२१], शर[२२], धनुष[२३],

---

१. पूर्णावदान, पृ० १६।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
३. वही, पृ० ३१८, ३१६।
४. वही, पृ० ३१८, ३१६।
५. वही, पृ० ३१८, ३१६।
६. वही, पृ० ३१८, ३१६।
७. वही, पृ० ३१८, ३१६।
८. वही, पृ० ३१८, ३१६।
९. वही, पृ० ३१८, ३१६।
१०. वही, पृ० ३१८, ३१६।
११. वही पृ० ३१८, ३१६।
१२. वही, पृ० ३१८, ३१६, ३२८।
१३. वही, पृ० ३२८।
१४. वही, पृ० ३२८।
१५. वही, पृ० ३२८।
१६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
१७. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
१८. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
१९. कुणालावदान, पृ० २४६।
२०. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
२१. वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४६।
२२. वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४६।
२३. वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४६।

प्रयाण[1], निर्याण[2], अंकुशग्रह[3], पाशग्रह[4]. तोमरग्रह[5], यष्टिबन्ध[6], मुष्टिबन्ध[7], पदबन्ध[8], शिखाबन्ध[9], दूरवेध[10], मर्मवेध[11], अक्षुण्ण वेध[12], दृढ़प्रहार[13]।

(३) ज्योतिष सम्बन्धी विषय

महापुरुषलक्षण[14], मृगचक्र[15], नक्षत्रगण[16], तिथिक्रमगण[17], कर्मचक्र[18], अंगविद्या[19], वस्त्रविद्या[20], शिवाविद्या[21] या शिवारुतम्[22], शकुनिविद्या[23],

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३५।
३. वही, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
४. वही, पृ० ३५।
५. वही, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
६. वही, पृ० ३५।
७. वही, पृ० ३५।
८. वही, पृ० ३५।
९. वही, पृ० ३५।
१०. वही, पृ० ३५।
११. वही, पृ० ३५।
१२. वही, पृ० ३५।
१३. वही, पृ० ३५।
१४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१८, ३१९।
१५. वही, पृ० ३२८।
१६. वही, पृ० ३२८।
१७. वही, पृ० ३२८।
१८. वही, पृ० ३२८।
१९. वही, पृ० ३२८।
२०. वही, पृ० ३२८।
२१. वही, पृ० ३२८।
२२. वही, पृ० ३२६।
२३. वही, पृ० ३२८।

राहुचरित,[१] शुक्रचरित[२], ग्रहचरित,[३] पक्षाध्याय[४], भूमिकम्पनिर्देश[५], व्याधिसमुत्थान[६], तिलकाध्याय[७], उत्पातचक्रनिर्देश[८], पुरुषपिन्य[९], पिटकाध्याय[१०], स्वप्नाध्याय[११], मासपरीक्षा[१२], खंजरीटकज्ञान[१३], पाणिलेखा[१४], वायसरुतम्[१५], द्वारलक्षण[१६], द्वादशराशि[१७], कन्यालक्षण[१८], लुङ्गाध्याय[१९], धूमिकाध्याय[२०]।

(४) धारणी एवं वशीकरण विद्या-विषय

१. षडक्षरी विद्या[२१]—षडक्षरी से यहाँ यह तात्पर्य नहीं कि इस में ६ अक्षर हों। अपितु यह एक धारणी ज्ञात होती है, जिस का कार्य बौद्ध-धर्म में,

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. वही, पृ० ३२८।
३. वही, पृ० ३२८।
४. वही, पृ० ३२८।
५. वही, पृ० ३५७।
६. वही, पृ० ३६४।
७. वही, पृ० ३६८।
८. वही, पृ० ३७१।
९. वही, पृ० ३८०।
१०. वही, पृ० ३८२।
११. वही, पृ० ३८५।
१२. वही, पृ० ३९३।
१३. वही, पृ० ३९४।
१४. वही, पृ० ३९९।
१५. वही, पृ० ४०२।
१६. वही, पृ० ४०५।
१७. वही, पृ० ४०७।
१८. वही, पृ० ४१०।
१९. वही, पृ० ४१४।
२०. वही, पृ० ४२०।
२१. वही, पृ० ३१५।

अथर्ववेदीय मंत्रों के समान, रक्षा करना था। इस का महायान-साहित्य में बड़ा स्थान था।

भगवान् बुद्ध आनन्द को षडक्षरी-विद्या का उपदेश देते हैं। वह, आनन्द के स्वयं अपने हित और सुख के लिए तथा भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं के हित और सुख के लिए इस विद्या को धारण करने तथा इसका उपदेश करने को कहते हैं। यह विद्या इस प्रकार वर्णित है—

"अण्डरे पाण्डरे कारण्डे केयूरेऽर्चिहस्ते खरग्रीवे बन्धुमति वीरमति धर विध चिलिमिले विलोडय विषाणि लोके। विष चल चल। गोलमति गण्डविले चिलिमिले सातिनिम्ने यथासंविभक्ते गोलमति गण्डविलायै स्वाहा।"

इस षडक्षरी-विद्या का इतना प्रभाव है कि भगवान् कहते है, "हे आनन्द! इस विद्या द्वारा स्वस्त्ययन-परित्राण किये जाने पर जो वध के योग्य होता है, वह केवल दण्ड से ही छूट जाता है, दण्डार्ह प्रहार से, प्रहारार्ह परिभाषण (अपशब्द) से, परिभाषणार्ह रोमहर्षण से और रोमहर्षणार्ह भी पुनः निर्मुक्त हो जाता है। हे आनन्द! देवलोक, मारलोक, ब्रह्मलोक, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजा, देव, मनुष्य तथा असुरों में, मैं कहीं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता जो, केवल पूर्वकर्म-विपाक को छोड़कर, इस षडक्षरी विद्या के द्वारा रक्षा किये जाने पर भी अभिभूत हो"।[1]

२. वशीकरण-विद्या[2]—इसके द्वारा लोगों को अपने अनुकूल किया जाता था। प्रकृति की माता आनन्द को अपने घर ले आने के लिए वशीकरण-मन्त्र का प्रयोग करती है। वह घर के आंगन के मध्य में गोबर का लेप लगा, वेदी बनाकर दर्भो (कुशों) को फैलाकर अग्नि प्रज्वलित करती है और निम्न मंत्रोच्चारण कर एक-एक अर्क (मदार) के पुष्प की आहुति देती जाती है—

"अमले विमले कुङ्कुमे सुमने। येन बद्धासि विद्युत्। इन्द्रो वा देवो वर्षति विद्योतति गर्जति। विस्मयं महाराजस्य समनिवर्धयितुं देवेभ्यो मनुष्येभ्यो गन्धर्वेभ्यः शिखिग्रहा देवा विशिखिग्रहा देवा आनन्दस्यागमनाय संगमनाय आनयनाय ग्रहणाय जुहोमि स्वाहा"॥[3]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१५-३१६।

२. वही, पृ० ३१४।

३. वही, पृ० ३१४।

यह प्रक्रिया अथर्ववेद के कौशिक-सूत्र से समता रखती है।

इनके अतरिक्त कुछ अन्य रहस्यमयी विद्याओं एवं मंत्रों के नाम ये हैं[1]—

(१) मैत्री
(२) शिखी
(३) संक्रामणी
(४) प्रक्रामणी
(५) स्तम्भनी
(६) कामरूपिणी
(७) मनोजवा
(८) गान्धारी
(९) घोरी
(१०) वशंकरी
(११) काकवाणी
(१२) इन्द्रजाल
(१३) भञ्जनी

इन उपर्युक्त विषयों में से कुछ का उल्लेख "ललितविस्तर" में भी प्राप्त होता है। "दिव्यावदान" और "ललितविस्तर" दोनों में प्राप्त होने वाले समान विषयों की तालिका निम्नलिखित है—

(१) लिपि
(२) मुद्रा
(३) गणना
(४) संख्या
(५) धनुर्वेद या धनुष्कलाप
(६) इषु

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३२।

(७) हस्तिग्रीवा

(८) रथ

(९) अश्वपृष्ठ

(१०) अंकुशग्रह

(११) पाशग्रह

(१२) मुष्टिवन्ध

(१३) शिखावन्ध

(१४) अक्षुण्णविधित्व

(१५) मर्मवेधित्व

(१६) स्वप्नाध्याय

(१७) शकुनिरुतम्

(१८) स्त्रीलक्षण

(१९) अश्वलक्षण

(२०) हस्तिलक्षण

(२१) कैटभ

(२२) निघण्टु

(२३) इतिहास

(२४) वेद

(२५) व्याकरण

(२६) यज्ञ

(२७) ज्योतिष

(२८) लोकायत

(२९) हेतुविद्या [न्याय दर्शन]

"दिव्यावदान" और "प्रबन्धकोश" में प्राप्त समान शिल्पों की सूची इस प्रकार है—

(१) लिखितन्

(२) गणितन्

(३) व्याकरणम्

(४) निघण्टुः

(५) रत्नपरीक्षा

(६) आयुधाभ्यासः

(७) गजारोहणम्

(८) तुरगारोहणम्

(९) मंत्रवादः

(१०) शाकुनम्

(११) वैद्यकम्

(१२) इतिहासः

(१३) वेदः

o

परिच्छेद ४

शिक्षा-प्रणाली

विद्याध्ययन के अधिकारी सभी जाति के लोग थे। इनमें ब्राह्मणों का ही केवल एकाधिकार नहीं था। मातंगराज त्रिशंकु अपने पुत्र शार्दूलकर्ण को वेद तथा अन्य शास्त्रों को पढ़ाता है।[1]

बालक के बड़े होने पर माता-पिता उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेज देते थे। लिपि या अक्षरों की शिक्षा जहाँ दी जाती थी, उसे लिपिशाला[2] या लेखशाला[3] कहते थे। चन्द्रप्रभ दारक जब लगभग आठ वर्ष का होता है, तो उसके माता-पिता उसे स्नान करा कर तथा अलंकारों से सज्जित कर अनेक अन्य दारकों के साथ लिपि सीखने के लिए भेजते हैं।[4]

भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षा देने के लिए पृथक्-पृथक् अध्यापक थे। "लिप्यक्षराचार्य"[5] लिपि एवं अक्षरों की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार "इष्वस्त्राचार्य" धनुष चलाने आदि की शिक्षा देते थे।[6]

अध्ययन-काल में छात्र ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता था। वैदिक-युग की तरह आचार्य-उपाध्याय को गुरु-दक्षिणा देने की भी प्रथा थी। सुमति और मति नाम के दो माणवक वेदाध्ययन समाप्त कर उपाध्याय को दक्षिणा देने के लिए चिन्तित होते हैं। सुमति राजा वासव के द्वारा प्रदान किये गये महाप्रदानों को ले जाकर अपने उपाध्याय को अर्पित करता है।[7]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
२. रुपावत्यवदान, पृ० ३१०।
३. स्वागतावदान, पृ० १०६।
४. रुपावत्यवदान, पृ० ३१०।
५. स्वागतावदान, पृ० १०५।
६. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।
७. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।

केवल नियमित शिक्षा-अवधि की समाप्ति पर ही शिक्षा की समाप्ति नहीं हो जाती थी। त्यागमय जीवन ग्रहण कर बहुजनहिताय एवं बहुजनसुखाय घूमते रहने वाले विद्वान को "चरक" कहा गया है। भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को घूमते रहने का आदेश दिया था। बुद्ध ने देशनानन्तर पूर्ण से कहा था—"जाओ, पूर्ण ! दूसरों को विमुक्त करो। दूसरों को संसार से पार लगाओ"।[१]

कथा-शैली भी तत्कालीन एक लोकप्रिय शिक्षा-प्रणाली थी। इस के द्वारा गुरु रोचक एवं उपदेशपूर्ण कथाएँ सुना कर शिष्य की शेमुषी को प्रांजल, विदग्ध एवं निर्मल करता था। भगवान् बुद्ध मातंगदारिका प्रकृति को धार्मिक कथाओं के द्वारा उपदेश देते हैं (संदर्शयति), एवं उस कथा के प्रति रुचि जागृत करते हैं (समादापयति), उत्तेजित करते हैं (समुत्तेजयति) और हर्ष उत्पन्न करते हैं (संप्रहर्षयति)। वे कथाएँ थीं—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्गकथा, विषयों में स्थित दोष की कथा (कामेष्वादीनवम्), काम-पलायन (नि:सरण), विषय-भय एवं संक्लेशव्यवदान की कथा।[२]

संदेह के लिए तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं[३]—'काङ्क्षा", "विमति" और "विचिकित्सा"। किसी प्रकार का सन्देह न रहने को "विगतकथंकथा" कहते थे।[४] किसी विषय को कण्ठस्थ कर लेना " पर्यवाप्" था।[५] छुट्टी (अनध्याय) के लिए "अपाठ" शब्द था।[६]

शारीरिक शक्ति का अर्जन उस समय की शिक्षा का उद्देश्य था। यही कारण है कि अन्य विषयों के अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा भी दी जाती थी। स्थविर उपगुप्त राजा अशोक को कपिलवस्तु के स्थानों को दिखलाते हुए कहते हैं—"यह बोधिसत्त्व की "व्यायामशाला" थी।"[७]

---

१. पूर्णावदान, पृ० २४।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
३. वही, पृ० ४२४।
४. वही, पृ० ३१७।
५. वही, पृ० ३१५।
६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२९।
७. कुणालावदान, पृ० २४९।

अध्ययन के इन अनेक विषयों के होने का यह अभिप्राय था कि छात्र केवल एक ही विषय का अध्ययन न कर, नाना-विध शास्त्रों में पारंगत हो। यह बहुज्ञत्व ही शिक्षा का सच्चा मापदंड था, जिस के कारण छात्र शिक्षा-क्रम में अनेक विषयों का अध्ययन करते थे।

"दिव्यावदान" में एक चाण्डाल के सर्व शास्त्रज्ञ होने की कथा प्राप्त होती है। मातंगराज त्रिशंकु एवं ब्राह्मण पुष्करसारी का वार्तालाप इस बात को प्रकट करता है कि ब्राह्मणत्व, जन्म पर या आचरण पर निर्भर करता है, ? मातंगराज त्रिशंकु अपने ज्ञान द्वारा ब्राह्मण पुष्करसारी को निरुत्तर एवं निष्प्रतिभ कर देता है।[1] वह उसे अनेक शास्त्र एवं विद्याओं का ज्ञान कराता है। अन्त में ब्राह्मण पुष्करसारी मातंगराज त्रिशंकु के प्रति अपने इन विचारों को व्यक्त करता है—

"भगवान् श्रोत्रियः श्रेष्ठस्त्वत्तो भूयान्न विद्यते।
सदेवकेषु लोकेषु महाब्रह्मा समो भवान्॥"[2]

इस प्रकार उस काल में ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में भेद-भाव का कोई स्थान नहीं था।

महाभारत की कथा के अनुसार भी, जाजलि चाण्डाल ने विश्वामित्र को सत्यानृत का उपदेश दिया था।

O

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३१।
२. वही, पृ० ४२२।

परिच्छेद ५

स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी। स्त्रियों को भी शिक्षा-ग्रहण करने का अधिकार था। "माकन्दिकावदान" में दारिकाओं के द्वारा, रात्रि में बुद्धवचन का पाठ किये जाने का उल्लेख है।[1]

तिष्यरक्षिता तक्षशिला-निवासियों के पास कुणाल के नेत्रोत्पाटनार्थ एक कपट-लेख लिखकर भेजती है।[2]

मातंगदारिका प्रकृति की माता, आनन्द के चित्त को आकृष्ट करने के लिए मंत्रों के जप द्वारा अग्नि में आहुति देती है।[3]

स्त्रियाँ संगीत-नृत्यादि ललित-कलाओं की शिक्षा भी ग्रहण करती थीं। राजा रुद्रायण की पत्नी चन्द्रप्रभा देवी नृत्य में अत्यन्त निपुण थीं। कहा गया है कि जब राजा रुद्रायण वीणा-वादन करते थे, तो उस समय चन्द्रप्रभा देवी नृत्य करती थीं।[4]

भगवान् बुद्ध ने मातंगदारिका प्रकृति को धर्म की शिक्षा दी थी।[5] भगवान् बुद्ध एवं अन्य बौद्ध-भिक्षुओं के द्वारा अनेक स्त्रियों को धर्म-शिक्षा देने का उल्लेख है।[6] आयुष्मान् पन्थक, भिक्षुणियों के अववादक (आध्यात्मिक

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।
२. कुणालावदान, पृ० २६४।
३. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।
५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
६. वही, पृ० ३१७।, पूर्णावदान, पृ० २४।

प्रवचन-कर्ता) के रूप में भगवान् बुद्ध के द्वारा नियुक्त किये गये थे।[1]

अन्तःपुर को धर्म-देशना भिक्षुणियाँ करती थीं। राजा रुद्रायण के अन्तःपुर को धर्मोपदेश देने के लिए शैला भिक्षुणी को भगवान् बुद्ध ने भेजा था।[2]
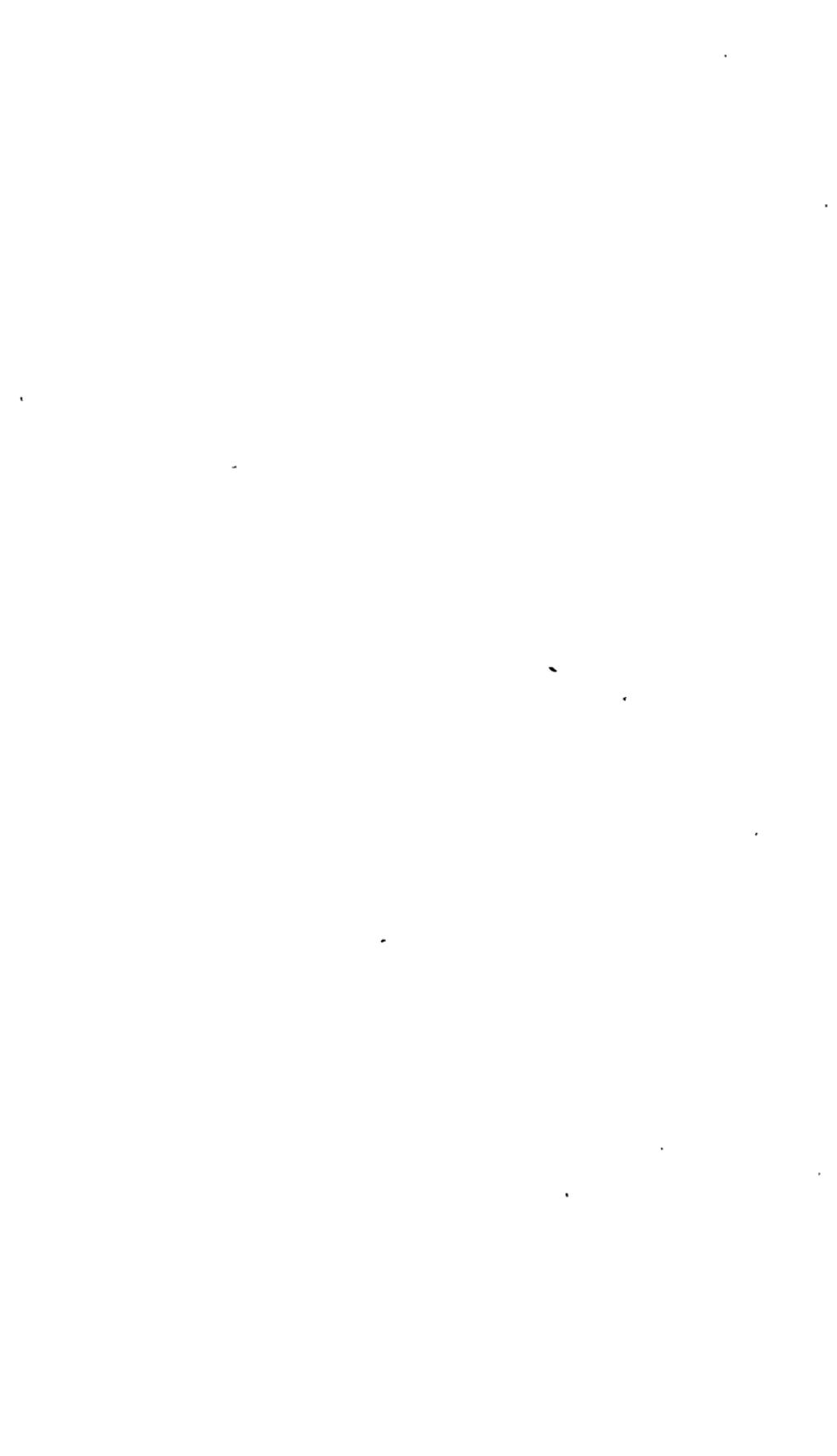
o

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३२।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।

सातवाँ अध्याय

विज्ञान

परिच्छेद १

नक्षत्र

[क] नक्षत्र-वंश

नक्षत्र २८ हैं—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी।[1]

ये २८ नक्षत्र चातुर्धा विभक्त हैं[2]—

(१) पूर्वद्वारकाणि

(२) दक्षिणद्वारकाणि

(३) पश्चिमद्वारकाणि, और

(४) उत्तरद्वारकाणि

कृत्तिका से लेकर आश्लेषा-पर्यन्त नक्षत्र "पूर्वद्वारकाणि" में, मघा से विशाखा-पर्यन्त "दक्षिणद्वारकाणि" में, अनुराधा से श्रवणा-पर्यन्त "पश्चिमद्वारकाणि" में तथा धनिष्ठा से भरणी-पर्यन्त नक्षत्र "उत्तरद्वारकाणि" में आते हैं।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३४।

२. वही, पृ० ३३४-३६।

संख्या	नक्षत्र-नाम	तारों की संख्या	संस्थानानि	मुहूर्तयोगानि	आहाराणि	दैवतानि	गोत्राणि
१.	कृत्तिका	षट्तारक	क्षुरसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	दध्याहार	अग्नि	वैश्यायनीय
२.	रोहिणी	पंचतारक	शकटाकृतिसंस्थान	पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तयोग	मृगमांसाहार	प्रजापति	भारद्वाज
३.	मृगशिरा	त्रितारक	मृगशीर्षसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	फलमूलाहार	सोम	मृगायणीय
४.	आर्द्रा	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	सर्पिमण्डाहार	सूर्य	हारीतायनीय
५.	पुनर्वसु	द्वितारक	पदसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मध्याहार	अदिति	वासिष्ठ
६.	पुष्य	त्रितारक	वर्धमानसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	मधुमण्डाहार	वृहस्पति	औपमन्यवीय
७.	आश्लेषा	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	पायस	सर्प	मैत्रायणीय
८.	मघा	पंचतारक	नदीकुब्जसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	तिलकृसराहार	पितृ	पिंगलायनीय
९.	पूर्वफल्गुनी	द्वितारक	पदकसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	विल्व	भव	गौतमीय
१०.	उत्तरफाल्गुनी	द्वितारक	पदकसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	गोधूमत्स्याहार	अर्यमा	कौशिक
११.	हस्त	पंचतारक	हस्तसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	श्यामाक	सूर्य	काश्यप
१२.	चित्रा	एकतारक	तिलकसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	मुग्दकृसर— घृतपूपाहार	त्वष्टृ	कात्यायनीय
१३.	स्वाती	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	मुद्गकृसरफलाहार	वायु	कात्यायनीय

१४. विशाखा	द्वितारक	विषाणसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	तिलपुष्पाहार	इन्द्राग्नि	शाखायनीय
१५. अनुराधा	चतुस्तारक	रत्नावलीसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	सुरामांसाहार	मित्र	आलम्बायनीय
१६. ज्येष्ठा	त्रितारक	यवमध्यसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	शालियवागू	इन्द्र	दीर्घकात्यायनीय
१७. मूल	सप्ततारक	वृश्चिकसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	मूलफलाहार	नैर्ऋति	कात्यायनीय
१८. पूर्वाषाढा	चतुस्तारक	गोविक्रमसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	न्यग्रोधकषाय	तोय	दर्भकात्यायनीय
१९. उत्तराषाढा	,,	गजविक्रमसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मधुलाजाहार	विश्व	मौद्गलायनीय
२०. अभिजित्	त्रितारक	गोशीर्षसंस्थान	षण्मुहूर्तयोग	वायुवाहार	ब्रह्म	ब्रह्मावतीय
२१. श्रवणा	,,	यवमध्यसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	पक्षिमांसाहार	विष्णु	कात्यायनीय
२२. धनिष्ठा	चतुस्तारक	शकुनसंस्थान	,,	कुलत्थयूषाहार	वसु	कौण्डिन्यायनीय
२३. शतभिषा	एकतारक	निष्कसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	यवागु	वरुण	ताण्ड्यायनीय
२४. पूर्वभाद्रपद	द्वितारक	पक्षकसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	मांसरुधिराहार	अहिर्बुध्न्य	जातूकर्ण्य
२५. उत्तरभाद्रपद	,,	,,	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मांसाहार	अर्यमा	धानञ्जयायणीय
२६. रेवती	एकतारक	[illegible]	[illegible]	[illegible]	पूष	[illegible]
२७. अश्विनी	द्वितारक	[illegible]	,,	[illegible]	गन्धर्व	[illegible]
२८. भरणी	त्रितारक	[illegible]	,,	[illegible]	यम	भार्गवीय

इन उपर्युक्त २८ नक्षत्रों में से छः—रोहिणी,पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपद—पैंतालीस मुहूर्तयोग के होते हैं। आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा ये पाँच पन्द्रह मुहूर्तयोग के होने हैं। अकेला अभिजित् छः मुहूर्तयोग का और शेष, तीस मुहूर्तयोग के होते हैं।

इन में से सात—तीन पूर्व वाले अर्थात् पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वभाद्रपदा और विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती—बल वाले कहे गये हैं। आर्द्रा, आश्लेषा और भरणी ये तीन दारुण हैं। चार सम्माननीय हैं—तीन उत्तर पद वाले अर्थात् उत्तारफल्गुनी, उत्ताराषाढा, उत्तारभाद्रपदा और रोहिणी। पाँच मृदु हैं—श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा ज्येष्ठा और मूला। पाँच धारणीय हैं—हस्ता, चित्रा, आश्लेषा. मघा और अभिजित। चार क्षिप्रकरणीय हैं—कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्या, अश्विनी।

परन्तु यहाँ पंच धारणीय में आश्लेषा का संकलन उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि ऊपर तीन दारुण नक्षत्रों में इस नक्षत्र (आश्लेषा) की गणना हो चुकी है। अट्ठाईस नक्षत्रों में से यहाँ रेवती नक्षत्र का नाम नहीं आया है। अतः यह समीचीन प्रतीत होता है कि पंच धारणीय में आश्लेषा के स्थान पर रेवती की गणना की जाय।

[ख] नक्षत्र-योग[1]

इन अट्ठाईस नक्षत्रों के तीन योग होते हैं—

(१) ऋषभानुसारी योग—इस में नक्षत्र आगे जाता है और चन्द्र पीछे।

(२) वत्सानुसारी योग—इस में चन्द्र आगे और नक्षत्र पीछे जाता है।

(३) युगनद्ध योग—इस में चन्द्र और नक्षत्र समान रूप से साथ-साथ जाते हैं।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३६।

[ग] नक्षत्र-व्याकरण[1]

नक्षत्र नाम, जिस में मनुष्य उत्पन्न हुआ है	तदनुसार मनुष्य की प्रकृति
कृत्तिका	यशस्वी
रोहिणी	सुभग एवं भोगवान्
मृगशिरा	युद्धार्थी
आर्द्रा	अन्न और पान का इच्छुक (लोल)
पुनर्वसु	कृषिमान् एवं गोरक्षक
पुष्य	शीलवान्
आश्लेषा	कामुक
मघा	मतिमान् एवं महात्मा
पूर्वफल्गुनी	अल्पायु
उत्तरफल्गुनी	उपवासशील एवं स्वर्गपरायण
हस्ति	चौर
चित्रा	नृत्यगीतकुशल एवं आभरणविधिज्ञ
स्वाती	गणक अथवा गणकमहामात्र
विशाखा	राजभट
अनुराधा	वाणिजक एवं सार्थ
ज्येष्ठा	अल्पायु एवं अल्पभोग
मूल	पुत्रवान् एवं यशस्वी
पूर्वाषाढा	योगाचार
उत्तराषाढा	शक्तेश्वर एवं कुलीन
अभिजित्	कीर्तिमान्
श्रवण	राजपूजित
धनिष्ठा	धनाढ्य
शतभिषा	मूलिक
पूर्वभाद्रपद	चौर सेनापति
उत्तरभाद्रपद	गन्धिक एवं गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववाणिजक
भरणी	वध्यघातक

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३८-३३९ ।

[घ] नक्षत्रों का स्थान-निर्देश[1]

नक्षत्र-नाम	स्थान-निर्देश
कृत्तिका	कलिङ्ग और मगध
रोहिणी	सर्वप्रजा
मृगशिरा	विदेह और राजोपसेवक
आर्द्रा	क्षत्रिय और ब्राह्मण
पुनर्वसु	सौपर्ण
पुष्य	सभी अवदात वस्त्र वाले और राजपदसेवकों में
आश्लेषा	नाग एवं हैमवत
मघा	गौडिक
पूर्वफाल्गुनी	चौर
उत्तरफाल्गुनी	अवन्ती
हस्त	सौराष्ट्रिक
चित्रा	द्विपद पक्षि
स्वाती	सभी प्रव्रज्या समापन्न लोगों में
विशाखा	औदक
अनुराधा	वाणिजक और शाकटिक
ज्येष्ठा	दौवालिक
मूला	पथिक
पूर्वाषाढा	वाह्लीक
उत्तराषाढा	काम्वोज
अभिजित्	सभी दक्षिणापथिक एवं ताम्रपर्णिक
श्रवण	घातक एवं चौर
धनिष्ठा	कुरु पांचाल
शतभिषा	मौलिक एवं आथर्वणिक
पूर्वभाद्रपद	गन्धिक एवं यवन काम्बोज
उत्तरभाद्रपद	गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववाणिजक
भरणी	भद्रपदकर्म एवं भद्रकायक

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३४१ ।

[ङ] नक्षत्रों के राहु-ग्रसित होने पर फल-विपाक[1]

नक्षत्र-नाम, जिसमें यदि चन्द्रग्रह हो	उनका नाम, जिन्हें उस चन्द्र-ग्रह के फलविपाक स्वरूप कष्ट उठाना पड़ता है
कृत्तिका	कलिङ्ग मगध को पीड़ा
रोहिणी	प्रजाओं को पीड़ा
मृगशिरा	
आर्द्रा	विदेह जनपद वासियों और [illegible]-
पुनर्वसु	सेवकों को पीड़ा।
पुष्य	
आश्लेषा	नागों एवं हैमवतों को कष्ट
मघा	गौल्मिक
पूर्वफाल्गुनी	चोर
उत्तरफाल्गुनी	अवन्ती
हस्त	सौराष्ट्रिक
चित्रा	पक्षी एवं द्विपद
स्वाती	सर्व प्रव्रज्या समापन्न लोग
विशाखा	औदक सत्त्व
अनुराधा	वणिक एवं शाकटिक
ज्येष्ठा	दौवारिक
मूल	अध्वग
पूर्वाषाढा	अवन्ती
उत्तराषाढा	काम्बोज एवं बाह्लीक
अभिजित्	दक्षिणापथिक एवं [illegible]
श्रवण	चोर एवं घातक
धनिष्ठा	कुरु पांचाल
शतभिषा	[illegible] एवं [illegible]
पूर्वभाद्रपद	[illegible] एवं [illegible]
उत्तरभाद्रपद	गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववणिज्
भरणी	भरुकच्छ

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३८५।

[च] ध्रुव, क्षिप्र, दारुण और अर्धरात्रिक नक्षत्र[1]

(अ) चार नक्षत्र ध्रुव हैं—

(१) उत्तरफल्गुनी
(२) उत्तराषाढा
(३) उत्तरभाद्रपदा
(४) रोहिणी

इन नक्षत्रों में बीज डालना चाहिए, गृह-निर्माण करना चाहिए एवं राज-अभिषेक करना चाहिए। इन नक्षत्रों में नष्ट, दग्ध, विद्ध एवं हृत वस्तुएँ शीघ्र ही स्वस्ति लाभ करती हैं। इन नक्षत्रों में उत्पन्न हुआ व्यक्ति धन्य, विद्यात्मा, यशस्वी, मंगलकारी, महाभोगी एवं महायोगी होता है।

(आ) चार नक्षत्र क्षिप्र कहे गये —

(१) पुष्य
(२) हस्त
(३) अभिजित्
(४) अश्विनी

इन नक्षत्रों में स्वाध्याय, मंत्रसमारंभ, प्रवासप्रस्थान, एवं गाय और घोड़ों को जोतना आदि कार्य करना चाहिए। चातुर्मास्य यज्ञसमारंभ करना चाहिए। इन नक्षत्रों में नष्ट, दग्ध एवं विद्ध वस्तुएँ शीघ्र ही स्वस्तिता को प्राप्त करती हैं। इन नक्षत्रों में उत्पन्न व्यक्ति मंगलकारी, यशस्वी, महाभोगी, राजा, महायोगी, ऐश्वर्यशाली, अत्यन्त उत्तम होता है। क्षत्रिय होने पर दान शील और यदि ब्राह्मण है तो पुरोहित होता है।

(इ) पांच नक्षत्र दारुण हैं—

(१) मघा
(२) पूर्वफल्गुनी

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३५३—३५४।

(३) पूर्वाषाढा

(४) पूर्वभाद्रपदा

(५) भरणी

इन नक्षत्रों में दग्ध, नष्ट एवं विद्ध हुई वस्तुएँ स्वगितता को नहीं प्राप्त होतीं।

[ई] छः नक्षत्र अर्धरात्रिक हैं—

(१) आर्द्रा

(२) आश्लेषा

(३) स्वाती

(४) ज्येष्ठा

(५) शतभिषा

(६) भरणी

रोहिणी, पुनर्वसु और विशाखा नवांश, पञ्चाम और दो क्षेत्र वाले हैं।

उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपदा उभयतो-विभागीय और पन्द्रह क्षेत्रों वाले हैं।

कृत्तिका, मघा, मूला, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वभाद्रपदा ये ६ पूर्वभागीय हैं।

मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी ये ९ नक्षत्र पश्चाद्भागीय एवं ३० मुहूर्त योग और क्षेत्र वाले हैं।

[छ] नक्षत्र जन्म-गुण[1]

नक्षत्र-नाम, जिसमें मनुष्य जन्म लेता है।	तदनुसार उसके गुण
कृत्तिका	तेजस्वी, साहसी, शूर, चण्ड, और प्रियवादा
रोहिणी	धनवान्, धार्मिक, व्यवसायी, स्थिर, शूर और सुख सदा ध्रुव
मृगशिरा	मृदु, सौम्य, दर्शनीय एवं विशेषतः स्त्री-प्रेमी
आर्द्रा	हिंसात्मा, चण्ड, अत्यन्त जल्पना करने वाला, रौद्रकर्मा
पुनर्वसु	अलोल (लालच न करने वाला), बुद्धिमान्, धर्मशील, जातक्रोध
पुष्य	ब्राह्मण तेजस्वी; क्षत्रिय राजा; वैश्य-शूद्र पूजित होते हैं
आश्लेषा	क्रोधी, क्रूर, दुर्मनुष्य, चण्ड
मघा	बहुप्रज्ञ, श्राद्धकर, बहुभाग्य, धनवान्, धान्यवान्, भोगी
पूर्वफाल्गुनी	अधर्मबुद्धिशील और गुरुदाराभिमर्दक
उत्तरफाल्गुनी	भोगवान्, विज्ञान में दिव्य ज्ञान वाला और सुभग
हस्त	शुद्धात्मा, सेनापति और अस्तेयकर्मा
चित्रा	चित्राक्ष, चित्रकथाकर, दर्शनीय, बहु-स्त्रीक, चित्रशील
स्वाती	बन्धुश्लाघी, विचक्षण, मृदु, पानशौण्ड, मित्रकारी, विचारवान्
विशाखा	तेजस्वी, द्रव्यवान्, महान्, शूर, विक्रमी, दक्ष एवं सुभग

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३६९-७०।

परिच्छेद २

मुहूर्त

६० क्षण का एक लव और ३० लव का एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र, ३० अहोरात्र का एक मास और द्वादश मास का एक संवत्सर होता है।[1]

तीस मुहूर्तों के नाम ये हैं[2]—

(१) चतुरोजा
(२) श्वेत
(३) समृद्ध
(४) शरपथ
(५) अतिसमृद्ध
(६) उद्गत
(७) सुमुख
(८) वज्रक
(९) रोहित
(१०) बल
(११) विजय
(१२) सर्वरस
(१३) वसु
(१४) सुन्दर
(१५) परभय
(१६) रौद्र
(१७) तारावचर

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३६।
२. वही, पृ० ३३७।

(१८) संयम

(१९) सांप्रयक

(२०) अनन्त

(२१) गर्दभ

(२२) राक्षस

(२३) अवयव

(२४) ब्रह्मा

(२५) दिति

(२६) अर्क

(२७) विधमन

(२८) आग्नेय

(२९) आतपाग्नि

(३०) अभिजित्

ये मुहूर्त द्विधा विभक्त है— (क) दिवसकालीन (ख) रात्रिकालीन। इन मुहूर्तों में पहले पन्द्रह दिवसकालीन मुहूर्त और अन्तिम पन्द्रह रात्रिकालीन मुहूर्त हैं।

[क] दिवसकालीन मुहूर्त

सुन्दर नामक मुहूर्त तथा अस्त हुए सूर्य की ९६ पुरुषों की छाया होने पर परभय नामक मुहूर्त होता है। ये दिवसकालीन मुहूर्त हैं।[1]

[ख] रात्रिकालीन मुहूर्त

आदित्य के अस्त हो जाने पर रौद्र नामक मुहूर्त होता है। इसके अनन्तर तारावचर, संयम, सांप्रैयक, अनन्त, गर्दभ और राक्षस मुहूर्त होते हैं। अर्ध-रात्रि में अवयव नाम का मुहूर्त होता है। अर्धरात्रि के व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा, दिति, अर्क, विधिमन, आग्नेय, आतपाग्नि और अभिजित् मुहूर्त होते हैं। ये रात्रिकालीन मुहूर्त हैं।[2]

इनमें बारह मुहूर्त दिन में और बारह रात्रि में ध्रुव रहते हैं। केवल ६ मुहूर्त ऐसे हैं, जो संचरणशील हैं। वे ये हैं[3]—

(१) नैर्ऋत
(२) वरुण
(३) वायव
(४) भर्गोदेव
(५) रौद्र
(६) विचारी

O

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३६-३३७।
२. वही, पृ० ३३७।
३. वही, पृ० ३५६।

परिच्छेद ३

ग्रह

ग्रह सात बतलाये गये हैं[1]—

(१) चन्द्र
(२) आदित्य
(३) शुक्र
(४) बृहस्पति
(५) शनैश्चर
(६) अङ्गारक
(७) बुध

इन ग्रहों में बृहस्पति को संवत्सर-स्थायी कहा गया है । शनैश्चर, अङ्गारक, बुध और शुक्र ये चार ग्रह मंडल-चारी हैं ।[2]

इन ग्रहों में राहु और केतु की गणना नही की गई है ।

०

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३६, ३५५ ।
२. वही, पृ० ३५५ ।

परिच्छेद ४

तिथि-कर्म-निर्देश[1]

प्रतिपदा तिथि का नाम "नन्दा" है। यह सभी कार्यों के लिए प्रशस्त मानी गई है, किन्तु विज्ञान [विद्या] के आरम्भ और प्रवास के लिए वह गर्हित है।

द्वितीया को "भद्रा" कहते हैं। यह आभूषण आदि धारण करने के लिए शुभ है।

तृतीया को "जया" कहा गया है। यह विजय प्राप्त करने वाले कार्यों के लिए शुभ वतलायी गयी है।

चतुर्थी को "रिक्ता" कहा गया है। यह ग्राम-सैन्य-वध, चोरी, अभिचार [हिंसा-कर्म], कूट [छल-कपट], अग्निदाह और गोरस-सावन [मट्ठा, दूध, दही आदि] के लिए हितकारी है।

पंचमी "पूर्णा" कही गयी है। यह चिकित्सा, गमन-मार्ग, दान, अध्ययन, शिल्प एवं व्यायाम के लिए कल्याणकारी है।

षष्ठी "जया" है। यह निन्दित मार्ग, गृह, क्षेत्र, विवाह अथवा आवाह-कर्म [वहू को घर लाने] के लिए प्रशस्त है।

सप्तमी "भद्रा" कही गयी है। यह पुण्य-मार्ग, राजाओं के शासन, छत्र और शय्या के निर्माण के लिए श्रेष्ठ है।

अष्टमी "महावला" है, वह परिरक्षण, भय, मन्दता, बद्ध, योग और हरण के लिए प्रशस्त है।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२०-४२१।

नवमी को "उग्रसेना" कहा गया है। इसमें शत्रु का नाश, विष नाश आक्रमण, विद्या, बन्धन और वध-कर्म करना श्रेष्ठ माना गया है।

दशमी "सुधर्मा" है। यह शास्त्रारंभ, धनार्जन के लिए उद्यत होने, शान्ति स्वस्त्ययन के आरंभ के लिए तथा दान और यज्ञ करने के लिए तत्पर होने में प्रशस्त है।

एकादशी "मान्या" कही गई है। यह स्त्रियों तथा मांस-मद्य में प्रवृत्ति [के लिए उचित है ?] तथा इसमें नगर [-निर्माण], रक्षण, विवाह एवं शास्त्र कर्म कराना चाहिए।

द्वादशी को "यशा" कहते हैं। यह विरोध और मार्ग-गमन के लिए वर्जित है तथा विवाह, पर्वत [आरोहण ?], कृषि-कार्य एवं गृह-कार्य के लिए प्रशस्त है।

त्रयोदशी "जया" कही गई है। यह स्त्रियों के समुदाय में श्रेष्ठ मानी गई है तथा कन्या-वरण, वाणिज्य एवं विवाहादि कार्यों के लिए अच्छी मानी गई है।

चतुर्दशी का नाम "उग्रा" हैं। इस तिथि में अभिचार-कर्म, वध, और बन्धन के प्रयोग कराने चाहिए तथा [शत्रु पर] प्रथम प्रहार करना चाहिए।

पंचदशी "सिद्धा" कही गई है, जो देवता और अग्नि-कर्म के लिए श्रेष्ठ है तथा गो-संग्रह, वृषभ-त्याग, वलि-कर्म, जप एवं व्रत के लिए हितकारी है।

O

परिच्छेद ५

स्वप्न-विचार [1]

जो व्यक्ति देवता, ब्राह्मण, गौ, प्रज्वलित अग्नि, राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, वृषभ आदि को स्वप्न के अन्त में देखता है, उस का कुटुम्ब वृद्धि को प्राप्त करता है। स्वप्न में सारस, शुक, हंस, क्रौंच तथा श्वेत पक्षियों को देखने वाले का कटुम्ब निश्चय ही बढ़ता है। समृद्ध शस्य, नई गायें, पुष्पित कमलिनी, भरा हुआ कलश, स्वच्छ जल तथा अनेक फूल जो स्वप्न के अन्त में देखता है, उस का कुटुम्ब विकास को प्राप्त करता है। हाथ, पैर, या घुटने (जानु) में शस्त्र या धनुष के द्वारा जिस पर प्रहार किया जाता है, उस के यहाँ वस्त्रों की अभिवृद्धि होती है। जो व्यक्ति स्वप्न के अन्त में तारा, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तथा ग्रह को देखता है, उस के कुटुम्ब की वृद्धि होती है। स्वप्न के अन्त में अश्वपृष्ठ, गजस्कन्ध, यान और शय्या पर आरूढ़ होने वाला महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। जो स्वप्न में गो युक्त रथ या घोड़े पर चढ़ता है और उसी अवस्था में जग जाता है, वह ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

स्वप्न में शृगाल, नग्न मनुष्य, गोधा, वृश्चिक, सूकर, अजा (बकरी) आदि का दर्शन व्याधि-क्लेश को प्रकट करता है। काक, श्येन (बाज), उलूक, गृध्र, वर्तक (बगला), मयूर आदि को, स्वप्न में देखना व्यसन का कारण होता है। अपने को नग्न, पांशु (धूल) से युक्त या कर्दम (कीचड़) से सना हुआ देखने वाला, व्याधि क्लेश को प्राप्त करता है।

धनुष, अन्य शस्त्र, आभूषण, ध्वजा या कवच का स्वप्न में प्राप्त करना, धन-लाभ को द्योतित करता है। स्वप्न में सूर्य और चन्द्रमा का उदय

---

१ शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३८५-३९३।

देखना शुभकारी है। सूर्य और चन्द्र को अस्त होते हुए देखना राजा की विपत्ति का कारण होता है।

स्वप्न में वृष्टि का होना, अशनि (वज्र) पात, भूमि-कम्प विपत्ति का निर्देश करते हैं। यदि स्वप्न में चन्द्र और सूर्य खण्डित दिखलाई पड़ते हैं, तो द्रष्टा की आँख नष्ट हो जाती है। काषाय-वस्त्र को धारण करने वाली, मुंडित कपाल वाली. मलिन वस्त्र वाली या नीले और लाल वस्त्रों वाली स्त्री का स्वप्न में दिखाई पड़ना, कष्ट का कारण होता है। स्वप्न में सुरा, मैरेय, आसव और मधु को पान करने वाला व्यक्ति कष्ट को प्राप्त करता है। स्वप्न में जल, पांशु (धूल) अथवा अंगारों की वर्षा, मृत्यु का निर्देश करती है। कृष्णवसना, आर्द्र या मलिन वस्त्रों वाली स्त्री, जिस पुरुष का स्वप्न में आलिंगन करती है, वह बन्धन (कैद) को प्राप्त करता है।

सुस्नात, सुन्दर वेश वाले तथा सुगन्धित और शुक्ल वस्त्र वाले पुरुष अथवा नारी का स्वप्न में दर्शन महान् सुख का कारण होता है। भद्र आसन पर अथवा सुसंस्कृत शयन पर आसीन पुरुष, स्त्री को प्राप्त करता है या स्त्री, पुरुष को प्राप्त करती है। जो पुरुष स्वप्न के अन्त में शुक्ल और गंध से अनुलिप्त वस्त्र को देखता है, उसे स्त्री-लाभ होता है। अन्न और आभूषणों को देखने वाला पुरुष, भार्या को और नारी, पति को प्राप्त करती है। मेखला (करधनी), कर्णिका (कान का आभूषण), माला और स्त्रियों के आभूषण को प्राप्त करने वाला पुरुष, भार्या को और नारी, पति को प्राप्त करती है। हाथी, बैल, नाग और ताराओं से युक्त चन्द्र-सूर्य की वन्दना जो नारी स्वप्न में करती है, वह शीघ्र ही पति को प्राप्त करती है। तथा इन में से कोई यदि स्त्री की कुक्षि में प्रविष्ट होता दिखाई पड़ता है, तो वह पूर्ण अंगों वाले श्रीमान् पुत्र को जन्म देती है। सभी फल तथा हरित वनों को स्वप्न के अन्त में प्राप्त करने वाली नारी श्रीमान् पुत्र को उत्पन्न करती है। उत्पल कुमुद, पद्म एवं खिलती हुई कलियों वाले पुंडरीक को स्वप्न के अन्त में प्राप्त करने वाली नारी श्रीमान् पुत्र को जन्म देती है।

स्वप्न में गृह-निर्माण शुभ है और गृह-भेदन नहीं, निर्मल आकाश का दिखलाई पड़ना अच्छा है पर मेघ-युक्त आकाश अप्रशस्त, स्वच्छ जल प्रशस्त है किन्तु अस्वच्छ जल नहीं, सुवर्ण-दर्शन शुभ है किन्तु उस का धारण नहीं, मांस दर्शन शुभ है पर उस का भक्षण अशुभ. मद्य का दर्शन प्रशस्त है पर पान

नहीं, हरिद् वर्ण की पृथ्वी का दर्शन प्रशस्त माना गया है, विवर्ण पृथ्वी का नहीं, यान पर चढ़ना शुभ है उससे गिरना नहीं, रुदन प्रशस्त है पर हँसना नहीं, प्रच्छन्न दर्शन शुभ है किन्तु नग्न नहीं, माला का दिखलाई पड़ना अच्छा है पर उसका धारण नहीं, मन्द वायु का चलना अच्छा है पर तेज हवा का नहीं तथा पर्वत पर चढ़ना प्रशस्त है पर उस से उतरना नहीं।

रात्रि के प्रथम काल में देखा गया स्वप्न एक वर्ष में अपना फल देता है, दूसरे प्रहर का स्वप्न छः महीने में. तीसरे प्रहर का छः पक्षों में तथा रात्रि के चौथे प्रहर का स्वप्न आधे मास में ही फलीभूत हो जाता है। गायों का दान, ब्राह्मणों का पूजन, अपने इष्ट-देव की अर्चना, श्रेष्ठ ब्राह्मण को तिल-पात्र का दान, शान्ति कर्म, स्वस्त्ययन प्रयोग, और गुरुओं की पूजा से दुःस्वप्न के प्रभाव का निवारण किया जाता है।

स्वप्न में जलचरों एवं मछलियों को देखने वाला व्यक्ति जो भी कार्य आरंभ करता है, उसे वह शीघ्र ही समाप्त कर देता है। दूसरे घर के कुत्ते का दरवाजे पर पेशाव करना इस स्वप्न को देख कर जगे हुए व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि उस की स्त्री जार-कर्म की इच्छा वाली है।

जो स्वप्न मे समुन्द्र को देखता है या उस के जल को पीना चाहता है या वृक्ष, पर्वत, हाथी, घोड़ा आदि पर चढ़ता है, उसे जगने पर यह जानना चाहिए कि उसे राज्य-लाभ होगा।

जो स्वप्न के वीच केश-श्मश्रु का कटना देखता है, उसे जगने पर अर्थ (धन) की प्राप्ति होती है। जो अपने को स्वप्न के अन्त में कृष्ण सर्प से गृहीत देखता है, उसे शत्रु-पीड़ा होती है। जो स्वप्न के बीच अपने को अग्नि से संतप्त देखता है, उसे शीघ्र ही ज्वर हो जाता है। इसी प्रकार अपने सिर पर काष्ट-भार, तृण एवं वहुत वोझ को देखने वाला किसी वड़ी व्याधि से ग्रसित हो जाता है। सुवर्ण, रूप्य (चाँदी) और मुक्ताहार (मोतियों का हार) को स्वप्न के वीच देखने वाला, निधि को प्राप्त करता है।

o

परिच्छेद ६

कन्या-लक्षण

कन्या के निन्दित एवं प्रशस्त सभी लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शास्त्रकोविद उसके सभी अंगों की परीक्षा करते हैं, यथा—हस्त, पाद, नख, अंगुली, पाणिलेखा [रेखा], जाँघ, कटि, नाभि, उरु, ओष्ठ, जिह्वा, दन्त, कपोल, नासिका, अक्षिभ्रू, ललाट, कर्ण, केश, रोमराजि, स्वर, वर्ण, गीत, मति, सत्त्व।[1]

[क] नारी के प्रशस्त लक्षण[2]

हंसस्वरा, मेघवर्णा, मधुरलोचना एवं दास-दासियों से परिवृत स्त्री आठ पुत्रों को जन्म देती है। जो नारी मण्डूककुक्षि वाली है, वह ऐश्वर्य को प्राप्त करती है, धन्य पुत्रों को उत्पन्न करती है तथा उनकी प्रीति का भाजन होती है। जिस स्त्री के पाणितल में कच्छप, स्वस्तिक, ध्वज, अंकुश, कुण्डल, माला सुप्रतिष्ठित दिखाई देते हैं, वह एक पुत्र का प्रसव करती है और वह राजा होता है। जिस स्त्री के पाणितल में तोरण सहित कोष्ठागार का चिह्न दिखाई पड़ता है, वह दास-कुल में उत्पन्न होकर भी राजपत्नी होती है। जिस स्त्री के बत्तीसों दाँत गोक्षीर के समान पाण्डु वर्ण के होते है तथा समान शिखरों से युक्त स्निग्ध आभा वाले होते हैं, वह राजा को जन्म देती है। स्निग्धा, कारण्डवप्रेक्षा, हरिणाक्षी, तनुत्वचा और रक्त वर्ण के ओष्ठ तथा जिह्वा वाली ऐसी सुमुखी स्त्री राजा की पत्नी होती है। जो कन्या सूक्ष्म और तुंग नासा वाली, मुक्त उदर वाली, सुभ्रू तथा सुवर्केशान्तों वाली होती है, वह बहुप्रजा वाली होती है। जिसकी अंगुलियाँ कमल के सदृश संहित और

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१०-४११।

२. वही, पृ० ४११-४१२।

कान्तिमान् नखों वाली हैं, वह कन्या सुख को प्राप्त करती है। जिसके आवर्त सम और स्निग्ध हैं और दोनों पार्श्व सुसंस्थित है, वह राजपत्नी होती है। विक्रम संस्थित उरु, जंघा और पार्श्व वाली तथा रक्तान्त विशाल नेत्रों वाली कन्या सुख को प्राप्त करती है। मृगाक्षी, मृगजंघा, मृगग्रीवा, मृगोदरी और युक्त नामों वाली स्त्री राजपत्नी होती है। जो स्त्री सुन्दर केश और मुख वाली तथा जिसकी नाभि दक्षिण आवर्तों वाली है, वह कुलवर्धिनी होती है। जो नारी कान्त जिह्वा, रक्तोष्ठी और प्रियभाषिणी है, उसे, प्राज्ञ मनुष्य को, वरण करना चाहिए। नीलोत्पल-सुवर्ण के समान आभा वाली और दीर्घ अंगुलियों वाली स्त्री सहस्रों की स्वामिनी होती है। धन-धान्य, आयु, यश, और श्री से युक्त लक्षणसम्पन्न कन्या को प्राप्त कर मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होता है।

[ख] स्त्रियों के अप्रशस्त लक्षण[1]

उर्ध्वप्रेक्षी, अधःप्रेक्षी, तिर्यक् प्रेक्षिणी, उद्भ्रान्त, और विपुलाक्षी ऐसी स्त्रियाँ विचक्षणों के द्वारा वर्जनीय हैं। जिसके केश लम्वे और रुक्ष हैं, अवली और गात्र विचित्र हैं, वह कामचारिणी होती है। कामुका, पिंगला, गोरी, अत्यन्त काली, वहुत लम्बी और वहुत छोटी स्त्रियाँ वर्जनीय हैं। जिस स्त्री के ललाट, उदर और स्फिच—ये तीन लटकते रहते हैं, वह देवर, श्वसुर और पति को मार डालती है। जिसके बगल में रोमराजि होती है और कटि झुकी हुई रहती है, वह दीर्घायु और दीर्घकाल तक दुःखी रहती है। काकजंघा, रक्ताक्षी, घर्घर स्वरों वाली, विना सुखों वाली, विना किसी आशा वाली और नष्ट वान्धवों वाली नारी वर्जित है। जिसका उदर अत्यन्त स्थूल और नीचे की ओर लटकता रहता है, वह अत्यन्त अवश, बहुत पुत्रों वाली तथा दुःखी होती है। जिसका जाँघ और मुख-मण्डल वालों से युक्त होता है, वह पुत्र अथवा भाई को भी जार बनाना चाहती है। जिसके दोनों वाहुप्रकोष्ठ वालों से भरे हैं और उत्तरोष्ठ पर रोम हैं, वह अपने पति को विनष्ट करने वाली होती है। जिस स्त्री के हाथों, पैरों और दांतों के मध्य छिद्र होता है, उसके घर पति द्वारा अर्जित धन नहीं टिकता। जिस स्त्री के चलने पर उसकी पर्व-

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१२-४१३।

संधियों [जोड़ों] से आवाज होती है, वह दुःख-बहुला होती है और सुख कभी नहीं प्राप्त करती। जिसके पैर की प्रदेशिनी अंगूठे से बड़ी होती है, वह कुमारी यौवनावस्था में विशेषरूप से जार करती है।

देवता, नदी, वृक्ष, गुल्म के नामों वाली स्त्री वर्जनीय है। जो स्त्री नक्षत्र या गोत्र के नामों वाली होती है, वह अत्यन्त रक्षा किये जाने पर भी मनसा पापाचरण करती है।

उपर्युक्त इन नारियों का वर्जन करना चाहिए।

O

परिच्छेद ७

तिल-विचार[1]

जिस स्त्री के मूर्ध्नि पर सूक्ष्म, स्निग्ध और पद्म के समान वर्ण वाला तिलक (तिल) हो तथा उसका प्रतिविम्ब स्तनों के ऊपर पड़ता हो, तो राजा उसका पति होता है।

जिस स्त्री के शीर्ष पर सूक्ष्म और अंजनचूर्ण के समान वर्ण वाला तिल हो तथा जिसका प्रतिबिम्बक तिल स्तनों के बीच में हो, उसका भर्ता सेनापति होता है।

भ्रुवान्तर में तिल वाली स्त्री दुश्चारिणी होती है। उसके पाँच पति होते हैं और वह बहुत अन्न-पान को प्राप्त करती है।

गण्डस्थल के नासादिक मध्य में तिल तथा रोमप्रदेश में उसके प्रतिबिम्बक तिल के होने पर वह नारी शोक को प्राप्त होती है।

जिस स्त्री के कान में तिल और उसका प्रतिविम्बक तिल त्रिक में होता है, वह बहुश्रुता और श्रुतिधारिणी होती है।

जिस स्त्री के उत्तरोष्ठ पर तिल और उसका प्रतिबिम्बक तिल उर में हो, वह भिन्नसत्या होती है और कष्ट से वृति प्राप्त करती है।

जिस स्त्री के अधरोष्ठ पर तिल हो और उसका प्रतिबिम्बक तिल गुह्य स्थान पर हो, तो वह दुश्चारिणी और मिष्ठान्न-पान की बहुत इच्छा रखने वाली होती है।

जिस स्त्री के चिबुक पर तिल और साथ ही उसका प्रतिबिम्बक दूसरा तिल गुह्य स्थान पर हो, वह दुश्चारिणी होती है और अधिक मात्रा में मिष्टान्न पान को प्राप्त करती है।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३६८।

परिच्छेद ८

पिटक-विचार[1]

चोट लगने या जलने से हुआ व्रण या फोड़े आदि का चिह्न (दाग) "पिटक" कहलाता है। ये तिलों के तद्रूप होते हैं।

स्त्रियों के वामभाग में होने वाले पिटक शुभ माने गये हैं और पुरुषों के दक्षिण-भागस्थ पिटक अर्थ-साधक होते हैं।

श्वेत वर्ण का पिटक ब्राह्मणों के लिए, क्षतोपम क्षत्रियों के लिए, पीले रंग का वैश्यों के लिए, असित वर्ण का शूद्रों के लिए और म्लेच्छ जाति में विवर्ण पिटक श्रेष्ठ होता है। सवर्ण पिटक के होने पर राजा महान् होता है। शीर्ष पर होने से धनधान्य, कान्ति एवं सुभगता की प्राप्ति होती है।

अक्षिस्थान का पिटक प्रियदर्शन कराता है, अक्षिभ्रूभाग में स्थित पिटक शोक और गण्डस्थल का पिटक पुत्रवध की सूचना देता है।

नासागण्ड में स्थित पिटक पुत्रलाभ कराने वाला होता है। नासाग्र में पिटक के उत्पन्न होने पर मनुष्य अभीप्सित गन्ध-भोगों को नहीं प्राप्त करता। उतरोष्ठ और अधरोष्ठ पर होने वाला शुभाशुभ अन्नपान तथा चिबुक और हनुदेश वाला पिटक धन, गाय और श्री को प्राप्त करता है। गले में स्थित पिटक वाला मनुष्य दान प्राप्त करता है और आभूषण एवं पान का भी उपभोग करता है। शिरसंधि और ग्रीवा में स्थित पिटक शिरश्छेदन को प्रकट करता है। शिरमूल और हनु का पिटक धनक्षय, सधि स्थान का पिटक भैक्षचर्या, तथा हृदयस्थित पिटक प्रियसंगम का संकेत करता है। पृष्ठ में होने पर दुःखशय्या और अन्नपानक्षय, पार्श्व में होने पर सुखशय्या, तथा स्तन पर होने वाला पिटक सुतजन्यता को प्रकट करता है। बाहु में स्थित

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० १८३-१८५।

पिटक मंगलकारी, अप्रियसमागम को न देने वाला, शत्रुविनाश एवं स्त्री-लाभ का कथन करता है। प्रबाहु में उत्पन्न पिटक आभरण देने वाला, कूर्पर में स्थित पिटक क्षुधाकारी, मणिबन्ध में स्थित पिटक नियमन करने वाला तथा कन्धों पर होने वाला पिटक हर्ष का दाता होता है। पाणि में उत्पन्न हुआ पिटक सौभाग्य एवं धनलाभ को करने वाला होता है।

हृदय में होने पर भ्रातृ और पुत्र-समागम, जठर (पेट) में होने पर सोमदान तथा नाभि में होने पर स्त्री-लाभ को प्रकट करता है। जघन में स्थित पिटक व्यसन, और दुःशीलता, वृषण में स्थित पिटक पुत्रोत्पत्ति, लिंग में स्थित पिटक शोभना भार्या, पृष्ठान्त-स्थित पिटक सुखभागित्व, स्फिच मे होने वाला धन-क्षय, उरु में स्थित पिटक धन-सौभाग्यदायक, जानु में होने वाला शत्रुभय और धनक्षय, जानुसंधि और मेढ्रक मैं उत्पन्न पिटक विजय, ज्ञानलाभ, और पुत्रजन्म; वक्षस्थल में होने वाला पिटक स्त्री-लाभ, जंघा का पिटक परसेवा तथा मणिवन्ध का पिटक वन्धन और परिवाध को प्रकट करता है। जिसके पार्श्व और गुल्फ में पिटक होता है, उसका मरण निश्चय ही शस्त्र से होता है। अंगुलियों वाला पिटक शोक, अंगुलियों के पर्वों (जोड़ों) में स्थित पिटक व्याधि, उत्तारपाद वाला पिटक प्रवास का सूचक है। जिसके पादतल और हस्ततल में पिटक होता है, वह धन, धान्य, सुत, गौ, स्त्री, यान प्राप्त करता है।

परिच्छेद ६

वायस-रुतम् [1]

प्रस्थित पुरुष के मार्ग में आगे कौवा दूध-धारी वृक्ष पर बैठ कर बोलता है, तो अर्थ-सिद्धि का निर्देश करता है। अधिक बढ़े हुए पत्तों वाले वृक्ष पर बैठकर मधुर बोलता है, तो गुड़ और गोरस से मिश्रित भोजन प्राप्त होता है। यदि अपने शरीर का पैर से मार्जन करता हुआ दिखलाई पड़ता है, तो पायस और घृत से युक्त भोजन मिलता है। रुक्ष चोंच को घिसता हुआ तथा शिर को साफ करता हुआ, फल वाले वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा मांस-भोजन का निर्देश करता है। सूखे वृक्ष पर बैठ कर रूखा तथा तथा दीन बोलता है, तो बहुत बड़ा झगड़ा तथा अर्थ-विनाश करता है। पंखों को फड़फड़ाता हुआ कौवा यदि दिखाई दे, तो गमन नहीं करना चाहिए। यदि रस्सी और लकड़ी को खींचता है, तो भी जाना नहीं चाहिए। गोबर या सूखी लकड़ी पर बैठ कर बोलता है, तो कलह और व्याधि को बताता है तथा अर्थ-सिद्धि का बाधक होता है। घड़े, थाली तथा आसन पर बैठ कर बोलना, गमन-सूचक है। देव-स्थान और देवोद्यान पर बोलता है, तो अर्थ-लाभ सूचित करता है। यदि वृक्ष के बीच में वायसी घोंसला बनाती है, तो मध्यम वर्षा तथा मध्यम अनाज उत्पन्न होता है। पेड़ की जड़ में, यदि अण्डे देती है, तो बहुत भयानक स्थिति—अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष की सूचना देती है। चार या पांच बच्चों को जन्म देती है, तो सुभिक्ष की सूचना देती है तथा फलों को प्रदान कराती है।

O

---

१. शार्दूलकर्णावदान पृ० ४०२।

परिच्छेद १०

शिवा-रुतम्[1]

पूर्व की दिशा में, पूर्व की ओर मुँह कर यदि तीन वार शृगाली बोलती है, तो वृद्धि की सूचना देती है। चार वार बोलने पर मंगल का निवेदन करती है। पाँच वार बोलने पर वर्षा की सूचना देती है। छः वार बोलने पर शत्रुचक्र-भय समुत्पन्न करती है। सात वार बोलने पर बन्धन प्रकट करती है। आठ बार बोलने पर प्रिय-समागम की सूचना देती है। निरन्तर बोलते रहने पर शत्रु-भय की सूचना प्रदान करती है।

दक्षिण दिशा में, दक्षिण मुख कर तीन वार यदि, 'अतृ-अतृ' जैसा शब्द करती हुई बोलती है, तो वह मृत्यु की सूचना देती है। चार वार बोलने पर, प्रिय-समागम और धन-लाभ की सूचना देती है। इसी प्रकार पाँच वार बोलने में भी धन-लाभ होता है। छः वार बोलने पर सिद्धि का फल प्राप्त होता है। सात वार बोलने पर विवाद और कलह का प्रकटन करती है। आठ बार बोलने पर भय की सूचना देती है। निरन्तर बोलते रहने पर घवड़ाहट प्रकट करती है।

पश्चिम दिशा में, पश्चिम की ओर मुँह कर यदि तीन वार बोलती है, तो मृत्यु की सूचना देती है। चार बार बोलने पर बन्धन, पाँच बार बोलने पर वर्षा, छः वार बोलने पर अन्न, सात वार बोलने पर मैथुन, आठ बार बोलने पर अर्थ-सिद्धि और चिरन्तर बोलते रहने पर महामेघ की सूचना देती है।

उत्तर की दिशा में, उत्तर की ओर मुँह करके तीन वार बोलने पर, जाने वाले पुरुष का गमन निरर्थक होता है। चार वार बोलने पर राजकृत-

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३९६।

भय, पाँच बार बोलने पर विवाद, छः बार बोलने पर कुशल, सात बार बोलने पर वर्षा, आठ बार बोलने पर राजकुल-दण्ड, और निरन्तर बोलते रहने पर यक्ष, राक्षस, पिशाच, कुम्भाण्ड के भय को प्रकट करती है।

नीचे मुँह करके बोलने पर खजाने की सूचना और ऊपर मुँह करके बोलने पर वर्षा की सूचना देती है। दो-राहों पर, पूर्वाभिमुख होकर बोलने पर अर्थ-लाभ की और दक्षिणाभिमुख होकर बोलने पर प्रिय-समागम की सूचना देती है। दो राहों (मार्गों) पर पश्चिमाभिमुख होकर बोलने पर कलह, विवाद, विग्रह और मरण को प्रकट करती है। कुएँ के ऊपर बोलने से अर्थ की सूचना मिलती है। घास पर बोलने से अर्थ-सिद्धि, बहुत कोमल बोलने पर व्याधि-सूचक, गीत की ध्वनि में बोलने से अर्थ और अनर्थ दोनों की सूचना देती है।

शृगाली प्रस्थित पुरुष के आगे आकर बोलती है तो मार्ग के कल्याण को बताती है और अर्थ-सिद्धि सूचित करती है। मार्ग में जाते हुए यदि बाँयें से आकर दाहिने मुँह होकर बोले, तो अर्थ-सिद्धि और मार्ग-क्षेम को प्रकट करती है। इसी प्रकार बाँयें से आकर सामने बोले, तो मार्ग-भय को प्रकट करती है। यदि सेना के प्रस्थान के समय बोलती है और पश्चिम की ओर लौटती है, तो पराजय को प्रकट करती है। सेना के प्रस्थान पर, यदि शृगाली आगे आ कर बोलती है, तो सेना की विजय प्रकट करती है।

०

परिच्छेद ११

पाणि-लेखा[1]

अँगूठे की जड़ के सहारे ऊपर को जाने वाली रेखा ऊर्ध्व-रेखा कही जाती है, जो सुख की सूचिका है। उसी के पास दूसरी ज्ञान-रेखा कही जाती है। इसके पास ही तृतीय रेखा प्रदेशिनी से आगे बढ़ती है, इसे हृदय-रेखा कहा जाता है। अपर्वों में पर्व हों तो नक्षत्रों का उपद्रव होता है और यदि दुहरी रेखाएँ पर्वों में हों तो वह व्यक्ति सौ वर्ष तक जीवित रहता है। अँगूठे के नीचे जितनी रेखाएँ हों, उतनी ही सन्तानें होती हैं। जितनी दीर्घ रेखाएँ होंगी, उतनी ही दीर्घायु सन्तान होगी। छोटी रेखाओं के होने पर सन्तान स्वल्पायु होती है। अँगूठे की जड़ में यव का चिह्न हो, तो रात्रि का जन्म जानना चाहिए और अँगूठे के ऊपर यव का चिह्न होने पर दिन का जन्म जानना चाहिए। अँगूठे की जड़ में, यव के चिह्न से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है। जिस पुरुष के हाथ में यव, चाप और स्वस्तिक का चिह्न दिखाई देता है, वह धन्य माना जाता है। मत्स्य के चिह्न से धान्य, यव के चिन्ह से धन की प्राप्ति होती है जिस पुरुष के हाथ में पताका, ध्वजा, शक्ति, तोमर और अंकुश के चिह्न प्राप्त हों, उसे पृथ्वी पति अर्थात् राजा अथवा राजवंश में उत्पन्न जानना चाहिए। जिसके हाथ में अत्यधिक रेखाएँ नहीं होती हैं, वह सदैव पूज्य होता है और सबका प्रिय माना जाता है। जिसके हाथ में श्याम वर्ण की रेखा हो और वह टूटी हो, तो दुःख देने वाली होती है। जिसके हाथ में तीनों रेखाएँ पूर्ण स्वप्न में दिखाई देती हैं, वह महाभोगी, महा-विद्वान् और सौ वर्ष की आयु वाला होता है। उठा हुआ हाथ, माँसल हाथ, लम्बा और मोटा हाथ सदैव धन प्रदाता होता है। देखने में अच्छा लगने वाला हाथ, सज्जन पुरुषों का होता है। टेढ़ा तथा अस्पष्ट हाथ धूर्त पुरुषों का माना जाता

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३९९।

है। जिन पुरुषों का हाथ रक्त के समान लाल चिकना होता है, वे सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न माने जाते हैं।

गरम और लम्बे हाथ वाला पुरुष अच्छे भाग्य वाला और पौरुष-सम्पन्न होता है। जिस हाथ में लघुत्व और शीतलता हो, वह नपुंसक पुरुष का हाथ होता है। जिसके हाथ में जल के समान स्वच्छ तथा लम्बी रेखा हो और जल के समान बढ़ती गयी हो, साथ ही निम्न स्थान से उन्नत स्थान की ओर गयी हो, वह पुरुष धन को प्राप्त करता है। जिसकी अँगुलियों में अन्तर न हो तथा जिसके हाथ की रेखाएँ कटी हुई छिन्न-भिन्न हों, ऐसे पुरुष को लक्ष्मी त्याग देती है।

O

परिच्छेद १२

चिकित्सा-विज्ञान

तत्कालीन चिकित्सा-विज्ञान समुन्नत था। मातंग राज त्रिशंकु ने अन्य सब शास्त्रों के साथ-साथ आयुर्वेद का भी अध्ययन किया था।[1] महासार्थवाह सुप्रिय अरिष्टाध्याय एवं वैद्य-मतों का अध्ययन कर सार्थवाह मघ की व्याधि के उपशमार्थ अनेक औषधियों का निर्देश करता है।[2] रोग को "व्याधि" कहते थे।[3] रोग-ग्रस्त होने के लिए "ग्लानः संवृतः"[4] या "ग्लानीभूतः"[5] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। "दिव्यावदान" में प्रयुक्त कुछ रोगों के नाम ये हैं— दाह ज्वर,[6] कुष्ठ-रोग[7], पिट्टक[8], नेत्र-रोग[9] मारि या मरक[10]। "मरक" आधुनिक कालरा आदि के समान एक संक्रामक रोग था।

प्रार्थना द्वारा रोग-निवारण में लोगों का विश्वास था। एक बार "मारि" के फैलने पर निमित्तक उसे देवता, प्रकोप बतलाते हैं और अधिष्ठान निवासी जनकाय उसे देवताराधन द्वारा शान्त करते हैं।[11]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
३. कुणालावदान, पृ० २६३।, वीतशोकावदान, पृ० २७७।
४. पूर्णावदान, पृ० १५, १६।
५. मान्धातावदान, पृ० १३०।
६. पूर्णावदान, पृ० १६।
७. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
८. मान्धातावदान, पृ० १३०।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४८७।
११. वही, पृ० ४८८।

पर साधारणतः रोगों की चिकित्सा करने के लिए वैद्य होते थे ।[1]

तत्कालीन चिकित्सा-प्रणाली में मुख्यतः औषधियों का प्रयोग होता था। इन औषधियों में मूल, पत्र, गंड, पुष्पादि होते थे ।[2]

एक बार राजा अशोक महान् व्याधि से ग्रस्त हो गये । उन के मुख से वमन होने लगा तथा सभी रोम कूपों से अशुचि पदार्थ निकलने लगा। वह किसी भी प्रकार से ठीक नहीं हो रहा था । तिष्यरक्षिता ने इस रोग का कारण 'ज्ञात करने के लिए इसी रोग से आक्रान्त एक आभीर को मार कर उस की कुक्षि को विदीर्ण कर देखा कि उस की आँतों में पक्वाशय स्थान पर एक बड़ा कीड़ा (कृमि) उत्पन्न हो गया है । वह उस के ऊपर मरिच (मिर्च) पीस कर लगाती है, पर वह नहीं मरता । इसी प्रकार पिप्पली और शृङ्गवेर का प्रयोग करती है। किन्तु पलाण्डु (प्याज) के लगाने से वह मर जाता है और उच्चारमार्ग से निकल जाता है । वह राजा से पलाण्डु खाने को कहती है और राजा उस का सेवन कर स्वस्थ हो जाते हैं ।[3]

सौर्पारकीय राजा के दाहज्वर से पीड़ित होने पर वैद्यों ने उन्हें गोशीर्षचन्दन का प्रलेप देने का निर्देश किया था ।[4]

एक स्थान पर कहा गया है कि वृद्धावस्था के कारण एक ब्राह्मण की नेत्र-ज्योति नष्ट हो गई थी। उस को मार डालने के उद्देश्य से उस की पुत्र-वधुएँ उसे सर्प डाल कर बनाया हुआ 'हिलिमा' 'जोमा' पान करने को देती हैं। ब्राह्मण उसे पीता है और उस के वाष्प से उसके नेत्र-पटल खुल जाते हैं और वह भली-भाँति देखने लगता है ।[5]

निरन्तर विलाप और अश्रु-पात करते रहने से नेत्रों की ज्योति चली जाती थी। श्रोण कोटिकर्ण के महासमुद्रावतरण के पश्चात् न लौटने पर उस

---

१. पूर्णावदान, पृ० १५ ।

२. मान्धातावदान, पृ० १३० ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८ ।

३. कुणालावदान, पृ० २६३-२६४ ।

४. पूर्णावदान, पृ० १६ ।

के माता-पिता शोक के वशीभूत हो रोते रहने के कारण ज्योति-विहीन हो गये थे ।[१]

वेहोश व्यक्ति को होश में लाने के लिए उस पर जल छिड़का जाता था। "धर्मरुच्यवदान" में यथार्थ वात का ज्ञान होने पर एक दारक विमूढ़ एवं विह्वलचित्त हो कर पृथ्वी पर विमूर्छित हो जाता है । तदनन्तर उस की माता जलघट-परिषेक द्वारा उसे अवसिक्त करती है, जिस से कुछ देर के वाद वह पुनः चेतना प्राप्त करता है ।[२]

रोग निवारणार्थ अनेक भैषज्यों का भी प्रयोग होता था ।[३] गर्भ-परिस्रव कराने वाले भैषज्य भी थे ।[४]

स्मरण-शक्ति वढ़ाने वाले भैषज्य का भी उल्लेख हुआ है । पर्वतराज हिमवान् पर सूदया नाम की औषधि प्राप्त होती थी, जिसे घी में पका कर पान करने से मनुष्य को न भूख लगती थी और न प्यास तथा साथ ही उस की स्मरण शक्ति वढ़ जाती थी ।[५]

रोग के कारण कभी-कभी सिर के सारे वाल गिर जाते थे ।[६]

रोग से मुक्त हो जाने पर भी वीतशोक गोरस-प्राय आहार का ही सेवन करता था ।[७]

आपन्नसत्त्वा स्त्रियों को, गर्भ की रक्षा एवं सुसंवर्धन के लिए वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट आहार दिये जाते थे ।[८]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ४ ।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८ ।
३. पूर्णावदान पृ० १५ ।
४. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२ ।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २६६ ।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७७ ।
७. वही, पृ० २७७ ।
८. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।

रोगी के मनोरंजन का भी ध्यान रखा जाता था, जिस में वह पड़े-पड़े ऊबने न लगे। शास्त्रबद्ध कथा एवं नानाश्रुतिमनोरथ आख्यायिकाओं के द्वारा सुप्रिय, रुग्ण सार्थवाह मघ का अनुरंजन करता है।[1]

रोगी के सेवा करने वाले परिचारक "उपस्थायक" कहलाते थे।[2] परिचारिका "उपस्थायिका" कहलाती थी।[3]

O

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
२. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
३. वही, पृ० २७७।

परिशिष्ट

परिशिष्ट [क]—'दिव्यावदान' में प्रयुक्त सम-उद्धरणों की सूची

परिशिष्ट [ख]—सहायक ग्रन्थ

परिशिष्ट [क]

"दिव्यावदान" में प्रयुक्त सम-उद्धरणों की सूची

(१) गृहपति का वर्णन

"............गृहपतिः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशाल-परिग्रहो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; पूर्णावदान पृ० १५; स्वागतावदान पृ० १०४; ज्योतिष्कावदान पृ० १६२; सहसोद्गतावदान पृ० १८२; संघरक्षितावदान पृ० २०४; चूडापक्षावदान पृ० ४३६)

(२) सन्तान-प्राप्त्यर्थ देवाराधन

"सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरवासवादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते, तद्यथा आरामदेवता वनदेवता चत्वरदेवता शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिकाः । सहजाः सहधर्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते ।"

(कोटिकर्णावदान पृ० १; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(३) सन्तान की उत्पत्ति में त्रिपुटी का योग

"अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम् ? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ । माता चास्य कल्या भवति ऋतुमती च । गन्धर्वः प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(४) स्त्रियों के पंच आवेणिक-धर्म

'पञ्चावेणीया धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे पञ्च ?

रक्तं पुरुषं जानाति विरक्तं जानाति । कालं जानाति ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं जानाति । यस्य सकाशाद्गर्भमवक्रामति तमपि जानाति । दारकं जानाति, दारिकां जानाति । सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुप्रियावदान, पृ० ६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(५) गर्भिणी का आहार-विहार

"आपन्नसत्त्वां विदित्वा उपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति तिक्ताम्ललवणमधुरकटुकषायविवर्जितैराहारैः । हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनचारिणीं मञ्चान्मञ्च पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरिमां भूमिम् । न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुप्रियावदान, पृ० ६२; स्वागतावदान, पृ० १०४; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(६) उत्पन्न पुत्र का शारीरिक वर्णन

"दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोणः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः ।"

(सुप्रियावदान, पृ० ६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६; माकन्दिकावदान, पृ० ४५२)

(७) जातकर्म एवं नामकरण

"तस्य ज्ञातयः संगम्य समागम्य त्रीणि सप्तकानि एकविंशतिदिवसानि विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापयन्ति—किं भवतु दारकस्य नामेति ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० २; पूर्णावदान, पृ० १६; सहसोद्गतावदान, पृ० १८६, १६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७; माकन्दिकावदान, पृ० ४५२)

(८) शिशु का लालन-पालन

"...............अष्टाभ्यो धात्रीभ्योऽनुप्रदत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभि-र्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्त-प्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० २; पूर्णावदान, पृ० १६; मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सुप्रियावदान. पृ० ६३; स्वागतावदान, पृ० १०४; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७)

(९) बालक की शिक्षा

"यदा महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः । संख्यायां गणनायां मुद्रायामुद्धारे न्यासे निक्षेपे हस्तिपरीक्षायामश्वपरीक्षायां रत्नपरीक्षायां दारुपरीक्षायां वस्त्रपरीक्षायां पुरुषपरीक्षायां स्त्रीपरीक्षायाम् । नानापण्यपरीक्षासु पर्यवदातः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वकलाभिज्ञः सर्वशिल्पज्ञः सर्वभूतरुतज्ञः सर्वगतिगतिज्ञः उद्घट्टको वाचकः पण्डितः पटुप्रचारः परमतीक्ष्णनिशितबुद्धिः संवृत्तोऽग्निकल्प इव ज्ञानेन । स यानि तानि राज्ञां क्षत्रियाणां मूर्धाभिषिक्तानां जनपदैश्वर्यस्थामवीर्यमनुप्राप्तानां महान्तं पृथिवीमण्डलमभिनिर्जित्याध्यावसतां पृथग्भवन्ति शिल्पस्थानकर्मस्थानानि, तद्यथा-हस्तिग्रीवायां अश्वपृष्ठे रथे त्सरुधनुःषु उपयाने निर्याणेऽङ्कुशग्रहे तोमरग्रहे छेद्ये भेद्ये मुष्टिबन्धे पदबन्धे दूरवेधे शब्दवेधेऽक्षुण्णवेधे मर्मवेधे दृढप्रहारितायाम् । पञ्चसु स्थानेषु कृतावी संवृत्तः ।" .

(सुप्रियावदान, पृ० ६३ ; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७)

(१०) व्यापारियों द्वारा घण्टावघोष

"..... ......घण्टावघोषणं कृतम् यो युष्माकमुत्सहते.........सार्थवाहेन सार्धमशुल्केनातरपण्येन महासमुद्रमवतर्तुम्, स महासमुद्रगमनीयं पण्यं समुदानयतु ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० २; पूर्णावदान, पृ० २०)

(११) कथा का निष्कर्ष

"इति भिक्षव एकान्तकृष्णानामेकान्तकृष्णो विपाकः एकान्तशुक्लानां

धर्माणामेकान्तशुक्लो विपाकः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १४; पूर्णावदान, पृ० ३३; मेण्ढकावदान, पृ० ८४; स्वागतावदान, पृ० ११६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १७६; सहसोद्गतावदान, पृ० १६४)

(१२) प्रव्रज्या-विधि

"एहि भिक्षो चर ब्रह्मचर्यमिति। स भगवतो वाचावसाने मुण्डः संवृत्तः संघाटिप्रावृतः पात्रकरकव्यग्रहस्तः सप्ताहावरोपितकेशश्मश्रुर्वर्षशतोपसंपन्नस्य भिक्षोरीर्यापथेनावस्थितः।

एहीति चोक्तः स तथागतेन
मुण्डश्च संघाटिपरीतदेहः।
सद्यः प्रशान्तेन्द्रिय एव तस्थौ
एवं स्थितो बुद्धमनोरथेन।"

(पूर्णावदान, पृ० २२, २६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १७४; संघरक्षितावदान पृ० २११)

(१३) दृष्टसत्य हो कर उदान कथन

"इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा कृतं न राज्ञा नेष्टस्वजनबन्धुवर्गेण न देवताभिर्न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद् भगवतास्माकं तत्कृतम्। उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, प्रतिष्ठापिता वयं देवमनुष्येषु अतिक्रान्तातिक्रान्ताः।"

(पूर्णावदान, पृ० २६; सहसोद्गतावदान, पृ० १६२; रुद्रायणावदान, पृ० ४७०)

(१४) बुद्ध का शारीरिक वर्णन

"...... ....भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशील्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्।"

(ब्राह्मणदारिकावदान. पृ० ४१; स्तुतिब्राह्मणावदान. पृ० ४५; इन्द्रनाम-ब्राह्मणावदान, पृ० ४७; अशोकवर्णावदान, पृ० ८५; तोयिकामहावदान, पृ० ३०१)

(१५) बुद्ध-स्मिति

"ततो भगवता स्मितमुपदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाताः पुष्पराग-पद्मरागवज्रवैडूर्यमुसारगल्वार्कलोहितकादक्षिणावर्तशङ्खशिलाप्रवालजातरूपरज-तवर्णा अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टा-द्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महा-रौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदंनिरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्म-मवीचिपर्यन्तान् नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेनानुगतास्तेषां सत्त्वानां तस्मिन् क्षणे कारणाविशेषाः, ते प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति-किं नु वयं भवन्त इतश्च्युता आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं (दर्शनं) विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति-न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्ना इति । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः अस्यानुभावेनास्माकं कारणविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकान् देवान् गत्वा त्राय-स्त्रिंशान् यामांस्तुषितान् निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो देवान् ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभान-प्रमाणशुभान् शुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनकनिष्ठपर्यन्तान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति । गाथाद्वयं च भाषन्ते—

> आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
> धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥
> यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
> प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धा गच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं व्याकर्तुकामो भवति,

पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते। प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामंतर्धीयंते यदि अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते।"

(ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१,४२, अशोकवर्णावदान, पृ० ८६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३,१६४; पांशुप्रदानावदान, पृ० २३०,२३१)

(१६) बुद्ध का वर्णन

"...... ....सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैर्ब्राह्मणैर्गृहपतिभिः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः।"

(सुप्रियावदान, पृ० ५८; अशोकवर्णावदान, पृ० ८५; प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८६; कनकवर्णावदान, पृ० १८०; रूपावत्यवदान, पृ० ३०७)

(१७) प्रणिधान सूत्र (विधि)

"........ यन्मया एवंविधे सद्भूतदक्षिणीये कारः कृतः, अनेनाहं कुशलमूलेन ...."

(मेण्ढकावदान, पृ० ८३; स्वागतावदान, पृ० ११६)

(१८) पंच पूर्वनिमित्त

"धर्मता खलु च्यवनधर्मणो देवपुत्रस्य पञ्च पूर्वनिमित्तानि प्रादुर्भवन्ति-अक्लिष्टानि वासांसि क्लिश्यन्ति, अम्लानानि माल्यानि म्लायन्ते, दौर्गन्धं मुखान्निश्चरति, उभाभ्यां कक्षाभ्यां स्वेदः प्रघरति, स्वे चासने धृतिं न लभते।"

(मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सूकरिकावदान, पृ० १२०)

(१९) सन्तान न होने पर शोक-प्रकटन

"अनेकधनसमुदितोऽहमपुत्रश्च। ममात्ययाद् राजवंशसमुच्छेदो भविष्यतीति।"

(मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

O

परिशिष्ट [ख]

सहायक ग्रन्थ

(१) संस्कृत, पालि और प्राकृत-ग्रन्थ

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
२. अमरकोश
३. अवदानशतक—जे० एस० स्पेयर
४. अवदानशतकम्—डा० पी० एल० वैद्य
५. अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता
६. असातमन्तजातक
७. अष्टाध्यायी
८. अंगविज्जा—मुनि पुण्यविजय संपादित
९. कुमारसम्भवम्
१०. कुम्मासपिण्डजातक
११. गिलगित पाण्डुलिपि, जिल्द तीसरी (भाग एक, दो और तीन)
१२. तैत्तिरीयोपनिषद्
१३ दशकुमारचरित
१४. दिव्यावदान—डा० पी० एल० वैद्य संपादित
१५. धम्मपद
१६. निरुक्त
१७. प्रबन्धकोश
१८. पातंजलयोग सूत्र
१९. बार्हस्पत्य स्मृति
२०. महाभारत
२१. यजुर्वेद
२२. रघुवंश
२३. रामायण

२४. ललितविस्तर
२५. वज्रसूची
२६. विष्णुसूत्र
२७. शार्दूलकर्णावदान—प्रो० सुजित कुमार मुखोपाध्याय संपादित
२८. हलायुधकोश
२९. मनुस्मृति
३०. ऋग्वेद
३१. अथर्ववेद

(२) हिन्दी भाषा के ग्रन्थ

१. उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास—प्रो० कृष्ण दत्त वाजपेयी
२. जातककालीन भारतीय संस्कृति—मोहन लाल महतो वियोगी
३. पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
४. पुरातत्त्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन
५. प्राचीन भारत के प्रसाधन—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार
६. बौद्ध-धर्म-दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव
७. बौद्ध-संस्कृति—राहुल सांकृत्यायन
८. भारतीय संस्कृति का उत्थान—डा० रामजी उपाध्याय
९. रामायणकालीन समाज—शान्ति कुमार नानूराम व्यास
१०. रामायणकालीन संस्कृति—शान्ति कुमार नानूराम व्यास
११. सार्थवाह—डा० मोती चन्द्र
१२. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन—भरतसिंह उपाध्याय
१३. ध्यान-सम्प्रदाय—भरतसिंह उपाध्याय
१४. त्रिपथगा, अक्तूबर १९५६—सं० काशीनाथ उपाध्याय
(बुद्ध-जयन्ती अंक)
१५. भारतीय कला एवं संस्कृति—डा० श्याम प्रसाद

(३) अंग्रेजी-भाषा के ग्रन्थ

1. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams
2. Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary—Franklin Edgerton.
3. Essence of Buddhism with Illustrations of Buddhist Art—P. L. Narsu.
4. Glories of India—P. K. Acharya
5. Heaven and Hell—B. C. Law
6. Indian Literature, Vol. II—M. Winternitz.
7. Sanskrit Buddhism—G. K. Nariman
8. The Doctrine of Rebirth—Narda
9. The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal—Rajendra-Lal Mitra.
10. The Sanskrit—English Dictionary—V. S. Apte
11. Journal of the American Oriental Society, Vol. 48.
12. Divyavadana (In Roman Script) edited by E. B. Cowell and R. A. Neil.

O